शास्त्रविज्ञान ग्रंथमाला–५

अर्थतत्व की भूमिका

डा० शिवनाथ

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण १६००, सं० २०१८ वि०
मूल्य ६)

प्रकाशकीय

'अर्थतत्व की भूमिका' विश्वभारती, शांतिनिकेतन के हिंदी प्राध्यापक श्री डा० शिवनाथ का भाषा-शास्त्र-विषयक महत्वपूर्ण उपाधि-शोध-प्रबंध है। इस क्षेत्र में नागरीप्रचारिणी सभा से ही प्रकाशित उनकी पूर्वकृति 'हिंदी कारकों का विकास' हिंदी जगत् में समादृत हो चुकी है। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में भी उनकी कृतियाँ प्रतिष्ठित हैं। 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' जैसी गंभीर शोधपत्रिका का भी उन्होंने कुछ दिनों तक सफलतापूर्वक संपादन किया है।

भाषाशास्त्र की स्वतंत्र शाखा के रूप में अब 'अर्थतत्व' की प्रतिष्ठा सर्वमान्य है। भाषाशास्त्र की इस स्वतंत्र शाखा के गवेषणात्मक अध्ययन से परिपूर्ण होने के कारण यह शोधप्रबंध हिंदी में अपने विषय के प्रथम कोटि के ग्रंथ के रूप में ग्रहण किया जायगा तथा समादृत होगा, ऐसा हमें विश्वास है।

यद्यपि इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन का निश्चय सभा ने कई वर्ष पूर्व किया था, तो भी इसका प्रकाशन विलंब से हुआ। इसका हमें खेद है। संतोष इस बात से है कि इतनी दूर रहते हुए भी अपनी अतिव्यस्तता से अवकाश ले लेखक ने प्रूफ संशोधन का उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य स्वयं किया है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

श्रावणी पूर्णिमा, सं० २०१८वि० } सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री
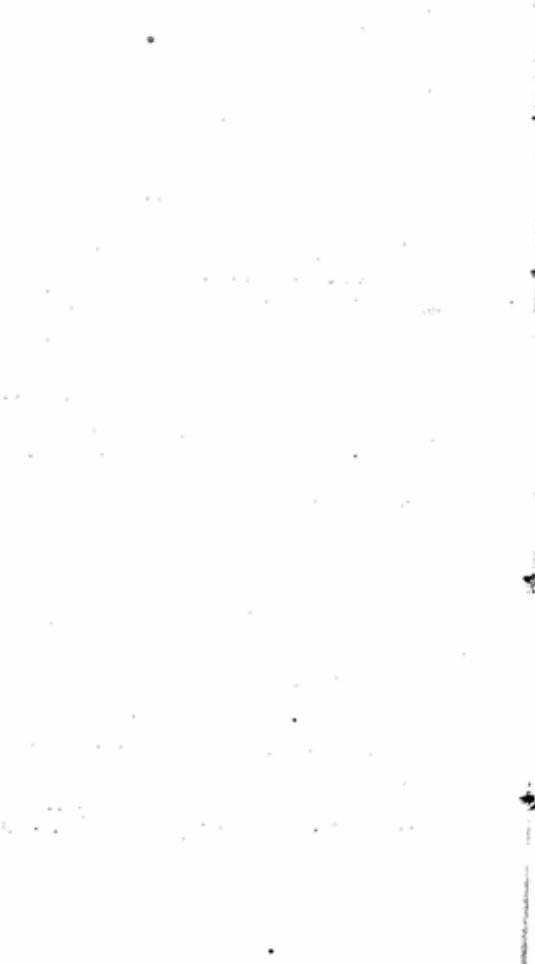
स्ववाक्

(१) भाषा और साहित्य के इस छात्र का भाषाशास्त्रसंबंधी यह दूसरा ग्रंथ है। इसका एतच्छास्त्रविषयक पहला ग्रंथ 'हिंदी कारकों का विकास' है, जिसको काशी की 'नागरीप्रचारिणी सभा' ने ही प्रकाशित कर इस जन को कृतार्थ किया था।

इस ग्रंथ के प्रकाशन के अवसर पर यह छात्र 'हिंदू विश्वविद्यालय' के हिंदीविभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष अपने गुरुदेव आचार्य केशवप्रसाद मिश्र का पुण्यस्मरण करता है, जिन्होंने इसको भाषाशास्त्रप्रदीप से साशीर्वाद विदग्ध किया था; जिस विदग्धता का आभास अपनी अल्पमति से देने की चेष्टा उनका यह छात्र करता रहता है। उनकी दिवंगत आत्मा अपने छात्र की इस चेष्टा से तृप्तिलाभ करे, तो छात्र को क्या कम संतोष होगा!

इस अवसर पर यह जन 'विश्वभारती' के 'विद्याभवन' के भूतपूर्व अध्यक्ष और 'विश्वभारती विश्वविद्यालय' के भूतपूर्व उपाचार्य दिवंगत डा० प्रबोधचंद्र बागची का भी पुण्यस्मरण करता है। विद्या के क्षेत्र में कार्य करने के लिए उनके द्वारा दी जानेवाली प्रेरणा और सुविधा क्या कभी भुलाई जा सकती है! एतद्विषयक कार्य करने की इच्छा जब उन पर प्रकट की गई तब उन्होंने कहा था : 'हाँ, ठीक है, कीजिए, यही आपका अपना विषय है।' इस तुच्छ ग्रंथ की पूर्ति से यदि डा० बागची की दिवंगत आत्मा को संतुष्टि मिली तो यह जन धन्य होगा।

'कलकत्ता विश्वविद्यालय' के तुलनात्मक भाषाशास्त्र तथा ध्वनि-शास्त्रविभाग के खैरा प्रोफेसर और अध्यक्ष, भारत के प्रसिद्ध भाषा-शास्त्रविद् गुरुकल्प डा० सुकुमार सेन की इस छात्र पर सहज असीम कृपा, उनके आशीर्वाद और स्नेह का ही यह ग्रंथ फल है। इस ग्रंथ की पूर्ति में पदे पदे उन्होंने अनेकानेक साहाय्य किया है। भाषा-शास्त्र के क्षेत्र में शोधकार्य की जो सम्यक् निर्मल दृष्टि उन्होंने दी है उससे भविष्यत् में भी यदि कुछ कार्य यह छात्र कर सका तो अपने को वह कृतकर्म समझेगा।

(२) किताब लोकप्रकाश पा रही है श्रद्धेय गुरुवर विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, श्रद्धेय डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, आदरणीय राजबली पांडेय, आदरणीय करुणापति त्रिपाठी, आदरणीय मुरारीलाल केडिया, भाई बचन सिंह, भाई गोविंदप्रसाद केजरीवाल, भाई गोवर्द्धनलाल उपाध्याय, भाई सकलदीप सिंह के नेतृत्व में। इनकी ठेलाठेली से किताब एकांत में अकेली न रह सकी, भाषाशास्त्र के मुहब्बती-मेली की सहेली बनने जा रही है! एवमेवास्तु। इन गुरुजनों तथा भाइयों के प्रति कृतज्ञताप्रकाश करूँ, तो लगेगा कि अपने प्रति ही कृतज्ञताप्रकाश कर आत्मप्रवंचना कर रहा हूँ। सो, इस आत्म-प्रवंचना से बच रहा हूँ।

किंतु, उन अनेक-अनेक मुद्रणकर हाथों के प्रति कृतज्ञताप्रकाश किए बिना कैसे रहूँ जिन्होंने सहस्रशः बूँद-बूँद मुद्राओं का सम्यक् संग्रहण और संस्थापन कर सुधी पाठक-श्रोता-तीर्थार्थी के अवगाहन के लिए किताब की यह गंगा-यमुना बहाई है। मेरा नमस्कार उन हाथों को चूम रहा है।

(३) ग्रंथ की पादटिप्पणी में केवल रचनाकार और ग्रंथ का नाम है। 'उद्धृत ग्रंथ' के अंतर्गत ग्रंथ के प्रकाशक, प्रकाशन-सन्-संवत्, आदि का विवरण रख दिया गया है।

संस्कृत तथा अँगरेजी के उद्धरणों के हिंदी अनुवाद में भावविचार को स्पष्टतः अभिव्यक्त करने पर दृष्टि रखी गई है, 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाले अनुवाद की त्रुटि से बचा गया है।

यह छात्र अर्थतत्त्व की इयत्ता और महत्ता से परिचित है और यह परिचित है अपनी लघुबुद्धि की सीमा से भी। फिर भी, दुर्गस्वामी के वचन का ध्यान कर इसे सदैव कार्य करने की प्रेरणा मिली है :

अहं च भाष्यकारश्च कुशाग्रैकधिया बुधौ।
नैव शब्दाम्बुधेः पारं किमन्ये लघुबुद्धयः॥

विजयादशमी
११. १०. '५८.
विश्वभारती,
शांतिनिकेतन।

शिवनाथ
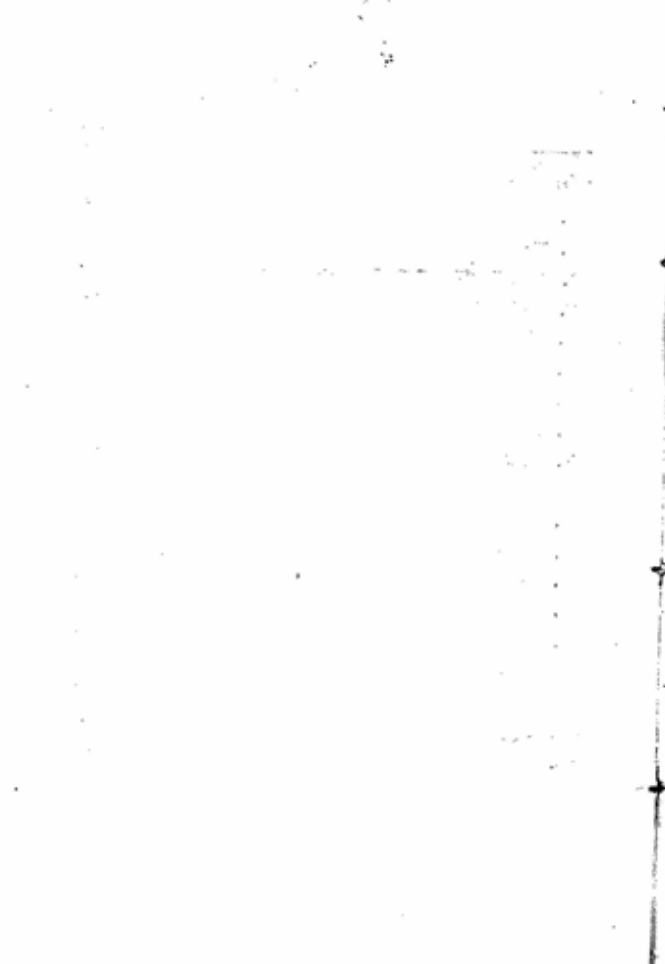
पूर्व मीमांसा

अर्थतत्व की भूमिका

१
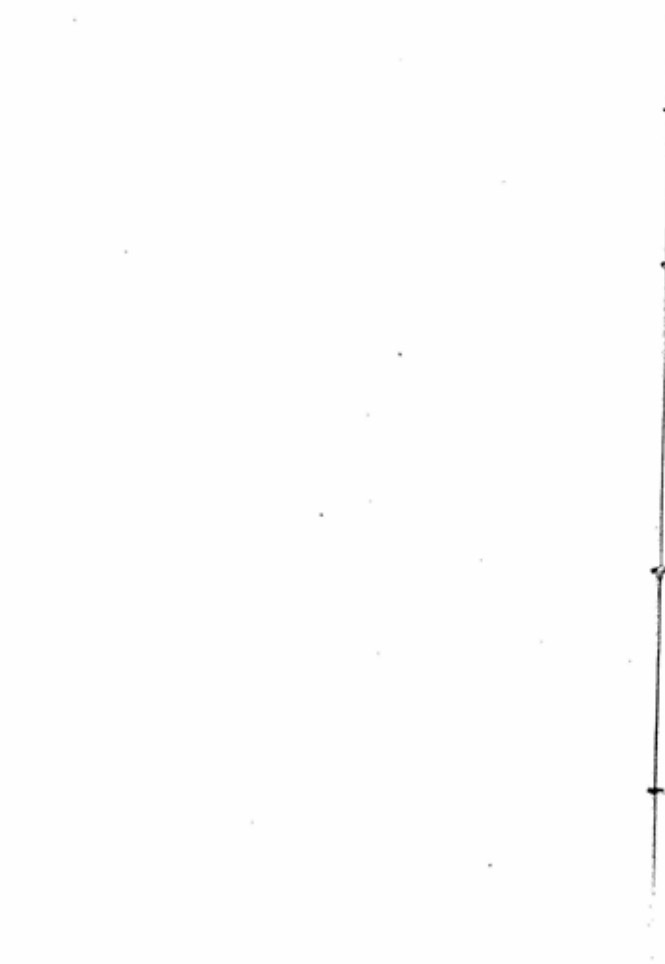
नाम

§ १. भाषाशास्त्र की जिस शाखा की विवेचना का कार्य हमारे हाथों है उस शाखा का कोई मान्य नाम प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० के वाङ्मय में अप्राप्त है। किंतु इस शाखा की गंभीर विवेचना भारतीय वैयाकरणों तथा दार्शनिकों ने की है, इसमें संदेह नहीं। न० भा० आ० के भाषाशास्त्रीय वाङ्मय में इस शाखा के कई नाम मिलते अवश्य हैं, परंतु इनमें से किसी एक को सर्वमान्य नहीं कहा जा सकता। वस्तुस्थिति यह है कि आधुनिक काल के पश्चिमी भाषाशास्त्रियों ने इस शाखा के क्षेत्र में ऐसा गवेषणा-अध्ययन-मनन किया कि भाषाशास्त्र की यह एक नवीन शाखा के रूप में प्रतिष्ठित हुई; तब पूर्वी भाषाशास्त्रियों ने भी इस क्षेत्र में गवेषणा-अध्ययन-मनन का कार्य आरंभ किया। पहले तो इस क्षेत्र में पश्चिमी दृष्टि से ही कार्य किया गया, परंतु आजकल पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों दृष्टियों से इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। किंतु, भाषाशास्त्र की अन्य शाखाओं की अपेक्षा अभी इस क्षेत्र में पश्चिम और पूरब में भी यथोचित गवेषणा नहीं हुई है, यह भाषाशास्त्र की नवीनतम शाखा है भी। यह स्वीकार करने में द्विधा नहीं होनी चाहिए कि इस शाखा के पश्चिमी गवेषणा-अध्ययन-मनन से ही प्रेरणा प्राप्तकर पूर्वी भाषाशास्त्रियों ने भी भा० आ० की सभी अवस्थाओं की भाषाओं का गवेषणा-अध्ययन-मनन इस दृष्टि से करना आरंभ किया; और, तब इनकी दृष्टि पूर्वी वैयाकरणों तथा दार्शनिकों के इस शाखा के क्षेत्र में विवेचन की ओर भी गई।

§ २. भाषाशास्त्र की इस शाखा को एक स्वतंत्र शाखा के रूप में प्रतिष्ठापित करने का कार्य फरासीसी मनीषी माइसेल ब्रेअल (Michel Bréal) ने किया। इन्होंने अपने तीस वर्ष (सन् १८६७–६७ ई०) के एतत्संबंधी गवेषणा-अध्ययन-मनन के फल को अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'एसाइ द सेमाँतिक' (Essai de Sémantique) में प्रकाशित कराया। अँगरेजी का 'सेमांटिक्स' (Semantios) शब्द इसी फरासीसी शब्द 'सेमाँतिक' (Sémantique) के आधार पर बनकर प्रचलित हुआ। फरासीसी शब्द 'सेमाँतिक' (Sémantique) का मूल ग्रीक शब्द 'सेमांटिकोस्' (Sēmantikos) है। अँगरेजी 'सेमांटिक्स' के पर्याय 'सेमांटॉलॉजी' (Semantology), 'सेमाटॉलॉजी' (Sematology), 'सेमासिऑलॉजी' (Semasiology) भी कुछ दिनों तक भाषाशास्त्र के क्षेत्र में चले, किंतु ये 'सेमांटिक्स' की भाँति प्रचलित और ग्राह्य न हो सके; अतः भाषाशास्त्र की इस शाखा के लिए अधुना अँगरेजी में 'सेमांटिक्स' शब्द का ही प्रयोग प्रचलित है। कुछ लोगों की धारणा है कि जे० पी० पोस्टगेट ने भाषाशास्त्र की इस शाखा को 'रेमटॉलॉजी' (Rhematology) नाम दिया है।[1] 'रेम' (Rheme) का अर्थ 'एक विचार की अभिव्यक्ति, अर्थरूप (Semanteme) है। इसी एक-एक 'अर्थरूप'-के विशेष अध्ययन को वे 'रेमटॉलॉजी' नाम देना चाहते हैं और भाषाशास्त्र की इस शाखा को वे 'सेमांटिक्स' नाम ही देना पसंद करते हैं :

I should limit the word to the special study of separate rhemes, preferring Semantics as the general name of our Science.[2]

---

१. श्यामसुंदरदास : भाषाविज्ञान, पृ० १८६।

२. Michel Breal : Semantics, Preface, p. lvii.

अँगरेजी अभिधानों में भी 'सेमटॉलॉजी' का अर्थ 'अर्थरूप का अध्ययन, सेमांटिक्स की एक शाखा' ही मिलता है।[1]

ऊपर हमने भाषाशास्त्र की इस शाखा के लिए अँगरेजी में प्रयुक्त 'सेमांटिक्स' शब्द के अतिरिक्त अन्य तीन शब्दों 'सेमांटॉलॉजी, सेमाटॉलॉजी, सेमासिऑलॉजी' का भी उल्लेख किया है। अँगरेजी अभिधानों में इन सभी का अर्थ 'सेमांटिक्स' प्राप्त है।[2] 'सेमाटॉलॉजी' का मूल ग्रीक 'सेमा' (Sema), 'सेमाटोस्' (Sematos) शब्द हैं, जिनका अर्थ है 'संकेत' (Sign)। 'सेमासिऑलॉजी' का मूल ग्रीक 'सेमासिआ' (Semasia) शब्द है, जिसका अर्थ 'अर्थ, अभिप्राय, शब्दशक्ति' (Signification) है। हमने देखा है कि 'सेमांटिक्स' का मूलाधार ग्रीक 'सेमांटिकोस्' शब्द है, इसका अर्थ है 'अभिप्रायपूर्ण अर्थ' (Significant meaning)।[3] इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि अँगरेजी शब्द 'सेमांटिक्स' तथा उसके पर्याय के रूप में व्यवहृत अन्य शब्दों की निर्माण-भित्ति ग्रीक भाषा के वे शब्द हैं जिनके अर्थ 'संकेत; अर्थ, अभिप्राय, शब्दशक्ति; अभिप्रायपूर्ण अर्थ', आदि हैं। ये ही मूल शब्द अँगरेजी भाषा की प्रकृति के अनुसार आवश्यक प्रत्यययुक्त होकर भाषाशास्त्र की एक शाखा विशेष के अर्थ का बोध कराते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त सभी शब्दों का संबंध 'अर्थ' से है।

§ ३. पूर्वी विद्वान् भाषाशास्त्र की इस शाखा की विवेचना जब न० भा० आ० के माध्यम से करने लगे तब भा० आ० के शब्द द्वारा

१. Webster : New International Dictionary of English Language.

२. वही।

३. वही।

इस शाखा के नामकरण की समस्या इनके सामने आई। ध्यान में रखने की बात यह है कि इन विद्वानों के सामने इस शाखा के लिए प्रचलित प्रधानतः अँगरेजी भाषा के 'सेमांटिक्स' तथा 'सेमासिऑलॉजी' शब्द थे। इन्हीं शब्दों के अर्थ के अनुरूप अर्थ व्यक्त करनेवाले प्रायः प्रा० भा० आ० के आधार पर इन्हें नए शब्द गढ़ने थे। न० भा० आ० में लिखनेवाले विभिन्न भाषाशास्त्रियों ने अपनी-अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रायः प्रा० भा० आ० के आधार पर विभिन्न शब्द गढ़े।

न० भा० आ० बँगला में डा० सुकुमार सेन ने 'सेमांटिक्स' के लिए 'शब्दार्थतत्व', 'शब्दार्थपरिवर्तन' शब्दों का व्यवहार किया है। इन दोनों शब्दों में से 'शब्दार्थतत्व' को ये अधिक पसंद करते देखे जाते हैं।[1] हेमंतकुमार सरकार इसके लिए 'अर्थतत्व', 'मानेतत्व', 'शब्दार्थतत्व' प्रस्तावित करते हैं। इनका कथन है कि बँगला में 'अर्थतत्व' का व्यवहार 'राजनीति' के लिए आगे से ही चला आ रहा है, अतः इसका व्यवहार युक्तिसंगत न होगा। 'मानेतत्व' के प्रचलन के संबंध में ये शंकालु हैं, क्योंकि 'माने' शब्द के साथ 'तत्व' शब्द के योग से भाषागत विशुद्धता पर दृष्टि रखनेवाले असंतुष्ट होंगे। अतः डा० सुकुमार सेन की भाँति ही इसके लिए ये भी 'शब्दार्थतत्व' को ही ग्रहण करना उचित समझते हैं।[2] यहाँ ध्यान में रखने की बात यह है कि बँगला में 'शास्त्र, विज्ञान' के लिये 'तत्व' शब्द का खूब प्रचार है। उपर्युक्त शब्दों को देखकर हम इसका आभास पा सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बँगला में 'सेमांटिक्स' के लिए 'शब्दार्थतत्व'-मान्य है।

१. भाषार इतिवृत्त, पृ० ३० ।

२. The Intellectual Laws of Language and Bengali Semantics, Sir Asutosh Mookerjee Silver Jubilee Volumes, Vol. III, Orientalia–Part 2, p. 687.

न० भा० आ० गुजराती में डा० भोगीलाल ज० सांडेसरा इसके लिए 'शब्दार्थसंक्रांतिशास्त्र', 'शब्दार्थशास्त्र' का व्यवहार करना चाहते हैं। 'शब्दार्थसंक्रांतिशास्त्र' का व्यवहार इसलिए करना चाहते हैं कि भाषाशास्त्र की इस शाखा में अध्ययन का प्रधान विषय शब्दों के अर्थों का परिवर्तन—संक्रांति है। किंतु, वे 'शब्दार्थशास्त्र' शब्द को अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि 'शब्दार्थसंक्रांतिशास्त्र' नाम बहुत बड़ा है।[1]

न० भा० आ० हिंदी में इसके लिए कई शब्द चल रहे हैं। डा० श्यामसुंदरदास ने 'अर्थातिशय', 'अर्थविचार', 'शब्दार्थविज्ञान' नाम इसे दिए हैं। इनमें से 'अर्थविचार' तथा 'शब्दार्थविज्ञान' शब्दों के व्यवहार पर वे अधिक जोर देते हैं। किंतु, उन्होंने 'अर्थविचार' का व्यवहार ही प्रायः सर्वत्र किया है।[2] इसके लिए 'अर्थातिशय' शब्द का उल्लेख तो किया गया है, परंतु इसका प्रचलन नहीं है, यदि है भी तो अति सीमित क्षेत्र में, कुछ व्यक्ति ही इसका व्यवहार करते देखे जाते हैं। 'सेमांटिक्स' के लिए 'अर्थातिशय' शब्द के प्रयोग की प्रेरणा पाणिनीय संप्रदाय में प्रचलित इस श्लोक से मिली जान पड़ती है :

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकार नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम्॥[3]

उद्धृत श्लोक में 'धातोस्तदर्थातिशयेन योगः' अंश है, जिसका अर्थ होगा : 'धातु के वाच्य अर्थ के साथ उस (धातु) के आधार पर किए गए अधिक विशेष अर्थ का योग।' ऐसे विशेष अर्थ का योग

---

१. शब्द अने अर्थ, पृ० १-२।
२. भाषाविज्ञान, पृ० १८६।
३. गुरुपद हालदार : व्याकरण दर्शनेर इतिहास, पृ० २० से उद्धृत।

धातु में उपसर्ग[1], प्रत्यय, लोकप्रचलित प्रयोग, आदि अनेक कारणों से हो सकता है। ऐसी स्थिति में 'अर्थातिशय' में अर्थविस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थोत्कर्ष, अर्थापकर्ष, आदि सभी तत्वों का समावेश होगा। अतः 'अर्थातिशय' से 'अर्थविस्तार' अथवा 'अर्थोत्कर्ष' का ही अर्थ नहीं लेना होगा।

डा० बाबूराम सक्सेना इसके लिए 'अर्थविज्ञान' शब्द का प्रयोग करते हैं[2]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न० भा० आ० में इसके लिए ये शब्द प्रचलित हैं : 'शब्दार्थतत्व' (बँगला), 'शब्दार्थशास्त्र' (गुजराती), 'अर्थविचार, अर्थविज्ञान' (हिंदी)। हमने देखा है कि हेमंतकुमार सरकार इसके लिए 'अर्थतत्व' का व्यवहार तो करना चाहते हैं, किंतु बँगला में इसका प्रयोग 'राजनीति' के लिए चलता है, अतः भ्रम की स्थिति उत्पन्न न हो, इसलिए इसका व्यवहार उचित नहीं मानते। इसी प्रकार हिंदी तथा गुजराती[3] में 'अर्थशास्त्र' का प्रयोग अँगरेजी के 'इकॉनॉमिक्स' शब्द के लिए होता है, इसलिए 'सेमांटिक्स' के लिए इस (अर्थशास्त्र) का प्रयोग नहीं किया जा सकता। बँगला तथा गुजराती में इसके लिए एक प्रकार से समान शब्द का व्यवहार होता है; 'तत्व' तथा 'शास्त्र' शब्दों का ही अंतर है। हिंदी के 'अर्थविचार' में 'विचार' शब्द हलका-सा लगता है, शास्त्र का गांभीर्य उसके द्वारा ध्वनित नहीं होता। ऐसे ही 'अर्थविज्ञान' में 'विज्ञान' शब्द विशुद्ध

१. उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार संहार विहार प्रतिहारवत्॥
—भट्टोजि दीक्षित, सिद्धांत कौमुदी, ८. ४. १८

२. अर्थविज्ञान।

३. भोगीलाल ज० सांडेसरा : शब्द अने अर्थ।

विज्ञान की ओर दृष्टि आकृष्ट कर लेता है, और भाषाशास्त्र की इस शाखा में साहित्यतत्व, दर्शनतत्व भी प्रभूत रूप से समाविष्ट है। इसके अतिरिक्त 'विज्ञान' का रूखापन भी 'अर्थविज्ञान' शब्द से ध्वनित होता है। अतः हम इसके लिए 'अर्थतत्व' का प्रयोग प्रस्तावित करते हैं। बँगला में इसका प्रयोग नहीं किया जा सका है, क्योंकि उसमें इसका प्रयोग 'राजनीति' के लिए चलता है। हिंदी में किसी अन्य शास्त्र के अर्थ में इसका प्रयोग न होने से भ्रमोत्पादन की आशंका नहीं है। 'तत्व' शब्द द्वारा विषयगत गंभीरता, अध्ययनगत गहरी पैठ, आदि भी ध्वनित होती है। भाषाशास्त्र की जिस शाखा के लिए हम 'अर्थतत्व' शब्द का प्रयोग प्रस्तावित कर रहे हैं। उसमें निश्चय ही शब्द और अर्थ के संबंध का गवेषणा-अध्ययन-मनन होता है। शब्द के बिना अर्थ का अनस्तित्व है, ऐसी स्थिति में अर्थ के साथ हम 'शब्द' को यहाँ नहीं जोड़ रहे हैं।

२

रूप

§ ४. भाषाशास्त्र में अर्थतत्व भाषा के अंतर्-आत्म-पक्ष से संबद्ध है। इस प्रकार अर्थतत्व का विवेचन भाषा के अंतर्-आत्म-पक्ष के विवेचन के अंतर्गत आता है। अर्थतत्व के रूप की उपलब्धि उसके विवेचन-क्षेत्र की सीमा के विस्तार पर दृष्टि डालने से सुविधापूर्वक की जा सकती है। अर्थतत्व में शब्द के अर्थ के इतिहास का विवेचन होता है। यह विवेचन होता है कि शब्द के अर्थ की प्रवृत्ति उन्नति की ओर गई है अथवा अवनति की ओर। अर्थतत्व शब्द के अर्थ के संकोच और विस्तार का भी अनुसंधान करता है। अर्थ की यह उन्नति अथवा अवनति, संकोच अथवा विस्तार अर्थप्रस्फोट के माध्यम से हुआ है अथवा अर्थारोप के माध्यम से, इसका अध्ययन भी अर्थतत्व के अंतर्गत आता है। कालविशेष में किसी शब्द के किसी अर्थ का अप्रचलित होना; फिर कालविशेष में अप्रचलित अर्थ का पुनः प्रचलन; किसी शब्द के प्रचलित अर्थ का लोप हो जाना, आदि के कारणों की खोज भी अर्थतत्व करता है। अर्थ में विशेषाधायक तत्व अलंकारों, शब्दशक्तियों, आदि की विवेचना भी अर्थतत्व के क्षेत्र में आती हैं। ध्वनितात्विक स्वल्प प्रभेद से शब्द के अर्थ में भी प्रभेद आ जाता है, अतः कभी-कभी कुछ ध्वनितत्व की मीमांसा भी अर्थ-तत्व के अंतर्गत चली आती है। प्रसंगभेद से भी अर्थभेद होता है, अतः ऐसी अवस्था में एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। इस प्रसंग के कारण ही हम देखते हैं कि अभिधान में किसी शब्द का अर्थ कुछ

है तथा उसका व्यवहार वाङ्मय में हुआ है कुछ और अर्थ में। इसीलिए अर्थतत्व की मीमांसा की परिमिति में प्रसंग की विवेचना भी संमिलित है। वस्तुओं-व्यक्तियों के नामकरण की खोज भी अर्थतत्व ही करता है। ऊपर अर्थतत्व को भाषा के अंतस् अथवा आत्मपक्ष से संबद्ध कहा गया है। भाषा का संबंध मानव के शरीर और मन से भी है। अतः अर्थतत्व की गवेषणा में मानवसंबद्ध मनस्तत्व की सहायता भी सहायक होती है, और इसकी विवेचना भी की जाती है। अर्थतत्व अर्थपरिवर्तन के विभिन्न गतियों, प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर अर्थपरिवर्तन के विभिन्न विभाग अथवा शाखाएँ भी निर्धारित करता है। इस प्रकार अर्थपरिवर्तनों के विभागीकरण का कार्य भी उसके जिम्मे है। अर्थपरिवर्तन में किसी देश और जाति की संस्कृति के विभिन्न तत्व धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, आचार-व्यवहार, राजनीति, अर्थनीति, साहित्य, कला, संगीत, आदि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कार्य करते हैं। अर्थतत्व अर्थपरिवर्तन के इन कारणों की गवेषणा की ओर भी उन्मुख रहता है। इसीलिए कभी-कभी अर्थतत्व संबंधी अनुसंधान करते-करते हम किसी देश अथवा जाति की सभ्यता तथा संस्कृति का भी अनुसंधान कर पाते हैं। इस प्रकार अर्थतत्व के माध्यम से मानव-मन का अध्ययन भी संभव है।

आधुनिक अर्थतात्विक अर्थतत्व के क्षेत्र में प्रधानतः उक्त विषयों की मीमांसा करते हुए देखे जाते हैं। इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि आधुनिक काल में अर्थतत्व का विषयक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। ऐसी स्थिति में दो-एक वाक्यों में उसकी परिभाषा करने का साहस करना उचित नहीं जान पड़ता। एक वाक्य में उसके संबंध में कहना ही हो, तो कहना चाहिए कि अर्थतत्व का रूप है किसी देश जाति की संस्कृति का अध्ययन। कुछ लोगों ने अर्थतत्व को इस दृष्टि से देखा

भी है। अतः अर्थतत्व केवल भाषा से ही संबद्ध नहीं होता, वरन् मानवसभ्यता से भी संबद्ध होता है :

Semantics is therefore at the very heart and core not merely of language, but human civilization.[1]

आधुनिक काल में पश्चिमी देशों में अर्थतत्व की जो मीमांसा हुई है उसके आधार पर हमने ऊपर उसका रूपनिर्धारण देखा है। भारत में अति प्राचीन काल में यास्क, पाणिनि, पतंजलि, भर्तृहरि आदि की रचनाओं में अर्थतत्व विषयक विवेचना मिलती है। और, उक्त मनीषियों द्वारा एतत् संबंधी मीमांसा कम गंभीर नहीं है। इनके द्वारा स्थिर तथा प्रतिपादित इस विषय के विचार अनेक क्षेत्रों में आधुनिक विद्वानों के विचारों से मेल खाते हैं। हम यथास्थान प्राचीन भारतीय मनीषियों की एतत्विषयक स्थापनाओं को उपलब्ध करेंगे। यहाँ मात्र इतना उल्लेख करना अयुक्तिसंगत न होगा कि इन मनीषियों ने अर्थ के स्वरूप, अर्थबोध की प्रक्रिया, वर्ण और शब्द के साथ अर्थ का संबंध, वस्तुओं-व्यक्तियों, पक्षियों आदि के नामकरण की पद्धति, आदि की विस्तृत तथा तर्कसंगत मीमांसा की है।[2] इसी प्रकार अति प्राचीन काल में प्लेटो ने नामकरण संबंधी विचार 'क्रेटिलस' में किया है।[3]

---

१. Mario Pei : The Story of Language, p. 148.

२ (a) P. C. Chakravarti : Linguistic Speculations of the Hindus, Journal of the Department of Letters, vol. XII, University of Calcutta.

(b) P. C. Chakravarti : The Philosophy of Sanskrit Grammar

३. George Burges : The Works of Plato, Vol. III.

तात्पर्य यह कि अर्थतत्व संबंधी विवेचना आधुनिक काल में ही नहीं, अपितु प्राचीन काल में भी प्रभूत रूप से हुई है। इसकी आधुनिक और प्राचीन विवेचना में प्रस्थानभेद होने के कारण भी अनेक विषयों में समान तत्व निहित हैं। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में इसकी मीमांसा का परिप्रेक्षित अपेक्षाकृत व्यापक और विस्तृत है।

३

अर्थतत्व और भाषाशास्त्र की अन्य शाखाएँ

§ ५. अर्थतत्व के अतिरिक्त भाषाशास्त्र की मान्य शाखाएँ ध्वनि-तत्व (Phonology) और रूपतत्व (Morphology) हैं। इसकी एक नवीन शाखा का विकास हो रहा है, जिसे वाक्यतत्व (Syntax) कहा जा सकता है। भाषामूलक प्रागैतिहासिक शोध (Linguistic palaeontalogy) को भी भाषाशास्त्र की एक शाखा माना गया है। भाषाशास्त्र के आधुनिक मनीषियों द्वारा निर्धारित ये शाखाएँ हैं। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने व्याकरण के अंतर्गत ही इन सभी तत्वों की विवेचना अल्पाधिक रूप में की है। प्राचीन निरुक्त अथवा व्युत्पत्तितत्व (Etymology) के अंतर्गत भी इन तत्वों में से कुछ की मीमांसा मिलती है। प्राचीन भारतीय दर्शन, विशेषतः न्याय, मीमांसा, बौद्ध दर्शन, में इन तत्वों में से किन्हीं की मीमांसा कुछ-कुछ मिलती है। प्राचीन भारतीय अलंकारशास्त्र अथवा साहित्य-शास्त्र (poetica) में भी विशेषतः अर्थतत्व की कुछ विवेचना प्राप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषाशास्त्र की विभिन्न शाखाओं के संबंध में प्राचीन भारतीय विभिन्न शास्त्रों में विवेचन-मनन मिलता है। इस पर भी ध्यान जाता है कि यह विवेचन-मनन भी विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न प्रकार का किया गया मिलता है।

ध्वनितत्व, रूपतत्व, वाक्यतत्व भाषा के बाह्य रूप अथवा शरीर हैं। प्राचीन भारतीय व्याकरणों में इन तत्वों पर विचार अपने ढंग से किया गया है। यह विचार प्रधानतः व्यावहारिक और वर्णनात्मक है।

आधुनिक भाषाशास्त्र में ध्वनितत्व, रूपतत्व, वाक्यतत्व की विवेचना व्यावहारिक और वर्णनात्मक होने के साथ ही ध्वनि, रूप, वाक्य के जो स्वरूप प्राप्त हैं उनके मूल की ऐतिहासिक खोज पर अधिक गहन दृष्टि रख की जाती है। प्राचीन तथा आधुनिक शोधशैली में यह भेद मानने के कारण आज व्याकरण तथा भाषाशास्त्र में स्पष्ट भेद लक्षित होता है। व्याकरण भाषा के रूप का वर्णन करता है और भाषाशास्त्र इसके रूप के मूल की ढूँढ़-खोज ऐतिहासिक दृष्टि से करने की ओर प्रवृत्त रहता है।

व्याकरण भाषा के बाह्यरूप—शरीर की विवेचना करता है और अर्थतत्व उसके अंतस्-आत्मा अर्थात् अर्थ की शोध में प्रवृत्त रहता है। व्युत्पत्तितत्व शब्द के बाह्यरूप—उसकी प्रकृति, प्रत्यय, बल (accent) आदि का विश्लेषण करता तो है, इस प्रकार यह रूपतत्व, व्याकरण का ही कार्य करता हुआ दिखाई पड़ता तो है, किंतु यह (व्युत्पत्ति-तत्व) यह सब शब्द के अंतस्-अर्थ पर ही दृष्टि रख कर करता है। इस प्रकार व्युत्पत्तितत्व व्याकरण से संबद्ध होने के साथ ही अर्थतत्व से भी संबद्ध है। इसीलिए यास्क ने निरुक्त को व्याकरण से भिन्न विद्या—शास्त्र माना है। व्याकरण भाषा के बाह्यरूप संबंधी नियम निर्धारित करता है और निरुक्त उसकी आत्मा अर्थ का संधान करता है :

तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्। स्वार्थं साधकं च। १-१५[1]

इस पर स्कंद स्वामि की टीका यों है :

तदिदं निरुक्ताख्यं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं करोतीति वाक्य शेषः। अथवा कार्त्स्न्यं करोतीति, तत्करोतीति णिच्, णिजन्तात् क्विप्, कार्त्स्न्यंकरमित्यर्थः।[2]

१. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्तम्, पृ० ३७।
२. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्त भाष्य टीका, पृ० ४३।

दुर्गाचार्य ने अपनी टीका में इसे और स्पष्ट किया है :

तस्मात् स्वतन्त्रमेवेदं विद्यास्थानमर्थनिर्वचनम्, व्याकरणं तु लक्षण प्रधानमिति विशेष [1]

इस प्रकार व्याकरण, निरुक्त और अर्थतत्व का क्या संबंध है, यह स्थिर होता है। इस उल्लेख से यह भी स्पष्ट होता है कि निरुक्त में अर्थतत्व के अंतर्गत आनेवाली विचारणा भी उपलब्ध है।

साहित्यशास्त्र की शब्दशक्ति, वृत्ति, आदि की विवेचना प्राचीन भारतीय व्याकरणों में प्राप्त होती है। और, ये शब्दशक्ति, वृत्ति, आदि अर्थतत्व के विषयों के अंतर्भुक्त हैं। इसके अतिरिक्त साहित्यशास्त्र का एक विवेच्य विषय अलंकार भी अर्थतत्व का एक अंग है। इस प्रकार व्याकरण, साहित्यशास्त्र और अर्थतत्व का पारस्परिक संबंध स्थापित होता है।

ध्वनितत्व और अर्थतत्व के संबंध पर विचार करते समय इस पर दृष्टि जाती है कि कभी-कभी ध्वनिपरिवर्तन से भी अर्थपरिवर्तन हो जाता है अथवा किया जाता है। ध्वनिपरिवर्तन और अर्थपरिवर्तन कभी-कभी एक व्यक्ति से चल कर सारे समाज में अनुकूल परिस्थितिवश प्रचलित-प्रसरित हो जाते हैं। किंतु कभी-कभी यह देखा जाता है कि समाज में ध्वनिपरिवर्तन का प्रचार-प्रसार अर्थपरिवर्तन की अपेक्षा शीघ्रता से होता है।

रूपतत्व वाक्यतत्व का मूल है। वाक्यतत्व से ही अर्थतत्व की विवेचना में सुविधा होती है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि शब्द-

---

१. P. C. Chakravarti : Linguistic Speculations of the Hindus, p. 138, Journal of the Department of Letters, vol. XII से उद्धृत।

रूपों से वाक्य बनता है और वाक्यगत प्रसंगों के आधार पर ही शब्द के समुचित अर्थ की मीमांसा की जा सकती है। इस प्रकार रूप, वाक्य और अर्थ तत्वों के पारस्परिक संबंध का महत्व स्वीकार किया जा सकता है।

हमने अर्थतत्व के साथ भाषाशास्त्र की अन्य शाखाओं के संबंध पर दृक्पात किया है। अर्थतत्व के साथ व्याकरण तथा साहित्यशास्त्र के संबंध को भी हमने देखा है। अर्थतत्व तथा व्युत्पत्तितत्व के पारस्परिक संबंध की चर्चा भी हुई है। हम देखते हैं कि अर्थतत्व के साथ उक्त सभी का संबंध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्राप्त है। इस प्रकार अर्थतत्व की आदर्श गवेषणा के लिये इन सभी का समन्वित रूप से साहाय्य अपेक्षित है। भाषाशास्त्र के अन्य तत्वों को त्यागकर अर्थतत्व का समुचित अध्ययन संभव नहीं हो सकता। इस संबंध में भाषाशास्त्रियों का यही मत दिखाई पड़ता है।[1]

———

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, pp. 251-2.

४

शब्द और अर्थ

§ ६. शब्द और अर्थ के अविच्छेद्य संबंध की विवेचना प्राचीन तथा नवीन दोनों भाषाशास्त्रियों ने की है। आधुनिक भाषाशास्त्री इनका संबंध व्यक्त करने के लिये प्रायः शरीर और आत्मा के अविच्छिन्न संबंध की उपमा का आश्रय लेते हैं, अर्थात् कहते हैं कि शब्द शरीर है और अर्थ आत्मा। शरीर निरर्थक और निष्क्रिय है यदि आत्मा न हो, और यदि शरीर न हो तो आत्मा की अवस्थिति कहाँ हो। इस प्रकार आधुनिक भाषाशास्त्रियों की दृष्टि से इनका संबंध अन्योन्याश्रित है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी शब्द और अर्थ का अभिन्न संबंध माना है। उनका कथन है कि शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो भेद हैं, इनकी स्थिति अपृथक् है :

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ। २-३१[1]

यहाँ शब्द और अर्थ एक आत्मा के ही दो रूप माने गए हैं। शरीर और आत्मा की उपमा द्वारा इनका संबंध प्रकट नहीं किया गया है। शब्द और अर्थ के संबंध को विभिन्न प्रकारों से कहा गया है। वेदांत दर्शन का आश्रय लेकर यह कहा गया कि जैसे ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञाता आत्मा की परम परिणति ज्ञेय ब्रह्म के रूप में होती है वैसे ही शब्द द्वारा अर्थ अपने रूप को प्रकट करता है :

आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेय रूपं च दृश्यते।
अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते॥ १-५०[1]

१. वाक्यपदीयम्।

कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द आत्मरूप-तत्व की प्राप्ति अर्थ द्वारा ही करता है। शब्द यदि न हो तो अर्थ प्रकाशित कैसे हो? व्यवहार के क्षेत्र में भी शब्द के बिना काम नहीं चलता। कोई भी बोध शब्द के बिना प्रकट नहीं किया जा सकता :

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ १-१२४[1]
अर्थ क्रियासु वाक् सर्वा समीहयति देहिनः। १-१२८[1]

कवियों ने भी प्रसंग से शब्द और अर्थ के संबंध को इसी रूप में अभिव्यक्त किया है :

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ॥ १-१[2]
गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥[3]

अर्थ को वाणी अथवा शब्द का पुष्प और फल भी कहा है :

अर्थं वाचः पुष्प फलमाह। १-२०[4]

इस प्रकार अनेक उल्लेखों द्वारा हमने यह अवगत किया कि प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री शब्द और अर्थ के बीच अविच्छिन्न संबंध स्वीकार करते हैं। किन्हीं कवियों की दृष्टि भी इस क्षेत्र में ऐसी ही है। इसके अतिरिक्त हमने अर्थ को शब्द के पुष्प और फल के रूप में देखा। यह भी प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों का ही मत है।

---

१. वही।

२. रघुवंशम्।

३. माताप्रसाद गुप्त : रामचरितमानस, बालकांड।

४. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्तम्।

§ ७. प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने शब्द और अर्थ का संबंध नित्य भी माना है :

नित्याः शब्दार्थसंबंधाः समाम्नाता महर्षिभिः।
सूत्राणां सानुतंत्राणां भाष्याणाञ्च प्रणेतृभिः ॥१-२३[१]

सिद्धे शब्दार्थ संबंधे लोकतोऽर्थं प्रयुक्ते शब्द प्रयोगे शास्त्रेण धर्म नियमः, यथा लौकिकवैदिकेषु।..................नित्य पर्यायवाची सिद्ध शब्दः।.........नित्यो हि अर्थवतामर्थैरभिसंबंधः। १-७[२]

दार्शनिकों ने भी शब्द और अर्थ के संबंध के विषय में विचार किया है। मीमांसक प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की भाँति ही इनका संबंध नित्य मानते हैं :

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबंधस्तस्यज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्। १-१-५[३]

§ ८. वैशेषिकों का मत मीमांसकों के मत के विपरीत है। वे शब्द और अर्थ को असंबद्ध मानते हैं। ऐसी स्थिति में न इनके अन्योन्याश्रय और न इनके नित्य संबंध का ही प्रश्न उठता है। उनका कथन है :

शब्दार्थावसंबद्धौ। ७-२-१८[४]

किंतु व्यवहार में हम देखते हैं कि शब्द और अर्थ का संबंध है अवश्य—चाहे वैशेषिकों के अनुसार इनके संबंध में विच्छेद माना जाय।

---

१. वाक्यपदीयम्।
२. P. S. Subrahmanya Sastri : Lectures on Patanjali's Mahabhasya, Vol. I, pp. 50, 51, 55.
३. मीमांसा दर्शनम्, वाक्यम् १।
४. वैशेषिक दर्शनम्।

हम जानते हैं कि 'ग्रंथ' कहने से एक वस्तु विशेष का बोध होता है; और, यह बोध हमारे लिए नित्य बन गया है। शब्द और अर्थ के इस प्रकार के संबंध और उसकी नित्यता का तर्क उपस्थित करने पर वैशेषिक दर्शनानुयायी कहते हैं कि हम शब्द और अर्थ का संबंध मान तो लेते हैं, मगर इसे नित्य नहीं मानते। हम इसे सामयिक मानते हैं :

सामयिकः शब्दादर्थ प्रत्ययः। ७-२-२०[1]

शब्द से अर्थ का बोध सामयिक होता है, नित्य नहीं। वैशेषिकों के इस मत का इस प्रकार समझा जाय कि संस्कृत में 'घर्म' का अर्थ 'धूप' था, किंतु बँगला में आज इसका प्रयोग 'प्रस्वेद' के अर्थ में होता है। विस्मयादिबोधक 'अरे' शब्द प्रसंगानुसार अनेक अर्थ अभिव्यक्त करता है। संस्कृत और हिंदी में 'राग' का अर्थ 'प्रेम' है, किंतु बँगला और मराठी में 'क्रोध' के अर्थ में यह प्रयुक्त मिलता है। इस प्रकार शब्द से अर्थ का बोध सामयिक ही मानना चाहिए, नित्य नहीं, ऐसा वैशेषिक दर्शनानुयायी मानते हैं।

हमने देखा है कि मीमांसक शब्द और अर्थ का संबंध नित्य मानते हैं। परंतु जब 'मीमांसासूत्र', १. १. ५ के संबंध में शबरस्वामी भाष्य लिखने लगे तब उन्होंने कहा कि शब्द से अर्थ का संबंध नहीं ही है। शब्द और अर्थ स्वभाव से ही असंबद्ध हैं :

नैव शब्दस्यार्थेन संबंधः,''''''स्वभावतो ह्यसंबंधावेतौ शब्दार्थौ।[2]

इनका मत है कि शब्द और अर्थ का संबंध माने भी कैसे ! क्योंकि शब्द का उच्चारण तो मुख से होता है, किंतु शब्दोच्चारण के साथ वस्तु

---

१. वही।

२. मीमांसा दर्शनम्, वाल्यूम १।

तो मुख में आ नहीं जाती, वह तो भूमि पर अथवा अन्यत्र पाई जाती है :

मुखे हि शब्दमुपलभामहे, भूमावर्थम्[1]

जैसे, हमने कहा : 'जैमिनिकृत मीमांसा दर्शन' (ग्रंथ); वह तो हमारे मुख में नहीं, टेबुल पर, पुस्तकालय में अथवा अन्यत्र कहीं है।

मीमांसा और वैशेषिक दर्शनों में शब्द और अर्थ संबंधी इन विरोधी मतों के तत्व को किस प्रकार पाया जाय ? हमने देखा है कि मीमांसा दर्शन की भाँति ही प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री भी शब्द और अर्थ का संबंध नित्य मानते हैं। इस 'नित्य संबंध' को किस रूप में ग्रहण किया जाय ? इस 'नित्य संबंध' की विवेचना के दो पक्ष हैं, एक दार्शनिक पक्ष है और दूसरा व्यावहारिक। दार्शनिक पक्ष से विचार किया जाय, तो कहा जायगा कि पंचतत्व—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश—नित्य तत्व हैं; और, नित्य आकाश का गुण शब्द है—'शब्द गुणकं आकाशम्।' नित्य का गुण नित्य होता है। अतः नित्य आकाश का गुण शब्द भी नित्य है। अर्थतात्विक दृष्टि से विचार किया जाय, तो शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो रूप हैं। यदि शब्द नित्य है तो अर्थ भी नित्य होगा। दार्शनिक दृष्टि से शब्द और अर्थ के 'नित्य संबंध' की मीमांसा का यह एक रूप माना जा सकता है।

इस विवेचना का व्यावहारिक पक्ष यह है कि भाषा का निर्माता मानव है। आधुनिक भाषाशास्त्री भी इसी मत के हैं। और, मानव जिस प्रकार किसी न किसी सभ्यता-संस्कृति को लेकर चलता है उसी प्रकार उसकी भाषा भी किसी न किसी सभ्यता-संस्कृति के परिवेश में प्रवहमाण है। मानव की सभ्यता-संस्कृति का परिवेश सदैव परिवर्तन-शील है, अतः भाषा भी अचल नहीं रहती। भाषा जब परिवर्तनशील है

---

1. वही।

तब उसके शब्द और अर्थ भी क्यों स्थिर रहेंगे। देशकाल के भेद से भी शब्द रूप बदलते हैं और अर्थ भी। इसीलिए शब्द के अर्थ में भी परिवर्तन मिलता है। वैशेषिकों के इस मत अर्थात् 'शब्द और अर्थ असंबद्ध हैं, वे सामयिक हैं' का प्रतिपादन उपर्युक्त प्रकार से किया जा सकता है।

मीमांसकों और प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के शब्द और अर्थ के नित्य संबंध के बारे में व्यवहार पर दृष्टि रखकर हम दूसरी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। 'राग' शब्द का संस्कृत में 'प्रेम' अर्थ भी नित्य है और बँगला, मराठी में इसका 'क्रोध' अर्थ भी नित्य है। अपनी-अपनी सीमा में दोनों नित्य हैं। इस प्रकार व्यवहार की दृष्टि से हम अखंड नित्य नहीं, खंड नित्य मान रहे हैं। बँगला और मराठी के 'राग' का जब 'क्रोध' से अतिरिक्त अन्य कोई अर्थ हो जायगा तब 'राग' तथा उस (अतिरिक्त) अर्थ में नित्य संबंध स्थापित होगा। बात यह है कि शब्द और अर्थ को नित्य माननेवाले प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की दृष्टि शब्द के अर्थपरिवर्तन पर भी तो थी ही। इससे यह जान पड़ता है कि इनके नित्य संबंध के विषय में उनकी धारणा भी कुछ उपर्युक्त प्रकार की ही रही होगी। कहा गया है कि शब्दों के प्रयोग का विषय बड़ा व्यापक है। कुछ विशेष शब्द कुछ विशेष अर्थ में कुछ विशेष प्रदेश में प्रयुक्त होते हैं। जैसे, 'शव्' धातु कंबोज प्रदेश में 'जाना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किंतु आर्य इसका प्रयोग 'विकार' के अर्थ में 'शव्' शब्द में करते हैं :

एतस्मिंश्चाति महति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र-तत्र नियतविषया दृश्यंते—तद्यथा शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषन्ते शव इति।[1]

१. P. S. Subrahmanya Sastri : Lectures on Patanjali's, Mahabhasya, vol. I. p. 65.

वैशेषिकों द्वारा उठाई गई एक और समस्या है। वह यह कि शब्द मुख में और अर्थ अन्यत्र रहता है। इस समस्या का समाधान क्या है? इसका समाधान यह है कि किसी शब्द को सुनकर हमारे हृदय, हमारी बुद्धि को उस (शब्द) से संबद्ध वस्तु, आदि के रूप, गुण, आदि का बोध होता है और तब यदि शब्द का संबंध किसी भौतिक पदार्थ से हुआ तो हृदय, बुद्धि उस पदार्थ तक जाती है। 'ग्रंथ' कहने से उसका रूप, गुण हमारी हृदय-बुद्धि में आता है, और तब हम यथावश्यकता, यथास्थान उसकी प्राप्ति उसके भौतिक रूप में करते हैं। इस विवेचना से यह प्रमाणित होता है कि शब्द और अर्थ का संबंध है, मगर इस संबंध का माध्यम है हृदय, बुद्धि। यहीं वैशेषिकों का मत और तर्क कट जाता है।

इस प्रकार शब्द और अर्थ के संबंध की विवेचना विभिन्न मतों के अनुसार की जा सकती है। हमने इस विषय को दार्शनिक और प्रधानतः व्यावहारिक दृष्टि से समझने और उपस्थित करने की चेष्टा की है।

शब्द और अर्थ के संबंध के विषय में पश्चिमी विद्वानों का भी यही मत है। वे भी इन्हें अन्योन्याश्रित मानते हैं। आदिम जातियों की भाषा को लेकर गवेषणा करनेवाले नृतत्त्वज्ञ ब्रोनिस्लाव् मैलिनोव्स्की (Bronislaw Malinowski) का कथन है कि भाषा विषयक प्रतिपादन तथा सांस्कृतिक विश्लेषण, भाषा जिसके अंतर्भुक्त है, के बीच के घनिष्ठ संबंध का यथार्थ अनुभव अथवा प्रत्यक्षीकरण विश्वास दिलाते हुए यह दिखलाता है कि न 'शब्द' और न उसका 'अर्थ' ही ऐकांतिक सत्ता रखता है। लेखक के कहने का तात्पर्य यह है कि ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं:

For the clear realization of the intimate connection between linguistic interpretation

and the analysis of the cultures to which the language belongs, shows convincingly that neither a Word nor its Meaning has an independent and self sufficient existence.[1]

§ ६. विभिन्न दृष्टियों से शब्द और अर्थ के संबंध पर विचार किया गया है। इस विचार द्वारा यह ज्ञात होता है कि इन दोनों में किसी का भी महत्व कम नहीं है। किंतु प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री कहीं-कहीं शब्द को गौण और अर्थ को प्रधान मानते हैं। कहते हैं कि अर्थ के अनन्वित होने पर, शब्द, आदि के प्रादेशिक परिवर्तन की जानकारी के अभाव में शब्दों की परीक्षा उनके अर्थों पर दृष्टि रखकर कुछ वृत्ति सामान्य के आधार पर करनी चाहिए :

अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारे अर्थ नित्यः परीक्षेत।
केनचिद् वृत्ति सामान्येन। २-१[2]

'निरुक्त' के उक्त अंश पर विचार करते हुए अंत में दुर्गाचार्य कहते हैं कि अर्थ प्रधान है और शब्द गौण :

अर्थोहि प्रधानं तद्गुणभूतः शब्दः।[3]

इस संबंध में अन्यत्र भी इसी प्रकार की विवेचना प्राप्त है :

लोकेऽर्थरूपतां शब्दः प्रतिपन्नः प्रवर्तते। २-१३२[4]

लोक में शब्द और अर्थ में से अर्थ का ही प्राधान्य होता है। पुण्यराज इसकी टीका करते हुए यही कहते हैं :

---

१. C. K. Ogden, I. A. Richards : The Meaning of Meaning, pp. 308-9

२. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्तम्।

३. निरुक्तम्।

४. वाक्यपदीयम्।

अर्थरूपतां प्रतिपन्नोऽर्थेन सहैकत्वमिव प्राप्तः शब्दः प्रवर्तते। अयं गौरित्यादि। तत्रार्थ एव बाह्यतया प्रधानमवसीयते॥[1]

इस विचार से यह ज्ञात होता है कि जैसे 'निरुक्त' में यास्क व्यवहारपक्ष पर दृष्टि रखकर अर्थ के प्राधान्य की चर्चा करते हैं वैसे ही 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि भी लोकपक्ष पर दृष्टि रखकर अर्थ को प्राधान्य देते हैं। इस प्रकार दोनों भाषाशास्त्रियों की दृष्टि समान है। शब्द और अर्थ में से कौन प्रधान है और कौन गौण, यह कहना बहुत कठिन है। यहाँ 'को बड़ छोट कहत अपराधू' का बोध होता है। दोनों की अन्योन्याश्रित स्थिति की चर्चा हम कर भी चुके हैं। यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि भावों, विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही भाषा का निर्माण हुआ है। भाषानिर्माण की आदि अवस्था में भावों, विचारों के उदय के पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति की व्याकुलतावश ही उस (भाषा=आक्षरिक ध्वनि) का निर्माण हुआ होगा। बहुत से अर्थ हाथ हिलाने और आँख मटकाने से अभिव्यक्त होते हैं—

बहवो अर्था हि गम्यंते अक्षिनिकोचैः पाणिविहारैश्च। २-१-१[2]

किंतु इन अंग-भंगियों से भावों, विचारों की अभिव्यक्ति पूरी तरह से होती न देखकर ही भाषा का निर्माण किया गया होगा। इस प्रकार अर्थ का रूप ग्रहण करनेवाले भाव, विचार ही पहले उदित होते हैं, भाषा बाद में आती है। यदि भाव, विचार, अर्थात् अर्थ ही न हों तो भाषा अथवा शब्द की आवश्यकता ही क्यों हो। तात्पर्य यह कि अर्थ पहले होता है और शब्द बाद में। इस प्रकार की मीमांसा द्वारा अर्थ का प्राधान्य लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त हम व्यवहार में

---

१. वाक्यपदीयम्।

२. महाभाष्य।

देखते हैं कि यदि भाव, विचार हमारे पास हैं तो भाषा के कुछ टूटी-फूटी होने से भी काम चल जाता है, यदि ये (भाव, विचार) नहीं हैं तो भाषा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सारांश यह कि भाव, विचार अर्थात् अर्थ का ही प्राधान्य है, भाषा अर्थात् शब्द का स्थान गौण है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने इस संबंध में अपना जो मत प्रकट किया है उसका प्रतिपादन उपर्युक्त रूप से किया जा सकता है।

५

अर्थबोध का साधन

§ १०. शब्द और अर्थ के संबंध के विषय में विचार किया गया। यही शब्द अर्थबोध का साधन है। शब्द स्वप्रकृतितः ही अर्थबोध कराता है, इस तथ्य को और अर्थबोधयोग्य कैसा शब्द होता है, इस तथ्य को भी हम यथास्थान देखेंगे। अभी एक और विषय के संबंध में विचार कर लेना अयुक्तिसंगत नहीं जान पड़ता, जिस के संबंध में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने विचार किया है; और, जिस विषय पर नवीन भाषा-शास्त्रियों की दृष्टि जाती हुई नहीं दिखाई पड़ती। आधुनिक भाषाशास्त्री इस पर विचार करते हुए नहीं देखे जाते कि 'वर्ण' अथवा अक्षर भी अर्थयुक्त होते हैं। वे यही मानते हैं कि वर्णों अथवा अक्षरों के समूह से शब्द बनता है और शब्द अर्थबोध का साधन होता है अथवा शब्द अर्थबोध कराता है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री भी वर्णसमूह को शब्द मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि शब्द द्वारा अर्थ-बोध होता है, इसलिए शब्द को प्रयोगयोग्य तथा अर्थबोधन की क्षमतायुक्त होना चाहिए, इसे भी वे स्वीकार करते हैं :

सुप्तिङन्तं पदम्। १-४-१४[१]
ते (वर्णाः) विभक्त्यन्ताः पदम्। २-२-६०[२]
वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः। १२-१[३]

---

१. अष्टाध्यायी।

२. न्यायसूत्र।

३. पी० वी० काणेः साहित्यदर्पण।

किंतु इसके साथ ही प्राचीन भारतीय भाषातत्व के मनीषियों ने वर्णों को भी अर्थयुक्त माना है :

अर्थवंतो वर्णाः··· । १-१-२[1]

वर्ण अर्थयुक्त होते हैं, इस संबंध में तर्क उपस्थित करते हुए वे कहते हैं कि ऐसा हम इसलिए मानते हैं कि शब्दों के अर्थ तब बदल जाते हैं जब हम एक अक्षर के स्थान पर दूसरा अक्षर रखते हैं। उदाहरणार्थ, 'कूप, सूप' और 'यूप' शब्द लीजिए। ककारयुक्त 'कूप' शब्द का एक अर्थ है, किंतु 'कू' को हटाकर यदि 'सू' रख दिया जाय तो सकारयुक्त 'सूप' का दूसरा अर्थ हो जाता है। जब 'यूप' में 'कू' अथवा 'सू' को हटाकर 'यू' रख दिया जाता है तब यकारयुक्त 'यूप' एक अन्य अर्थ धारण कर लेता है। इसलिए प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री मानते हैं कि 'कूप' का अर्थ 'ककार', 'सूप' का अर्थ 'सकार' और 'यूप' का अर्थ 'यकार' में स्थित है।[1] उनका कथन है, यतः वर्णव्यत्यय से अर्थांतर हो जाता है अतः हम वर्णों को भी अर्थसमन्वित मानते हैं :

वर्ण व्यत्यये च अर्थान्तरगमनान्मन्यामहे
अर्थवन्तो वर्णा इति । ४१[1]

पतंजलि ने जिस रूप में ऊपर विचार किया है उस रूप के विचार पर आधुनिक भाषाशास्त्रियों की दृष्टि नहीं जाती। पतंजलि की दृष्टि से विवेचना की जाय तो न० भा० आ० में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जिनमें वर्णपरिवर्तन अथवा व्यत्यय से अर्थ में परिवर्तन आता है, किंतु इस दृष्टि से विचार आधुनिक अर्थतत्व के क्षेत्र में नहीं होता। पतंजलि ने 'कूप, सूप, यूप' को उदाहरण स्वरूप उपस्थित किया है। 'खोटा', 'मोटा' शब्दों को यदि न० भा० आ० हिंदी का अपना शब्द मान लें, इसकी निरुक्ति आदि को दृष्टि में न रखें, तो इनमें भी 'कूप, सूप, यूप'

---

१. महाभाष्य ।

की भाँति ही वर्णव्यत्यय द्वारा अर्थपरिवर्तन मानना पड़ेगा। किंतु आधुनिक काल में इस प्रकार हम अर्थपरिवर्तन पर विचार नहीं करते। अस्तु।

§ ११. हम अर्थबोध के साधन शब्द पर विचार करें। लोक में ध्वनि को शब्द कहा जाता है, जो ध्वनि अर्थबोध कराती है :

प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते। १-१-१[1]

शब्द का प्रयोग अर्थबोध कराने के लिए होता ही है। 'अर्थबोध कराऊँगा' इसी लक्ष्य से शब्द का प्रयोग किया ही जाता है :

अर्थं गत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थं संप्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते। २-१-१[2]

शब्दों में कुछ ऐसी व्यापकता और बारीकी है कि संसार में वस्तुओं का बोध कराने के लिए उनका प्रयोग किया जाता है :

व्याप्तिमत्वात्तु शब्दस्याणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके। १-२[3]

अभीप्सित अर्थबोध के लिए भी आवश्यक है कि इसके साधन शब्दों का व्यवहार लोक में इन शब्दों के प्रचलित अर्थों पर दृष्टि रख कर किया जाय, क्योंकि व्युत्पत्तितः शब्दों का कुछ अर्थ होता है और प्रयोगतः कुछ और :

अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यच्च प्रवृत्तिनिमित्तम्। २-५[4]

१. महाभाष्य।

२. वही।

३. लक्षणस्वरूप : निरुक्तम्।

४. पी० वी० काणे : साहित्य-दर्पण।

साथ ही यह भी कहा गया है कि अभीप्सित अर्थबोध के लिए यह आवश्यक है कि उपयुक्त शब्द प्रयोग किए जायें, अपशब्द नहीं :

शब्देनैवार्थोऽभिधेयो नापशब्देनेति । १-१-१ [1]

अर्थबोध कराने के लिए उपयुक्त शब्दों का व्यवहार इसलिए आवश्यक है कि उनमें 'नियतार्थप्रत्यायन सामर्थ्य, अभ्युदयहेतुता सामर्थ्य नियत' होता है, यदि अपशब्दों का व्यवहार किया जायगा, यदि लोक में उनके व्यवहार से जो अर्थ प्राप्त होते हैं उनपर दृष्टि रखकर उनका व्यवहार न किया जायगा तो अभीप्सित अर्थबोधन नहीं हो सकेगा :

शब्दानां यतशक्तित्वं । १-६ [2]

भर्तृहरि के श्लोक के इस अंश की टीका पुण्यराज ने यों की है :

शब्दानां यतशक्तित्वं नियतार्थप्रत्यायनसामर्थ्यमभ्युदय-हेतुतासामर्थ्यं च नियतं । [3]

'शब्दानां यतशक्तित्वं' की बात भर्तृहरि ने दूसरे ढंग से भी और स्पष्ट करके कही है। कहते हैं कि किसी शब्द के उच्चारित होने पर उससे जब जो अर्थ समझा जाता है उस शब्द का तब वही अर्थ होता है, दूसरा अर्थ नहीं :

यस्मिंस्तूच्चारिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते ।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम् ॥ २-३२८ [3]

इस विवेचना की उपलब्धि यह है कि अर्थबोध का साधन शब्द है। अर्थबोध के लिए इसका प्रयोग होता ही है, अर्थबोध कराना इसका

१. महाभाष्य ।

२. वाक्यपदीयम् ।

३. वही ।

स्वभाव ही है। अर्थबोध कराने के लिए जब शब्द प्रयुक्त किया जाय तब दृष्टि इस पर रखनी चाहिए कि लोक में इसका व्यवहार किस अर्थ में होता है, उसके लौकिक अर्थ को ध्यान में रख उसका व्यवहार होना चाहिए—तब अभीप्सित अर्थ का बोध कराया जा सकेगा; अपशब्द के व्यवहार से इस क्षेत्र में लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शब्द में एक व्याप्ति है, बारीकी है, जिससे वह वस्तुओं के अर्थों का बोध कराता है। किंतु अर्थबोध कराने की उसकी शक्ति नियत है, उससे जिस अर्थ की प्राप्ति होती है वही उसका अर्थ है, अन्य कोई अर्थ नहीं। अर्थ के साधन शब्द का प्रयोग करते समय उसके लोकप्रचलित अर्थ पर ही दृष्टि रख कर उसका व्यवहार वांछनीय है, उसकी व्युत्पत्ति पर दृष्टि रख कर—उसके व्युत्पत्तिमूलक अर्थ पर दृष्टि रख कर उसका प्रयोग करने से अनर्थ-अपअर्थ की प्राप्ति होगी। हमने इस विवेचन के प्रसंग में यह भी उपलब्ध किया है कि वर्ण भी अर्थयुक्त होते हैं। अंततः इस विवेचना से हमें यह विदित हुआ कि अर्थबोध का साधन शब्द है, और उपयुक्त शब्द ही अभीप्सित अर्थ का बोध कराता है।

प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों द्वारा की गई अर्थ के साधन की मीमांसा आधुनिक भाषाशास्त्रियों की भाँति उसके सभी पक्षों पर दृष्टि रख कर चाहे अधिक विस्तार से न की गई हो किंतु उनकी मीमांसा से कोई भी आधुनिक भाषाशास्त्री असहमत न होगा। आधुनिक काल में भी शब्द के संबंध में भाषाशास्त्र के क्षेत्र में ये ही धारणाएँ मान्य हैं। अर्थतत्व के क्षेत्र में आधुनिक भाषाशास्त्रियों के विवेचन के प्रसंग में ये धारणाएँ कहीं भी देखी जा सकती हैं।

६

अर्थबोध का चरमावयव

§ १२ हमने शब्द और अर्थ के संबंध की मीमांसा देखी है। अर्थबोध के लिए शब्द का होना ही अलं प्रतीत होता है। ऐसी प्रतीति बाहर से तो ठीक जान पड़ती है, किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। तार्किक दृष्टि से देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि अर्थबोध के लिए केवल शब्द का होना ही जरूरी नहीं है, वरन् यह भी जरूरी है कि जहाँ जैसा अर्थबोध करना अथवा कराना हो वहाँ वैसा। अर्थसंपन्न शब्द भी हों। शब्दों के कहने में भी एक क्रम होगा, तभी अर्थबोध हो सकता है। इसके अतिरिक्त शब्द, उनके क्रम, आदि जब व्याकरणसंमत होंगे तभी अर्थ की प्राप्ति होगी। इस चर्चा से यह तात्पर्य निकलता है कि अर्थबोध के लिए वाक्य की आवश्यकता होती है। 'अर्थबोध के लिए वाक्य की आवश्यकता होती है'—इस कथन का मनस्तात्विक पक्ष भी है। हमारे मन में जब कोई शब्द आता है, अथवा हम जब कोई शब्द बोलते हैं, तब कोई अथवा एक शब्द वाक्य के परिवेश को लेकर मन में उदित होता है, अथवा बोला जाता है। इस प्रकार अर्थबोध का चरमावयव वाक्य है, शब्द नहीं। आधुनिक तथा प्राचीन, पूरबी तथा पच्छिमी दोनों भाषातात्विक अर्थबोध के लिए वाक्य को ही चरमावयव मानते भी हैं।

ह्विटने ने यह मत स्थापित किया था कि भाषा का चरमावयव शब्द है।[१] किंतु आधुनिक विदेशी भाषातात्त्विकों ने विशेषतः बालकों तथा

१. American Journal of Philology, p. 338.

श्यामसुंदरदास, पद्मनारायण आचार्य: भाषा-रहस्य, पृ० ७८ से उद्धृत।

असभ्य और आदिम जातियों की भाषाओं की गवेषणा के आधार पर यही मत निर्धारित किया है कि भाषा का चरमावयव अथवा अर्थबोध का चरमावयव वाक्य ही है। शब्द को अर्थबोध का चरम अवयव मान लेने पर परिस्थिति विशेष में मनोवांछित अर्थ नहीं भी मिल सकता। उपालंभ देते हुए व्यंग्यपूर्वक जब वादाखिलाफी करनेवाले व्यक्ति से कहा जाता है : 'कल आप ठीक समय पर आए !' तब इस वाक्य में वक्ता के कहने का तात्पर्य तो यह है कि 'आपने नियत समय पर आने के लिए कहा था, मगर कल आए नहीं', किंतु उस (वक्ता) ने बात कही है ऐसे वाक्य में जिसका अर्थ उसके अभिप्राय के ठीक विपरीत है। अब, यदि शब्द को अर्थबोध का चरम अवयव मान लिया जाय तो वक्ता के कथन का अभिप्राय उलटा हो जायगा। इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि अर्थबोध का चरम अवयव शब्द नहीं, वरन् वाक्य है। यह इस कारण कि शब्दों का कुछ अर्थ होता है और जब वे उद्देश्य विशेष से वाक्य में प्रयुक्त होते हैं तब उनका कुछ और अर्थ हो जाता है, जैसा कि हम उपर्युक्त वाक्य में देखते हैं। विदेशी विद्वानों ने गवेषणा के आधार पर यह भी निर्धारित किया है कि हमारे सोचने की प्रक्रिया वाक्य में ही होती है; और, जब हम केवल एक 'शब्द' बोलते हैं तब भी वह एक 'वाक्य' के रूप में ही भावों-विचारों को वहन करता है।

§ ११ प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों का भी इस संबंध में यही मत है। यास्क का मंत्र है :

परः सन्निकर्षः संहिता। पद प्रकृतिः संहिता। १-१७[1]

यहाँ 'संहिता' का तात्पर्य मोटे रूप से 'वाक्य' माना जा सकता है। इसकी व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने कहा है कि पहले मंत्रद्रष्टा

---

1. यास्कप्रणीतम् निरुक्तम्।

ऋषि को मंत्र का बोध संहिता अथवा वाक्यरूप में ही होता है, पद अथवा शब्दरूप में नहीं होता। अतः ब्राह्मण संहिता ही अध्ययन कराते हैं और अध्येता इसी रूप में अध्ययन करते हैं। और यज्ञकर्म में संहितारूप में ही मंत्र का प्रयोग होता है, शब्दरूप में नहीं होता :

> **मन्त्रो ह्यभिव्यज्यमानः पूर्वमृषेर्मन्त्रदृशः संहितयैवाभिव्यज्यते न पदैः। अतश्च संहितामेव पूर्वमध्यापयन्त्यनूचाना ब्राह्मणा अधीयते चाध्येतारः। अपि च यज्ञकर्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः न पदैः।**[1]

पाणिनि ने भी यही कहा है :

परः संनिकर्षः संहिता। १-४-१०६[2]

तात्पर्य यह कि अर्थबोध का चरम अवयव वाक्य है, शब्द नहीं। भर्तृहरि का कथन है :

> **ब्राह्मणार्थो यथा नास्ति कश्चिद् ब्राह्मणकंबले।**
> **देवदत्तादयो वाक्ये तथैव स्युरनर्थकाः॥ २-१४**[3]

इस पर पुण्यराज की टीका का तात्पर्य है : जैसे 'ब्राह्मणकंबल' समास में 'ब्राह्मण' शब्द का कुछ अर्थ नहीं है वैसे ही 'देवदत्त, गाय को हाँक दो', आदि वाक्यों में 'देवदत्त', आदि शब्दों का पृथक् अर्थ

---

१. निरुक्तम्।
२. अष्टाध्यायी।
३. वाक्यपदीयम्।

नहीं है। अतः शब्द अनर्थक हैं। इसी प्रकार जगदीश कहते हैं कि सार्थक शब्द जब वाक्य का रूप धारण करते हैं तब अर्थबोध होता है, केवल शब्द से अर्थबोध नहीं होता :

वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थकस्यावबोधतः।
संपद्यते शाब्दबोधो न तन्मात्रस्य बोधतः॥ १२[1]

इसका उल्लेख किया गया है कि विदेशी भाषाशास्त्रियों की स्थापना है कि हमारे सोचने-विचारने की प्रक्रिया वाक्य में ही होती है। जब हम केवल एक 'शब्द' का प्रयोग करते हैं तब भी वह वाक्य के रूप में ही भावों-विचारों को वहन करता है। प्राचीन भारतीय भाषा-शास्त्री भी गवेषणा के आधार पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। पतंजलि का एक सूत्र है :

शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्र-
विभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्। —विभूतिपाद, १७[2]

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए एक स्थल पर व्यास कहते हैं कि सभी शब्दों में वाक्यशक्ति होती है। 'वृक्ष' कहने से 'वृक्ष है' यह बोध भी होता ही है :

सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिर्वृक्ष इत्युक्तेऽस्तीति
गम्यते न सत्तां पदार्थो व्यभिचरतीति[3]**।**

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस क्षेत्र में आधुनिक भाषाशास्त्रियों तथा प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के मत में साम्य है। दोनों वाक्य

---

१. शब्द-शक्ति-प्रकाशिका।

२. योगसूत्र।

३. वही।

को ही अर्थबोध का चरमावयव मानते हैं। ये यह भी मानते हैं कि जब परिस्थितिविशेष में एक 'शब्द' का ही प्रयोग होता है तब भी शब्द वाक्य का परिवेश धारण किए रहता है।

§ १४ जब अर्थबोध का चरम अवयव वाक्य है तब उसके स्वरूप का निर्णय भी आवश्यक जान पड़ता है। सामान्यतः हम 'शब्दसमूह' को वाक्य कहते हैं। कुछ प्राचीन मनीषियों ने भी ऐसा माना है :

वाक्यं पद समूहः।[1]

किंतु प्रायः सभी ने 'शब्दसमूह को वाक्य कहते हैं'—वाक्य की इस परिभाषा की टीका की है और इसे वाक्य का स्वरूप नहीं माना है। अमरसिंह ने 'सुतिङ्‌चयो वाक्यम्' अर्थात् सुबंत तथा तिङंत के समूह को वाक्य माना है। जगदीश का कथन है कि वाक्य की यह परिभाषा अतिव्याप्ति, आदि दोषों के कारण ठीक नहीं है :

सुतिङन्तचयो नैवमतिव्याप्त्यादि दोषतः ॥ १३[2]

इस परिभाषा को अस्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि न 'पचति', 'गच्छति' (पकाता है, जाता है) क्रियाओं का समूह ही वाक्य है और न 'घट', 'पट' शब्दों का समूह ही वाक्य का रूप धारण करता है। इसीलिए प्रायः सभी ने आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति अथवा संनिधि से युक्त शब्दसमूह को वाक्य माना है :

वाक्यं स्वाकांक्षायोग्यतासंनिधिमतां पदानां समूहः।[3]

---

१. तर्कसंग्रह।

२. शब्द-शक्ति-प्रकाशिका।

३. तर्कभाषा।

वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः । २-१[1]

कुछ लोग इसी बात को दूसरे ढंग से कहते हैं और स्वीकार करते हैं कि आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति अथवा संनिधि वाक्यार्थ ज्ञान का साधन, कारण या हेतु है। कुछ विद्वान् आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति के अतिरिक्त तात्पर्य को भी अर्थबोध का एक कारण स्वीकार करते हैं :

आकांक्षायोग्यतासंनिधिश्च वाक्यार्थं ज्ञानहेतुः ।[2]
वाक्यजन्यज्ञाने च आकांक्षायोग्यतासत्तयस्तात्पर्यं ज्ञानं चेति चत्वारि कारणानि ।[3]
शब्दबोधसहकारि कारणानि आकांक्षायोग्यताऽऽसत्ति तात्पर्याणि ।[4]

श्रोता के मन में जानने की इच्छा का उदय आकांक्षा है। किसी ने कहा : 'गाय'। इस 'गाय' को सुनकर श्रोता के मन में 'गाय' के संबंध में बहुत-सी जिज्ञासाएँ उदित होती हैं। और, जब कहा जाता है 'लाओ' तब श्रोता के मन की जिज्ञासा शांत होती है। इस प्रकार जब हम 'गाय' के बाद 'लाओ' कहते (अथवा लिखते) हैं तब दोनों शब्दों के अर्थों का तारतम्य बैठता है और हमें समुचित अर्थबोध होता है। योग्यता का तात्पर्य है अनर्थकता का अभाव। 'अग्नि से सींचता है'—यह अनर्थक वाक्य है; क्योंकि अग्नि में सींचने का गुण नहीं होता, जल में सींचने का गुण होता है। इस प्रकार ऐसे अनर्थक शब्दों के समूह से वाक्यार्थ का बोध नहीं हो सकता। समुचित अर्थबोध कराने-

---

१. साहित्यदर्पण ।
२. तर्कसंग्रह ।
३. वेदांतपरिभाषा, आगम परिच्छेद ।
४. परमलघुमंजूषा ।

वाले अर्थात् योग्यतायुक्त शब्दों के समूह को वाक्य कहा जा सकता है। आसत्ति अथवा संनिधि का अर्थ है युगपत् रूप से शब्दों का कथन। 'गाय' हम अभी कहें और 'लाओ' चार घंटे बाद, तो कथन में जो यह देरी होगी उससे अर्थबोध नहीं होगा। इससे यह स्पष्ट है कि अर्थबोध के लिए वाक्य में आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति का होना अनिवार्य है।

हमने देखा है कि 'वेदांतपरिभाषा' तथा 'परमलघुमंजूषा' में आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति को वाक्य के अर्थबोध का कारण बताने के साथ ही 'तात्पर्य' को भी इसका एक कारण बताया गया है। आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति द्वारा जब वाक्य का अर्थ प्राप्त हो जाता है तब इस अर्थप्राप्ति के बाद भी वाक्य का विशेष अर्थ प्राप्त होता है, जो शब्दों के अर्थ से भिन्न समूचे वाक्य का अर्थ होता है। वही वाक्य का 'तात्पर्य' अथवा 'तात्पर्यार्थ' होता है।

विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता, आसत्तियुक्त वाक्यसमूह को महावाक्य माना है। इस प्रकार के वाक्य के दो प्रकार मानते हैं, एक वाक्य और दूसरा महावाक्य :

वाक्योच्चयो महावाक्यम्। २-१
योग्यताकांक्षासत्तियुक्त एव
इत्थं वाक्यं द्विधा मतम्। २-१
इत्थमिति वाक्यत्वेन महावाक्यत्वेन च।[1]

विश्वनाथ का मत है कि वाक्यों में जब पारस्परिक आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति होगी तभी वे महावाक्य का रूप धारण कर सकते हैं। 'राम जाता है, आकाश देखा जाता है', आदि वाक्य महावाक्य नहीं बना

---

१. साहित्यदर्पण।

सकते, क्योंकि इनमें पारस्परिक आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति नहीं है। महावाक्य के उदाहरणस्वरूप वे 'रामायण, महाभारत, रघुवंश' आदि को उपस्थित करते हैं।

इस मीमांसा द्वारा यह उपलब्धि होती है कि अर्थबोध का चरम अवयव वाक्य है। इस संबंध में हमने आधुनिक भाषाशास्त्रियों तथा प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों दोनों के मत देखे हैं। और, यह भी देखा है कि इन दोनों के मतों में समानता है।

७

अर्थबोध की प्रक्रिया

§ १५. अर्थबोध के चरम अवयव वाक्य की चर्चा हुई है, वाक्य के निर्माण के आवश्यक तत्त्वों की भी चर्चा हुई है। भावों तथा विचारों की जितनी अभिव्यक्तियाँ हम अपने जीवन तथा समाज के नाना क्षेत्रों में करते हैं उन्हें वाक्यों के माध्यम से ही। इस प्रकार वाक्य ही हमारी जीवन तथा समाजयात्रा के नाना क्षेत्रों को रूप देते हैं। यदि ये न हों तो यह यात्रा दूभर हो जाय।

जब हम वाक्य लिखते अथवा बोलते हैं तब उसका पढ़ने और सुननेवाला उसके अर्थ को कैसे समझ लेता है और क्यों समझ लेता है? भाषातात्त्विक और इस भाषातत्त्व से संबद्ध मनस्तात्त्विक कौन-सी क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ हैं जिनसे अर्थबोध होता है? विवेचना के ये सब विषय भी उपस्थित होते हैं। इन विषयों के संबंध में नवीन तथा प्राचीन दोनों भाषाशास्त्रियों ने अनेक दृष्टियों से प्रभूत विवेचन किया है।

हमने देखा है कि शब्दों में आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति होने से वाक्य के अर्थ का बोध होता है। कुछ लोग तात्पर्य को भी अर्थबोध का एक कारण मानते हैं।

आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति के कारण शब्दों के अर्थ जब अन्वित होते हैं तब उन (अर्थों) से एक विशेष अर्थ अभिव्यक्त होता है, जो अर्थ शब्दार्थों से भिन्न होकर वाक्यार्थ होता है। अभिहितान्वयवादी

ऐसा मत प्रतिष्ठापित करते हैं। शब्दों का वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ होता है, यह मत अन्विताभिधानवादियों द्वारा स्वीकृत किया गया है :

> **आकांक्षायोग्यतासंनिधिवशाद्वक्ष्यमाण स्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेष वपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीत्यभिहितान्वयवादिनां मतम्। वाच्य एव वाक्यार्थ इत्यन्विताभिधानवादिनः ॥ २-१**[1]

शब्द अपनेअर्थोंका बोध कराते हैं, बस। जैसे, 'घड़े को बनाता है' वाक्य में 'घड़ा' एक पात्रविशेष का बोध कराता है, 'को' परसर्ग 'घड़े' में 'कर्मत्व' का बोधक है, 'बनाता' है द्वारा क्रिया का बोध होता है। किंतु 'घड़े को बनाता है' वाक्य का वास्तविक अर्थ है : 'घड़े में एक कर्मत्व की 'स्थिति' है, जो क्रिया का सहायक है'। इस 'स्थिति' का बोध उक्त वाक्य के किसी भी शब्द द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता, इस प्रकार यह 'स्थिति' का अर्थ वाक्य द्वारा अभिव्यक्त अर्थ से भिन्न है। यह 'स्थिति' अर्थ की प्रकृति ही भिन्न है और यह अर्थ आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति द्वारा प्राप्त होता है, यही तात्पर्यार्थ है। नैयायिकों तथा कुमारिलभट्ट के अनुयायियों द्वारा मान्य इस मत को अभिहितान्वयवाद कहते हैं, जिसमें शब्दों का पारस्परिक अन्वय उन (शब्दों) के अर्थ की अभिव्यक्ति के पश्चात् जाना जाता है।

अन्विताभिधानवाद यह स्वीकार करता है कि शब्दों के अर्थों के साथ ही उन (शब्दों) का पारस्परिक अन्वय भी अभिव्यक्त होता है। इस मत के अनुसार बालक द्वारा वाक्य के अर्थ के बोध की प्रक्रिया यों है : एक बालक अपने पिता अथवा अन्य गुरुजनों को यह कहते हुए सुनता है कि 'देवदत्त, गाय लाओ, घोड़ा लाओ'। और, देखता है कि

---

1. काव्यप्रकाश।

देवदत्त पशु विशेष गाय और घोड़ा ले आता है। वह उनको यह कहते हुए भी सुनता है कि 'देवदत्त, गाय ले जाओ, घोड़ा ले जाओ'। और, देखता है कि देवदत्त उन्हीं पशु विशेष गाय और घोड़े को ले जाता है। पिता तथा अन्य गुरुजनों द्वारा बार-बार 'गाय' तथा 'घोड़ा' शब्द सुनने से और यह देखने से कि इन शब्दों को सुन देवदत्त पशु विशेष लाता है और ले जाता है बालक को निश्चय हो जाता है कि 'गाय' और 'घोड़ा' शब्द का क्या अर्थ है, वह जान लेता है कि 'गाय' और 'घोड़ा' कैसे पशु होते हैं। इसके साथ ही उसे 'लाना' तथा 'ले जाना' क्रियाओं का अर्थ भी मालूम हो जाता है। अन्विता-भिधानवादी कहते हैं कि अर्थबोध की प्रक्रिया ऐसी ही होती है। उनका मत है कि अन्वित पदार्थ अभिहित अथवा अभिव्यक्त होता है, वह तात्पर्य द्वारा नहीं जाना जाता है। अन्विताभिधानवाद प्रभाकर के अनुयायी मीमांसकों द्वारा मान्य है।

§ १६ अर्थबोध की प्रक्रिया के अंतर्गत एक समस्या यह उदित होती है कि किसी वस्तु-व्यापार के लिए किसी शब्द विशेष का ही प्रयोग क्यों किया जाता है ? ऐसी परिस्थिति में अन्य शब्द का व्यवहार क्यों नहीं किया जाता ? 'गाय' जंतु विशेष का बोध कराने के लिए 'गाय' शब्द का ही व्यवहार क्यों होता है ? 'गाय' शब्द में कौन-सी शक्ति, कौन-सी विशेषता है कि उससे 'गाय' जन्तु विशेष का बोध होता है ? 'गाय' शब्द में यह शक्ति आई कहाँ से ? इसमें संदेह नहीं कि शब्दों में अर्थबोध की विशेषता होती है—शक्ति होती है। यह शक्ति आई कहाँ से ? नैयायिक कहते हैं कि इस शब्द से यह अर्थ समझना चाहिए अथवा इस शब्द से यह अर्थबोध हो, अथवा इसे यों कहें कि इस शब्द से यह अर्थबोध होता है, यह व्यवस्था, शब्दों में अर्थबोध की यह शक्ति ईश्वर के 'संकेत', उसकी 'इच्छा' से आई है। ईश्वर ने

अपनी इच्छा से यह नियत कर दिया है कि 'गाय' शब्द द्वारा 'गाय' जन्तु विशेष का बोध हो। उसकी इस इच्छा, इस संकेत के कारण ही 'गाय' शब्द में 'गाय' जंतु विशेष के बोध की शक्ति आ जाती है :

अस्मात्पदादयमर्थो बोधव्य इतीश्वर संकेतः शक्तिः[१]।

ईश्वर संकेतः शक्तिः।[२]

शक्तिरीश्वरेच्छा या संकेत इत्युच्यते।[३]

'संकेत' के लिए 'समय' शब्द का प्रयोग वैशेषिक और न्याय दर्शन में किया गया है :

सामयिकः शब्दादर्थप्रत्ययः। ७-२-२०[४]

इस सूत्र की उपस्कार व्याख्या से ज्ञात होता है कि उक्त संकेत तथा इस 'समय' में कोई भेद नहीं है :

सामयिक इति समय ईश्वर संकेतः अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इत्याकारः, यः शब्दो यस्मिन्नर्थे भगवता संकेतितः स तमर्थं प्रतिपादयति तथा च शब्दार्थयोरीश्वरेच्छैव संबंधः स एव समयस्तदधीन इत्यर्थः[४]।

'न्यायसूत्र' में कहा गया है :

न सामयिकत्वाच्छब्दार्थ संप्रत्ययस्य। २-१-५५[५]

इसकी व्याख्या करते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि यह समय क्या है? समय यह अभिधान-अभिधेय नियमनियोग है जिसके द्वारा यह निश्चित होता है कि इस शब्द का यह अर्थ है :

---

१. तर्कसंग्रह।

२. शक्तिवाद।

३. अलंकारशेखर।

४. वैशेषिकदर्शन।

५. न्यायसूत्र।

कः पुनरयं समयः। अस्य शब्दस्येदमर्थजातमभिधेयमिति अभिधानाभिधेय नियमनियोगः।[1]

'तर्कदीपिका' में शब्द और उसके अर्थ के संबंध को 'शक्ति' कहा गया है, जिससे शब्दश्रवण होने पर स्मृति में अर्थ का बोध होता है :

अर्थस्मृत्यनुकूलः पदपदार्थ संबंधः शक्तिः।

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि कुछ लोग संकेत अथवा शक्ति को ईश्वर की इच्छा के रूप में ग्रहण करते हैं और कुछ लोग उसे शब्द और अर्थ का संबंध मानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिकों के लिए संकेत अथवा शक्ति का द्वितीय स्वरूप ही तर्कसंगत जान पड़ता है।

§ १७ संकेत अथवा शक्ति का स्वरूप हमने देखा है। कुछ ऐसे साधन हैं, जिन्हें प्रकार भी कहा जा सकता है, जिनसे हमें संकेत अथवा शक्ति को जानने में सुविधा होती है। वे हैं :

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदंति सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥[2]

व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवचन, व्यवहार, वाक्यशेष, विवृति, सिद्धपद, सांनिध्य से हमें संकेत अथवा शक्ति को पहचानने में सहायता मिलती है। व्याकरण द्वारा हम धातु का अर्थ, व्युत्पत्ति, प्रत्यय, आदि का ज्ञान करते हैं। 'गाय' का उपमान देकर हम 'गवय' का अर्थ जानते हैं। कोश द्वारा हम यह जानते हैं कि 'देव' का अर्थ 'अजर, अमर', आदि हैं। आप्तवचन द्वारा भी हमें अर्थबोध होता है,

---

१. वही।
२. परमलघुमंजूषा, पृ० १०३ से उद्धृत।

इसकी चर्चा पहले हुई है। लोक में शब्द के व्यवहार द्वारा भी उसके अर्थ की जानकारी होती है। वाक्यशेष अर्थात् समूचे वाक्य अर्थात् संदर्भ द्वारा भी अर्थ पहचाना जाता है। विवृति अथवा व्याख्या से भी अर्थ जानने में सहायता मिलती है। ऐसा पद अथवा शब्द, जिसका अर्थ प्रमाणित, प्रसिद्ध है, उसके साथ किसी शब्द के रहने पर भी उस शब्द का अर्थ जानने में सुविधा होती है।

§ १८ संकेत की अवस्थिति कहाँ होती है ? संकेत कहाँ माना जाय ? 'घट' शब्द सुनकर हम प्रथम-प्रथम क्या बोध करते हैं ? कहने का तात्पर्य यह कि संकेत का ज्ञान हमें 'घट' वस्तु में होता है, या 'घटत्व' जाति में अथवा 'घट' तथा 'घटत्व' दोनों में। संकेत की अवस्थिति कहाँ है ? इस संबंध में दार्शनिकों, वैयाकरणों तथा साहित्यिकों ने प्रभूत गहन विवेचन किया है और सबने अपना-अपना मत प्रतिष्ठापित किया है।

हमें चार प्रकार के शब्दों का व्यवहार दिखाई पड़ता है :

चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जाति शब्दाः गुण शब्दाः क्रिया शब्दाः यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः। १-१-२[1]

विश्वनाथ का मत है कि संकेत का ग्रहण जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया में करना चाहिए :

संकेतो गृह्यते जातौ गुण द्रव्य क्रियासु च। २-४[2]

मम्मट का कथन है कि संकेतित अर्थ या तो चार प्रकार का—जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा संबंधी होता है या फिर एक प्रकार का—जाति

---

१. महाभाष्य।

२. साहित्यदर्पण।

संबंधी । मम्मट कहते हैं कि व्यावहारिक कार्य करने की दृष्टि से देखा जाय तो प्रवृत्तिनिवृत्तियोग्य व्यक्ति ही होता है; तथापि आनन्त्य और संकेत की दृष्टि से विचार किया जाय तो संकेत को व्यक्ति में ग्रहण करना चाहिए। व्यक्ति में संकेत ग्रहण करने से 'गौः, शुक्लः, चलः, डित्थः' आदि का विषयविभाग भी नहीं प्राप्त होता । अतः संकेतग्रहण व्यक्ति की उपाधि में ही करना चाहिए :

संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेववा । २-३
यद्यप्यर्थक्रियाकारितया प्रवृत्तिनिवृत्ति योग्या
व्यक्तिरेव, तथाप्यानन्त्याद्व्यभिचाराच्च तत्र संकेतः
कर्तुं न युज्यत इति, गौः शुक्लश्चलोडित्थ इत्यादीनां
विषयविभागो न प्राप्नोतीति च तदुपाधावेव संकेतः ।[1]

हमने निवेदन किया है कि इस संबंध में विभिन्न मत हैं । प्रधान मत ये हैं : जातिविशिष्ट व्यक्तिवाद (प्राचीन नैयायिक), केवल व्यक्तिवाद (नव्य नैयायिक), केवल जातिवाद (मीमांसक), अपोहवाद (बौद्ध) जात्यादिवाद (वैयाकरण) ।

§ १६ प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी अर्थ के स्वरूप के संबंध में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना की है । किस मानसिक प्रक्रिया द्वारा अर्थ रूप ग्रहण करता है, इस पर उन्होंने विचार किया है। कहते हैं कि शब्दों का पौर्वापर्य बुद्धि का विषय है । बुद्धि ही स्थिर करती है कि कौन शब्द आगे रहे और कौन शब्द पीछे । एक व्यक्ति जब कोई वस्तु-व्यक्ति अपनी आँखों के बाहर सामने देखता है तब वह मन में भीतर यह निर्धारित करता है कि इस अर्थ के लिए इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए । और, इस शब्द में इस वर्ण का प्रयोग करना चाहिए । तब यह, तब यह, ऐसा वह अपने मन में निर्धारित करता है :

---

1. काव्यप्रकाश ।

बुद्धिविषयमेव शब्दानां पौर्वापर्यम् । इह य एष मनुष्यः प्रेक्षापूर्वकारी भवति स पश्यति अस्मिन्नर्थेऽयं शब्दः प्रयोक्तव्यः, अस्मिंस्तावच्छब्देऽयं तावदर्थः ततो यं ततोयमिति । १-४-४[1]

तात्पर्य यह है कि पंडित अंतःकरण में कंठ, तालु, आदि अभिघात व्यापारजन्य शब्द को प्रतिबिंबित करके वाच्य अर्थों को बुद्धिदेश में ही पौर्वापर्य व्यवहार करे :

बुद्धौ कृत्वा सर्वा चेष्टाः कर्ता धीरस्तन्वन्नीतिः
शब्देनार्थान्वाच्यान्दृष्ट्वा बुद्धौ कुर्यात्पौर्वापर्यम् । १-४-४[1]

इस विवेचना का निष्कर्ष यह है कि अर्थ का विषय बाहर रहता है, किंतु अर्थ रहता है भीतर, अर्थ का संबंध भीतर की बुद्धि से है । आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी अर्थ के संबंध में इस तरह की मीमांसा प्रस्तुत की है ।

§ २० अर्थबोध की प्रक्रिया के संबंध में अब तक हम प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की उपलब्धियों की चर्चा करते रहे हैं । इस विषय में नवीन अर्थात् पश्चिमी भाषाशास्त्रियों ने भी प्रभूत विवेचन किया है । साहित्यशास्त्रियों ने यह तथ्य बार-बार उपस्थित किया है कि हमारे हृदय के भावों तथा बुद्धि के विचारों की संपूर्ण अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से नहीं हो पाती । भाव तथा विचार वाणी में आकर बहुत कुछ टूट-फूट जाते हैं, अतः रचनाकार के संपूर्ण भावों-विचारों का प्रेषण श्रोता, पाठक अथवा दर्शक तक नहीं हो पाता । अर्थबोध की प्रक्रिया के भी संबंध में विवेचना करते समय पश्चिमी भाषाशास्त्री कुछ ऐसा ही मत प्रतिपादित करते हैं । जर्मन भाषाशास्त्री हर्मान पाउल (Hermman Paul) अपने Principles of the History of Language ग्रंथ में इस संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए

---

१. महाभाष्य ।

कहते हैं कि विचारों का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक प्रेषण अथवा संक्रमण कठिन है। इस प्रक्रिया में होता यह है कि हमारे मन में किसी विचार का जो और जैसा बोध होता है उसी (बोध) के आधार पर दूसरों के मन के विचारबोध को वही और वैसा ही अनुमान हम कर लेते हैं और आश्वस्त हो जाते हैं। किंतु श्रोता में हमारे जैसा विचार-बोध नहीं भी हो सकता है। सी० के० ओग्डेन तथा आइ० ए० रिचर्ड्स ने भी अपने The Meaning of Meaning ग्रंथ में शब्द की इस अपूर्ण प्रेषणीयता, अभिव्यक्ति अथवा द्योतकता पर विचार किया है। उनका मत भी हर्मान पाउल के समान है। इन मनीषियों का भी कथन है कि शब्द में प्रेषणीयता की शक्ति अपूर्ण है। इसीलिए इन्हों ने यह भी कहा है कि शब्दस्थित भावों-विचारों को स्पष्टतः तथा पूर्णतः प्रेषित करने में इंगित, हावभाव पूरी सहायता करते हैं। इनकी सहायता के बिना शब्दों की अभिव्यक्ति में पूरी सफलता नहीं मिलती। एक दूसरे भाषाशास्त्री ने भी इस संबंध में ऐसा ही विवेचन करते हुए कहा है कि वक्ता अपने भाव का (शब्द के रूप में) हमें एक परंपरित संकेत अथवा प्रतीक देता है। इस संकेत या प्रतीक को हम कुछ तो प्रसंग अथवा परिस्थिति, कुछ वक्ता के संबंध में अपनी जानकारी और कुछ शब्द के साथ अपने (द्वारा अर्जित) संपर्क के आधार पर समझते हैं :

Yet we do not and cannot see all the connotations which the word has in the speaker's mind. He has given us a conventional sign or symbol of his ideas. Our interpretation of the sign will depend partly on the context or the circumstances, partly on what we know of the speaker, and partly on the associations

which we ourselves attach to the word in question.[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थबोध के प्रक्रिया में वक्ता तथा श्रोता के बीच व्यवधान है। वक्ता तथा श्रोता के समान संस्कृतिसंपन्न होने से यह व्यवधान नहीं रह सकता अथवा कम हो सकता है। दोनों के देशकाल, शिक्षादीक्षा, मनःस्थिति, स्वभाव, रहनसहन, आदि समान होने पर यह व्यवधान नहीं अथवा कम रहता है।

नित्य प्रति के व्यवहार तथा इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि अर्थ-बोध के क्षेत्र में वक्ता और श्रोता का संबंध अनिवार्य है। भाषा के माध्यम से अर्थ (-बोध) का यही रूप है कि एक परिस्थितिविशेष में वक्ता बोलता है और अपनी बोली (भाषा) द्वारा श्रोता का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है। इस प्रकार अर्थ वक्ता द्वारा (श्रोता में) प्रभावजागरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है :

we have defined the meaning of a linguistic form as the situation in which the speaker utters it and the response which it calls forth in the hearer.

...... we usually discuss and define meanings in the terms of a speaker's stimulus.[२]

सी० के० ओग्डेन तथा आइ० ए० रिचर्ड्स ने भी इस संबंध में ऐसी ही विवेचना प्रस्तुत की है।[3]

---

१. J. B. Greenough and G. L. Kittredge: Words and their Ways in English Speech, p 264.

२. L. Bloomfield: Language, p 139.

३. The Meaning of Meaning; pp. 10–11.

§ २१ अर्थबोध के चरमावयव वाक्य के संबंध की मीमांसा हमने देखी है। हमने देखा है कि आकांक्षा, योग्यता, आसत्तियुक्त शब्दों के समूह वाक्य से अर्थबोध होता है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों का यही मत है। कुछ-कुछ इसी तरह की विवेचना पश्चिमी भाषाशास्त्रियों ने भी की है। एम॰ मैक्स बॉनेट (M. Max Bonnet) का कथन है कि सभी व्यवस्थित अभिव्यक्तियों में यह समानता पाई जाती है कि उनमें शब्दों के एक साथ रहने के प्रभाव से वे (शब्द) पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर कुछ मात्रा में प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। और, इस प्रकार प्रत्येक शब्द एक दूसरे (शब्द) के कुछ संकेत अथवा अर्थ को अर्जित वा ग्रहण करता है। ऐसा भी संभव है कि दो शब्दों में से एक शब्द अकेले ही पाठक के मन में वह भाव उत्पन्न करे जो सामान्यतः दो शब्दों के द्वारा उत्पन्न होता है :

All fixed expressions have this in common : that the words by dint of being placed together, react to some degree on each other, and each acquire part of the signification of the other......It may happen also that one of the two, by itself alone, arouses in the mind of the reader the idea usually expressed by both.[१]

§ २२ हमारी यह बद्धमूल धारणा है कि शब्द का अर्थ होता है। पश्चिमी मनीषी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि शब्द का अपना कोई अर्थ नहीं होता। इसका कोई अर्थ तब होता है जब कोई सुधी इसका प्रयोग (किसी वस्तु के लिए) करता है, अथवा इसे यों कहें कि तब यह 'अर्थ' ग्रहण करता है। इस प्रकार शब्द मात्र साधन है :

Words, as every one now knows, mean

१. Michel Bre'al: Semantics, p. 153.

nothing by themselves.......It is only when a thinker makes use of them that they stand for anything, or, in one sense, have 'meaning'. They are instruments.'[1]

एक दूसरे मनीषी बर्ट्रैंड रसेल (Bertrand Russell) ने भी अपने Principles of Mathematics नामक ग्रंथ में यही सिद्धांत निर्धारित किया है। उनका कथन है कि जब यह कहा जाता है कि (शब्द) का अर्थ होता है तब तर्कशास्त्र तथा मनःशास्त्र के तत्त्वों को भ्रम से एक कर दिया जाता है। 'शब्दों' के अर्थ होते हैं, जब यह कहा जाता है तब इसका सीधासादा मतलब होता है कि वे अपने अतिरिक्त किसी वस्तु के प्रतीक हैं। इस प्रकार 'शब्दों का अर्थ होता है', यह कहना तर्कविरुद्ध है। जब तक एक प्रस्तावबाक्य भाषा-विषयक नहीं होता है तब तक उसमें शब्द नहीं होते। उसमें शब्द द्वारा द्योतित वास्तविक सत्ताएँ होती हैं। किंतु 'एक आदमी', ऐसी धारणाओं का एक दूसरे रूप में अर्थ होता है। यों कहा जाय कि अपने तार्किक रूप में वे प्रतीकात्मक हैं, क्योंकि उनमें एक शक्ति है जिसे मैं 'द्योतकता' कहता हूँ। जब एक प्रस्तावबाक्य में 'एक आदमी' आता है—जैसे : 'रास्ते में मैं एक आदमी से मिला'—तब प्रस्तावबाक्य 'एक आदमी' की धारणा से संबद्ध नहीं होता, किंतु एकदम दूसरी किसी चीज से संबद्ध होता है, धारणा द्वारा साक्षात् द्विपद द्योतित होता है। इस प्रकार ऐसी धारणाओं में अर्थ अमनोवैज्ञानिक रूप में होता है :

To have meaning is a notion confusedly

१. C. K. Ogden, I. A. Richards : The Meaning of Meaning, pp. 9–10.

compounded of logical and psychological elements. 'Words' all have meaning, in the simple sense that they are symbols which stand for something other than themselves. But a proposition, unless it happens to be linguistic, does not itself contain words: it contains the entities indicated by words. Thus meaning, in the sense in which words have meaning, is irrelevant to logic. But such concepts as 'a man' have meaning in another sense: they are, so to speak, symbolic in their own logical nature, because they have the property which I call 'denoting'. That is to say, when 'a man' occurs in a proposition (e. g. 'I met a man in the street') the proposition is not about the concept 'a man', but about something quite different, some actual biped denoted by the concept. Thus conceptions of this kind have meaning in a non-psychological sense.'[1]

इस मीमांसा से पश्चिमी मनीषियों का एतत्संबंधी सिद्धांत स्पष्ट हो गया होगा। वे यही कहना चाहते हैं कि शब्द का कोई अर्थ नहीं होता, वह अर्थ का प्रतीक होता है। अरिस्टाटल (Aristotle) ने भी अपने De Interpretatione में इस पर जोर दिया है कि

१. वही, पृ० १७२।

शब्द प्रधानतः मानसिक प्रभावों के संकेत हैं, और केवल गौणतः वे उन वस्तुओं के संकेत हैं जिनसे उनकी समानताएँ हैं :

He (Aristotle) there (in De Interpretatione) insists that words are signs primarily of mental affections, and only secondarily of the things of which these are likenesses.[1]

यहाँ 'संकेत' की चर्चा की गई है, जो 'प्रतीक' है, जिसके विषय में अन्य मनीषियों ने विवेचना की है।

§ २१ प्रसंग से इसका उल्लेख किया गया है कि श्रोता किस परिस्थिति में वक्ता के भावोंविचारों को ग्रहण करता है और वक्ता के बोलने का लक्ष्य क्या होता है। इसका भी उल्लेख किया गया है कि भावोंविचारों की पूर्ण प्रेषणीयता में शब्द बहुत अंशों में असमर्थ होते हैं। इसी प्रसंग में हमने यह भी देखा है कि शब्द का अर्थ नहीं होता, वह अर्थ का प्रतीक होता है। यह भी देखा गया है कि वाक्यगत शब्दों की पारस्परिक प्रतिक्रिया से अर्थ सामने आता है। इस संक्षिप्त भूमिका के आधार पर हम अर्थबोध की प्रक्रिया की मीमांसा करें। जब हम किसी कथन को सुनते हैं तब उस कथन में प्रयुक्त प्रतीकों द्वारा हमारे में दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं। एक तो यह कि प्रतीक हमें एक संदर्भसंबद्ध कार्य के लिए प्रेरित करते हैं। दूसरा यह कि ये प्रतीक एक मंतव्य-ग्रहण के लिए प्रेरित करते हैं। ये कार्य तथा मंतव्य परिस्थिति के अनुसार अल्पाधिक रूप में वक्ता के कार्य तथा मंतव्य के समान होते हैं :

When we hear what is said, the symbols

---

१. वही, पृ० ३५।

both cause us to perform an act of reference and to assume an attitude which will, according to circumstances, be more or less similar to the act and the attitude of the speaker.'

मन पर विशेष दृष्टि रख कर विचार करने वाले 'मेंटलिस्ट साइकोलाजिस्टों' का भी ऐसा ही निर्णय प्राप्त होता है।[1] एक उदाहरण द्वारा इस विषय को स्पष्ट किया जाय। एक व्यक्ति ने कहा—'कुर्सी ले आओ।' उसके इस कथन में 'कार्य' तथा मंतव्य दोनों हैं। उसके इस कथन को सुनकर 'कुर्सी' वस्तु तथा 'ले आओ' क्रिया पर हमारी दृष्टि जाती है। इस 'वस्तु' और 'क्रिया' पर हमारी दृष्टि संदर्भ के द्वारा जाती है। यह इस प्रकार कि 'कुर्सी' तथा 'ले आओ' 'वस्तु' और 'क्रिया' का हमारे मन में बोध है। 'कुर्सी' क्या है, इसे हम अनेक बार की जानकारी से अपने मन में ठीक कर चुके हैं। ऐसे ही 'ले आओ' क्रिया भी हम अपने मन में ठीक तरह से धारणा कर चुके हैं। उसके 'कुर्सी ले आओ' कथन को सुनकर मन में धरे इन्हीं तथ्यों का हम संदर्भ करते हैं। अर्थात् यों कहें कि पूर्व के बोध अथवा ज्ञान को वर्तमान के बोध अथवा ज्ञान के संदर्भ से संयुक्त करते हैं और जान जाते हैं कि 'कुर्सी ले आओ' का तात्पर्य क्या है। इस उदाहरण की मीमांसा से दो निष्कर्ष सामने आते हैं। एक तो यह कि वर्तमान में अर्थबोध की प्रक्रिया का आधार भूतकाल से चली आती हुई समान अर्थबोध की परंपरा है। दूसरा यह कि अर्थ को हम देख अथवा सुनकर अर्जित करते हैं। पश्चिमी मनीषियों की धारणा भी ऐसी ही है

All significant speech he (Aristotle) says,

---

1. वही पृ० ११; L. Bloomfield: Language, p. 142.

is significant by convention only, and not by nature or as a natural instrument.[1]

The meaning is then 'acquired' in the genetic sense as are animal meanings. But we must not confuse the origin of meanings with the way they operate and with their status after they are acquired and established. Once meaning is acquired it is perhaps directly intuited. Meanings, once assigned as intrinsic qualities of objects, are then as immediately given in 'intuition' as are the sense data.[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थबोध की प्रक्रिया के क्षेत्र में विचार और वस्तु का संबंध भी है। यह संबंध अल्पाधिक रूप में प्रत्यक्ष भी होता है और परोक्ष भी। प्रत्यक्ष संबंध का उदाहरण तब सामने आता है जब हम, मान लीजिये, किसी देखे जाते हुए रंगीन सतह के बारे में सोचते हैं। परोक्ष संबंध का उदाहरण तब सामने आता है जब हम, मान लीजिए, नैपोलियन के बारे में सोचते अथवा उसका उल्लेख करते हैं। परोक्ष संबंध में संकेत-स्थितियों की बड़ी लंबी श्रृंखला हो सकती है, जो कार्य और इसकी वस्तु के बीच में चली जाती है। जैसे, परोक्ष संबंध के उदाहरण में उक्त यह श्रृंखला होगी : शब्द—ऐतिहासिक-समसामयिक प्रमाण—साक्षात् साक्षी—नैपोलियन (वस्तु) :

Between the thought and the Referent

१. वही, पृ० ३६।

२. W. M. Urban : Language and Reality, p. 99.

there is also a relation; more or less direct (as when we think about or attend to a coloured surface, we see), or indirect (as when we 'think of' or 'refer to' Napoleon), in which case there may be a very long chain of sign-situation intervening between the act and its referent: word—historian—contemporary records—eye-witness—referent (Napoleon).[१]

अर्थबोध की प्रक्रिया के स्वरूप को और स्पष्ट किया जा सकता है। जब कोई प्रसंग हमें भूतकाल में प्रभावित कर चुका रहता है तब उस प्रसंग के मात्र एक अंश का पुनर्घटन हमें पूर्व अथवा भूतकाल की भांति ही प्रतिक्रिया करने को प्रेरित करता है। एक संकेत मूल प्रभावजागरण के आंशिक रूप में सदैव समान प्रभावजागरण करता है और उस (भूतकाल के) प्रभावजागरण द्वारा लगाई गई छाप को पुनः उपस्थित करने के लिए अलम् होता है :

...when a context has affected us in the past the recurrence of merely a part of the context will cause us to react in the way in which we reacted before. A sign is always a stimulus similar to some part of an original stimulus and sufficient to call up the engram formed by that stimulus.[२]

---

१. C. K. Ogden, I. A. Richards: The Meaning of Meaning, p. 11.

२. वही, पृ० ५३; देखिए पृ० २२।

§ २४ पश्चिमी मनीषियों ने इसे काफी जोर देकर कहा है कि अर्थबोध का स्वरूप सदैव वैयक्तिक होता है। शिलर (Schiller) कहते हैं कि अर्थ निश्चित रूप से वैयक्तिक है······किसी वस्तु का अर्थ इस पर आश्रित है कि कोई किस अर्थ में उसे प्रयुक्त करता है :

Meaning is essentially personal. ...what anything Means depends upon 'who' Means it.[1]

अर्थबोध के स्वरूप के संबंध में पश्चिमी मनीषियों की यह धारणा ठीक ही है। हम अपने वैयक्तिक अनुभव (वैयक्तिक अनुभव के अंतर्गत आप्तवचन भी ले सकते हैं) के आधार पर ही किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के संबंध में कुछ कहते हैं। ऐसी स्थिति में इस कथन का स्वरूप हमारे अनुभव के अनुसार ही होता है। 'हिमालय पर्वत' को हमने जिस रूप में देखा है—अनुभव किया है—उसी अनुभव की पीठिका में हम वर्णन करते समय 'हिमालय पर्वत' शब्द का व्यवहार करते हैं। 'घट' का जो रूप हमारे मन में बैठा है उसी रूप में हम 'घट' का व्यवहार करते हैं। अर्थ की इस वैयक्तिकता पर देशकाल का भी प्रभाव पड़ता है। 'काउ' (Cow) शब्द का प्रयोग भारतीय के लिए 'गाय' का एक स्वरूप सामने लाएगा और डेनमार्की के लिए अन्य स्वरूप। ऐसे ही 'कलकत्ता' शब्द का प्रयोग ईसा की १९ वीं शती के लेखक के लिए एक अर्थ रखता था और आज के लेखक के लिए अन्य अर्थ रखता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थ का स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्नभिन्न होता है। वह वैयक्तिक होता है।

§ २५ अर्थबोध की प्रक्रिया का शरीरतात्त्विक पक्ष भी है, जिससे विशुद्ध मनस्तात्त्विक पक्ष भी जुड़ा हुआ है। हमने ऊपर की विवेचना में मनस्तात्त्विक पक्ष की यथाप्रसंग सहायता ली है। व्यवहारतः हम

---

१. वही, पृ० १६१।

देखते हैं कि शब्द के तीन भौतिक रूप हमारे सामने आते हैं। शब्द के बोलने में दो रूप उपस्थित होते है: मांसपेशियों का संचालन और वायु का संचालन। शब्द का लिखित अथवा मुद्रित चिह्न-संकेत इसका तीसरा रूप है। इन तीनों रूपों का संबंध प्रधानतः शरीर से है। इन तीनों में से प्रत्येक का संबंध विशुद्धतः मन से भी है। जैसे: शब्द-चित्र, जो मनश्चक्षु से देखा जाता है, ध्वनि का स्मृतिरूप या चित्र और चलत्रूप या चित्र। चलत्रूप का उदाहरण स्पर्श, श्रम, आदि की मांसपेशियों में अनुभूति है। ये सब मानसिक स्थितियाँ, मानसिक विषय (Mental contents) हैं। एक भवन के चित्र और एक शब्द के चित्र की निर्माणसामग्री समान है। दोनों रंग, रूप और दिशा की भावनाओं से निर्मित होते हैं:

To each of these corresponds a purely mental side: the word picture as seen 'in the mind's eyes'; the memory image of the sound and the kinetic or 'motor' image; that is feeling of touch, strain, etc., in the muscles. These are mental states, mental 'contents'. The picture of a word is the same sort of things as the picture of a house. Both are made up of ideas of colour, shape and direction.[1]

शब्द के जिन भौतिक तथा मानसिक रूपों की चर्चा की गई है वे संसर्ग से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस पर ध्यान रखना चाहिए कि वे चलत्क्षेत्र में भी एक दूसरे से संबद्ध हैं। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि वे उन अन्य मानसिक वस्तुओं से भी जुड़े रहते हैं जिनसे विचार को

1. The Encyclopedia Americana, p. 725.

रूप मिलता है। परिणाम यह होता है कि जब ये मानसिक रूप चेतना में रहते हैं तब शब्दरूप अथवा चित्र भी उपस्थित होते हैं। मनस्तत्त्व का यह नियम ही है कि कोई मानसिक वस्तु इस प्रकार जुड़ सकती है, अर्थात् किसी दूसरी मानसिक वस्तु का संकेत, स्मरण अथवा प्रतिनिधित्व कर सकती है। सभी भावनाएँ मानसिक वस्तुएँ होती हैं और सभी शब्दरूप अथवा चित्र भी भावनाएँ अथवा मानसिक वस्तुएँ होती हैं :

It is a law of psychology that any mental content may thus be linked up with, that is, suggest, recall or 'represent' any other mental contents. But all ideas are mental contents and all word images are ideas or mental contents.[1]

अर्थ केवल एक मानसिक वस्तु है, जिसे कोई दूसरी मानसिक वस्तु संसर्ग से उपस्थित करती अथवा उसका प्रतिनिधित्व करती है। जब हम शब्द सुनते अथवा देखते हैं तब उन (शब्दों) के मानसिक रूप, अथवा मात्र संसर्ग के माध्यम से, दूसरी मानसिक वस्तुएँ चेतना में उपस्थित करते हैं, जो उन (शब्दों) के अर्थ होते हैं। इस प्रकार अर्थ मात्र प्रतिनिधित्वकरण है :

Meaning is simply one mental content which some other mental content by association calls up, that is, represents. When we hear or see words, their mental images simply through association call into consciousness other mental contents, which are their meaning. Meaning is representation.[1]

---

1. वही, पृ० ७२५।

शरीरतत्त्व तथा विशुद्ध मनस्तत्त्व की दृष्टि से पश्चिमी मनीषियों द्वारा की गई अर्थबोध की प्रक्रिया की विवेचना अति संक्षेप में की गई है। हम देखते हैं कि हमारी पूर्व की उक्त मनीषियों की विवेचना से यह विवेचना भी मेल खाती है।

८

अर्थ

§ २६ अर्थ के स्वरूप के संबंध में प्राचीन, नवीन, पूर्वी, पश्चिमी सभी भाषाशास्त्रियों ने मीमांसा प्रस्तुत की है। पहले हम प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की मीमांसा की ओर दृष्टिपात करते हैं। अर्थ-बोध के साधन और अर्थ के चरमावयव वाक्य की मीमांसा हम देख चुके हैं कि शब्द और अर्थ का नित्य संबंध है; एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं रह सकती। इन मीमांसाओं की पीठिका पर ही हम अर्थ के यथार्थ स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं। अर्थ के समुचित रूप, अथवा यों कहें कि वक्ता जिस अर्थ का बोध कराना चाहता है उस अर्थ के समुचित या वास्तविक रूप का बोध श्रोता द्वारा अर्थ के साधन शब्द को यथार्थ रूप में ग्रहण करने पर ही संभव होता है। शब्द के यथार्थ बोध के बिना अर्थ के यथार्थ बोध का होना असंभव है। तात्पर्य यह कि अर्थ के रूप की प्राप्ति में शब्द का ठीक-ठीक श्रवण अथवा इसके लिखित या मुद्रित होने पर इसकी यथार्थ पहचान अत्यावश्यक है। इस विचार से स्पष्ट है कि अर्थरूप की स्थापना के पूर्व शब्द का यथार्थ बोध चाहिए। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने इस संबंध में इसी प्रकार का विचार उपस्थित किया है। कहते हैं :

शब्दपूर्वको ह्यर्थे संप्रत्ययः। १-१-६[1]

लोकव्यवहार में भी हम देखते हैं कि जिज्ञासु श्रोता शब्द का जब वास्तविक रूप से ग्रहण नहीं कर पाता तब कहता है : 'जी, आपने क्या

१. महाभाष्य।

कहा ?' 'जी आपने क्या कहा'—उक्ति ही यह बतलाती है कि जिज्ञासु ने शब्द को समुचित रूप से नहीं सुना है और वक्ता यदि उससे यथार्थ रूप से कुछ जानना चाहता है तो उस (श्रोता) के द्वारा ठीक-ठीक शब्दों का सुनना अत्यावश्यक है। इस प्रकार अर्थ के रूप की जानकारी के लिए शब्द के रूप की जानकारी पहले कर लेना जरूरी है।

§ २७ शब्द की यथार्थ जानकारी पर श्रोता इतना जोर क्यों देता है ? इसीलिए कि अर्थ के समुचित रूप को प्रकट करने के लिए शब्द को समुचित रूप से जानने की आवश्यकता है। इसकी यथार्थ जानकारी में एक और कारण निहित है। वह यह कि शब्द से जो अर्थ मिलता है वही उस शब्द का अर्थ होता है। सभी शब्द अपने-अपने अर्थ के साथ होते हैं। अर्थात् सभी शब्द अपना-अपना अर्थबोध कराते हैं। शब्द अपना जो अर्थबोध कराता है वही उसका अर्थ होता है;

सर्वे शब्दाः स्वेनार्थेन भवन्ति स तेषामर्थ इति। ४-१-२[1]

प्राचीन भारतीय अन्य भाषाशास्त्रियों की उपलब्धि भी इस विषय में ऐसी ही है :

यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्। २ ३२८[2]
अयमस्य पदस्यार्थ इति केचित् स तेन वा।
योऽर्थः प्रतीयते यस्मात् स तस्यार्थ इति स्मृतः।[3]

अन्यत्र भी यही कहा गया है कि जो अर्थ जिस शब्द के साथ अन्वित रहता है वही उस शब्द का अर्थ होता है :

---

१. वही।

२. वाक्यपदीयम्।

३. न्यायमंजरी, पृ० ३२८।

तत्र योऽन्वेति यं शब्दमर्थस्तस्य भवेदसौ।
अन्यथाऽनुपपत्त्या हि शक्तिस्तत्राऽवतिष्ठते ॥ १६०[1]

इस संक्षिप्त विचार से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की दृष्टि अर्थ के स्वरूप के संबंध में क्या है ? जैसी मीमांसा देखी गयी है उससे ज्ञात होता है कि वे अर्थ को शब्दाश्रित मानते हैं। अर्थ का स्वरूप वही है जो शब्द द्वारा अभिव्यक्त होता है।

§ २८ अर्थ के स्वरूप के संबंध में पश्चिमी भाषाशास्त्रियों ने भी विवेचना की है। शिशुओं अथवा बालकों की भाषा पर अधिक जोर देकर भाषाशास्त्र पर विचार करनेवाले ओटो एस्पर्सेन (Otto Jespersen) ने अर्थ के रूप के संबंध में जो विचार किया है वह प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के विचारों से अनेक अंशों में मेल खाता है। उनका कथन है कि शब्द के क्रमशः बाह्यांतर तत्त्व ध्वनि और अर्थ की सत्ताएँ बालक तथा वयस्क के लिए भी अटूट संबंध के रूप में उपस्थित रहती हैं। जब तक बालक के लिए उसके माँ-बाप की ध्वनियाँ (अथवा शब्द) कोई अर्थ नहीं रखतीं तब तक वह उन (ध्वनियों) की नकल करने की चेष्टा नहीं करता, क्योंकि ऐसी स्थिति में उनमें या तो उसकी अभिरुचि नहीं होती अथवा होती भी है, तो अत्यल्प। शब्दों का एक अर्थ होता है, बालक अपनी खूब छोटी उमर से ही इसका अनुभव करना आरंभ करता है :

...to the child, as well as to the grownup, the two elements the outer, phonetic element, and the inner element, the meaning, of a word are indissolubly connected, and the child has no interest, or very little interest, in trying to

---

1. श्लोकवार्तिक, वाक्याऽधिकरण।

imitate the sounds of its parents except just in so far as these mean something. That words have a meaning, the child will begin to perceive at a very early age.'[1]

यहाँ भी हम देखते हैं कि अर्थ का रूप शब्दाश्रित है, जैसा विचार प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने किया है।

§ २६. कुछ पश्चिमी मनीषियों ने अर्थ की विवेचना करते समय शब्द को दृष्टिपथ में रखकर वस्तु को दृष्टिपथ में रखा है। अर्थात् इन्होंने अर्थ के रूपनिर्धारण में शब्द द्वारा जो जाना जाता है, जो बोधक है, उसकी सहायता ली है। कहने की आवश्यकता नहीं कि शब्द द्वारा अर्थ वस्तु-व्यक्ति अर्थात् बोधव्य से ही संबद्ध होता है। अतः अर्थ के रूपनिर्धारण के लिए इस प्रकार की विवेचना भी एक अन्य प्रस्थान है। केनीज (Keynes) का कथन है कि अर्थ कुछ ऐसा तत्व है जो वस्तुओं में निहित रहता है, जिनसे हमारा प्रत्यक्ष संबंध रहता है। वह कुछ ऐसा तत्व है जो रंग और ध्वनि की भाँति बोधित वस्तुओं में व्याप्त होने से प्रत्यक्ष बोधनीय होता है। बर्ट्रेंड रसेल (Bertrand Russell) की दृष्टि में अर्थ बोधनीय सत्ताओं में स्थित एक बोधनीय शक्ति है। जॉन लेयर्ड (John Laird) का विचार है कि अर्थ, कम से कम अपने प्रधान तात्पर्य में, प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय है। कोफ्का (Kofka) का मत है कि अर्थ हमारे ऐंद्रिक सत्य को वस्तु के रूप में परिवर्तित कर देता है। कोफ्का के इस विचार को सीधे-सादे ढंग से यों कहा जा सकता है कि अर्थ अपनी शक्ति से हमारी इंद्रियों को प्रेरित कर वस्तुबोध कराता है :

---

१. Otto Jespersen : Language, p. 113.

"Meaning", it is said by Keynes, "is something in the things of which we have direct acquaintance, something directly perceptible, like colour and sound, intrinsic to the thing perceived." Or again, by B. Russell, "Meaning is an observable property of observable entities." John Laird holds that meaning, at least in its primary significance, is "an object of direct perception"......in the word of Kofka, it is "meaning that transforms sense data into things."[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन मनीषियों ने अर्थ को वस्तुआश्रित माना है, शब्दाश्रित नहीं, जैसा ओटो एस्पर्सेन तथा प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री मानते हैं। ये अर्थ का वस्तु से सीधा संबंध मानते हैं, जिस (वस्तु) के माध्यम से अर्थ का बोध होता है।

§ २० दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिक ने भी अपनी-अपनी दृष्टि से अर्थ का रूपनिर्धारण किया है। कुछ के विचार संगृहीत कर हम विवेचना करेंगे। एड्मंड हुसर्ल (Edmund Husserl) और उनके शिष्य जे० गेसर (J. Geyser), जिन्होंने हुसर्ल के कार्य को आगे बढ़ाया था, के अर्थसंबंधी विचार हम उपस्थित कर रहे हैं। हुसर्ल का मत है कि अभिव्यक्ति अथवा उक्ति का कार्य प्रत्यक्षतः तथा तत्पश्चात् भाषा अथवा संज्ञा, क्रिया, आदि के 'अर्थ' या 'तात्पर्य' के रूप में प्रायः वर्णित किया जाता है। एक शब्दध्वनि के साथ अर्थ संबद्ध होता है,

---

१. W. M. Urban : Language and Reality, p. 105.

जो 'शब्दध्वनि' कुछ अभिव्यक्त करती है, केवल इसीलिए शब्दध्वनि 'अभिव्यक्ति' अथवा 'उक्ति' है:

According to Husserl, the function of expression is only directly and immediately adapted to what is usually described as the 'meaning' or the 'sense' of speech or parts of speech. Only because the meaning associated with a word-sound expresses something, is that word-sound called 'expression'.[1]

हुसर्ल के मत का निष्कर्ष यों कहा जा सकता है कि अर्थ अभिव्यक्ति अथवा उक्ति में रहता है, जिस अभिव्यक्ति अथवा उक्ति का संबंध भाषा से है। इस निष्कर्ष की पुष्टि तब होती है जब वे यह कहते सुने जाते हैं कि विभिन्न अभिव्यक्तियों का संबंध विभिन्न वस्तुओं से होते हुए भी उनका अर्थ एक ही हो सकता है। ऐसे ही एक वस्तु के विभिन्न अर्थ हो सकते हैं:

He (Husserl) bases his assertion on the fact 'that several expression can have the same meaning, but different objects, and again, different meanings, but the same object'[2]

यहाँ हम यही दिखाना चाहते हैं कि अभिव्यक्ति में अर्थ निहित है, वे ऐसा मानते हैं। 'एक वस्तु के विभिन्न अर्थ हो सकते हैं'—यह

१. C.K. Ogden, I. A. Richards : The Meaning of Meaning, p. 270.

२. वही, पृ० २७१।

देखकर प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के मत का स्मरण हो आता है, जो कहते हैं कि एक शब्द से दो अर्थों का प्रतिनिर्देशन होता है :

एकेन शब्दः प्रतिनिर्दिश्यते द्वाभ्यामर्थः । ५-१-२ [1]

गेसर कहते हैं कि 'अर्थ' और 'बोधव्य वस्तु', अथवा जो यह (अर्थ) अभिव्यक्त करता है, के बीच एक 'आवश्यक संबंध' है, क्योंकि 'अर्थ' अपने विषय (content) के माध्यम से 'बोधव्य' की अभिव्यक्ति होता है। जो अर्थ किया जाता है वह विचार अथवा भाषा के 'विषय' में निहित रहता है। अतः शब्द, अर्थ और विषय में भेद का ज्ञान अत्यावश्यक है :

Between the 'meaning' and 'what is meant', or what it expresses, there exists an 'essential' relation' because 'meaning' is the expression of the 'meant' through its content. What is meant lies in the 'object' of the thought or speech. We must therefore distinguish these three—Word, Meaning, Object.[2]

इस प्रकार हुसर्ल तथा गेसर के मत की एकता देखी जा सकती है। एम० गोम्पर्ज (M. Gomperz) का विचार है कि कथन और कथित वस्तु के बीच का संबंध अर्थ है :

The relation subsisting between the state-

---

१. महाभाष्य ।
२. C. K. Ogden, I.A. Richards : The Meaning of Meaning, p. 270.

ment and the fact expressed is called 'Meaning'.'[1]

कुछ दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों के विचार, अर्थ के संबंध में, हमने संगृहीत किए हैं। हमने यह भी देखा है कि इनके विचारों का सार-तत्त्व है अर्थ का वस्तुआश्रित होना। इन्होंने इस संबंध में अभिव्यक्ति, उक्ति, कथन का भी उल्लेख किया है, जो वस्तु तथा अर्थ से संबद्ध होता है।

§ ३१ सी० के० ओग्डेन और आइ० ए० रिचार्ड्स ने अर्थ की प्रमुख परिभाषाओं की एक प्रातिनिधिक सूची दी है, जिसे 'अर्थ' के प्रसिद्ध गवेषकों ने स्वीकार किया है। इन (गवेषकों) की दृष्टि में :

अर्थ

अ

१. एक प्राकृतिक अथवा तात्विक शक्ति है।
२. अन्य वस्तुओं के साथ विचित्र और अविश्लेषणीय 'संबंध' है।

आ

३. अभिधान में एक शब्द के साथ जोड़ा गया अन्य शब्द है।
४. एक शब्द का 'संकेत' है।
५. एक 'अभिप्राय' अथवा 'मूलतत्त्व' है।
६. एक वस्तु में 'संलग्न' एक क्रिया अथवा गति है।
७. (क) एक 'अभिप्रेत' घटना है।
   (ख) एक 'ऐच्छिक क्रिया अथवा शक्ति' है।
८. एक पद्धति में किसी वस्तु का 'स्थान' है।

---

१. वही, पृ० २७५।

९. हमारे भविष्यत् अनुभव के लिए एक वस्तु का 'व्यावहारिक परिणाम' है।

१०. एक कथन द्वारा संकेतित अथवा इस (कथन) में निहित 'सैद्धांतिक' परिणाम है।

११. किसी वस्तु द्वारा जागरित मनोभाव है।

इ

१२. किसी चुने हुए संबंध द्वारा जो किसी संकेत से 'वस्तुतः' जुड़ा रहता है।

१३. (क) एक प्रभावोद्बोधक वस्तु का Mnemic परिणाम है। अर्जित संबंध है।

(ख) कोई अन्य घटना जिससे किसी घटना के Mnemic परिणाम 'समुचित' अथवा सही होते हैं।

(ग) (अर्थ के संकेतरूप होने से) जिससे कोई संकेत 'प्रतिपादित' किया जाता है।

(घ) जो कुछ 'ध्वनित' करता है।

प्रतीकों अथवा संकेतों की स्थिति में :

जिसकी ओर 'प्रतीक' का 'प्रयोक्ता' वस्तुतः निर्देश करता है।

१४. जिसकी ओर प्रतीक के प्रयोक्ता को निर्देश 'करना चाहिए'।

१५. जिसकी ओर निर्देश करते हुए प्रतीक का प्रयोक्ता स्वयं पर 'विश्वास' करता है।

१६. प्रतीक का प्रतिपादक—

(क) जिसकी ओर निर्देश करता है।

(ख) जिसकी ओर निर्देश करते हुए स्वयं पर विश्वास करता है।

(ग) जिसकी ओर निर्देश करते हुए 'प्रयोक्ता' पर विश्वास करता है।[1]

§ ३२ प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों और साहित्यशास्त्रियों ने भी अर्थ के विभिन्न प्रकार माने हैं। पाणिनि का एक सूत्र है :

स्वं रूपं शब्दस्याशब्द संज्ञा। १–१–६७[2]

इस पर भाष्य करते हुए पतंजलि कहते हैं कि शब्द के दो अर्थ होते हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि अर्थ दो प्रकार के होते हैं। किसी शब्द का एक व्याकरणिक अर्थ होता है और दूसरा वह अर्थ जिसके द्वारा किसी वस्तुव्यक्ति, आदि का बोध होता है। इसे हम अपने ढंग से भी समझ सकते हैं। हमने कहा : 'कल रथयात्रा है'। इस वाक्य का एक वाह्य अथवा व्याकरणिक अर्थ है। केवल व्याकरण की दृष्टि से विचार करनेवाला इस वाक्य के स्वरूप को अपनी दृष्टि से समझेगा। किंतु 'कल, रथयात्रा, है' इन तीन शब्दों में लोक ने कुछ अर्थ निहित किए हैं, अर्थात् लोक या व्यवहार की दृष्टि से भी इनके अर्थ हैं। इस वाक्य को सुनकर इन तीनों शब्दों के आधार पर जो अर्थबोध होता है सामान्यतः लोक में वही अर्थ गृहीत होता है। सारांश यह कि व्याकरण में शब्द के अर्थ का एक अपना स्वरूप होता है, व्याकरण के क्षेत्र में उसके अर्थ का वही अपना स्वरूप समझा जाता है, किंतु लोक में उसके अर्थ का एक दूसरा स्वरूप होता है। पतंजलि द्वारा गृहीत उदाहरण से संभवतः विषय और स्पष्ट हो। वे कहते हैं 'अग्नेर्ढक्'—अग्नि से ढक्

---

१. वही, पृ० १८६–७।

२. अष्टाध्यायी।

प्रत्यय होता है। इसमें 'अग्नि' शब्द मात्र व्याकरण के क्षेत्र में सीमित है। यहाँ 'अग्नि' द्वारा हमें लोक में व्यवहृत अर्थ का बोध नहीं होता। यहाँ 'अग्नि' शब्द मात्र अपने रूप का बोध कराता है। 'अग्नि' शब्द के रूप का बोध तो (व्याकरण के क्षेत्र में) इसका एक अर्थ है। और, इसका दूसरा अर्थ है, 'अग्नि', जो हमें लोक में मिलती है—अर्थात् 'अग्नि' के भौतिक रूप का अर्थ। इस प्रकार पतंजलि कहते हैं कि शब्द के दो अर्थ होते हैं, जिसे हमने कहा है कि अर्थ दो प्रकार के होते हैं। पतंजलि का भाष्य है :

एवं तर्हि सिद्धे सति यद्रूपग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः— अस्त्यन्यद्रूपात्स्वं शब्दस्येति ॥ किं पुनस्तत् ? अर्थः ॥ किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? 'अर्थवद्ग्रहणेनानर्थकस्य' इत्येषा परिभाषा न कर्तव्या भवति ॥ शब्देनोच्चरितेनार्थो गम्यते। गामानय दध्यशानेति, अर्थ आनीयते अर्थश्च भुज्यते। अर्थे कार्यस्यासंभवादिह च व्याकरणे अर्थे कार्यस्यासंभवः— 'अग्नेर्ढग्' इति न शक्यतेऽङ्गारेभ्यः परो ढक् कर्तुम्। शब्देनार्थगतेरर्थे कार्यस्यासंभवाद् यावन्तस्तद्वाचिनः शब्दास्ता-वद्भ्यः सर्वेभ्य उत्पत्तिः प्राप्नोति। इष्यते च—तस्मादेव स्यादिति। तत्रान्तरेण यत्नं न सिद्ध्यतीति तद्वाचिनः संज्ञाप्रतिषेधार्थं स्वं रूप वचनम्। एवमर्थमिदमुच्यते ॥ १-१-६[1]

§ १३ पतंजलि का मत है कि शब्दों की प्रवृत्ति चार प्रकार की होती है। और, इस प्रवृत्ति की दृष्टि से शब्द चार प्रकार के होते हैं :

चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जाति शब्दा गुण शब्दाः क्रिया शब्दा यदृच्छा शब्दाश्चतुर्थाः। १-१-२[2]

---

१. महाभाष्य।

२. वही।

नागेश ने 'उद्योत' में इसकी टीका करते हुए कहा है कि शब्दों के अर्थ में जो प्रवृत्ति है वह निमित्त भेद से चार प्रकार की होती है :

शब्दानामर्थे या प्रवृत्तिः सा प्रवृत्ति निमित्त भेदात् प्रकार चतुष्टय भवतीत्यर्थः । १-१-२[1]

इस प्रकार अपनी प्रवृत्ति के अनुसार शब्द चार प्रकार के होते हैं—जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा शब्द । और, इन चार प्रकार के शब्दों के अर्थ की जो प्रवृत्ति होती है वह भी निमित्त भेद से चार प्रकार की होती है । कहने का तात्पर्य यह कि शब्दों के इन चार भेदों के अनुसार ही इनके अर्थ भी चार प्रकार के होते हैं, अर्थात् जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा शब्दों के अर्थ होते हैं । इस प्रकार इनके चार भेद के अनुसार अर्थ के भी चार भेद हैं । ऊपर हमने देखा है कि व्याकरणशास्त्र तथा लोकव्यवहार की दृष्टियों से अर्थ दो प्रकार के होते हैं; और, यहाँ शब्दगत प्रवृत्ति की दृष्टि से विचार करने पर अर्थ चार प्रकार के माने गए हैं ।

§ २४ पुण्यराज ने 'अस्तित्वमत्र सामर्थ्यमस्मिन्नर्थो न भिद्यते । शास्त्रात् प्राप्ताधिकारोऽयं व्युदासोऽस्य क्रियांतरे ॥ २-८१'[2] की टीका में १८ प्रकार के अर्थों की विवेचना की है :

१. वस्तुमात्र : वह बाह्य अर्थ जो उपस्थित तो रहता है, किंतु जिसका कथन, प्रतिपादन नहीं किया जा सकता ।

२. अभिधेय : वह बाह्य अर्थ जिसका कथन, प्रतिपादन किया जा सकता है । जो वाणी के माध्यम से कहा, समझाया जा सकता है ।

---

१. वही ।

२. वाक्यपदीयम्, पृ० 110-111 ।

३. शास्त्रीय : अभिधेय अर्थ के दो भेद हैं—एक शास्त्रीय और दूसरा लौकिक। शास्त्रीय अर्थ आवापोद्धारिक होता है; अर्थात् शास्त्रीय ग्रंथों से इसका संबंध होने के कारण इसमें प्रतिपादन द्वारा नये-नये अर्थ का आक्षेप और ग्रहण संभव होता है। यह पौरुषेय तथा परिकल्पित होता है। कहा गया है कि यह अर्थ आवापोद्धारिक है, इसी कारण पौरुषेय तथा परिकल्पित भी है। एक व्यक्ति नए-नए अर्थ निकाल सकता है।

४. लौकिक : यह अखंड होता है, क्योंकि लोकाश्रय से यह चलता है। वाणी द्वारा इसे कहा जा सकता है, किंतु इसमें आवाप, उद्धार नहीं होता।

५. विशिष्टावग्रहसंप्रत्ययहेतु : इस अर्थ को पुण्यराज ने उदाहरण द्वारा समझाया है। 'कंस को मारता है', 'बलि को बाँधता है।' ये घटनाएँ भूतकाल की हैं, किंतु उक्त वाक्यों में वर्तमानकाल का प्रयोग किया गया है। अतः पुण्यराज कहते हैं कि ऐसे अवसरों पर अर्थ का बोध विशिष्ट प्रकार के संप्रत्यय से किया जाता है; यथा, उक्त उदाहरणों में ही भूतकाल की घटना को वर्तमानकाल की घटना के रूप में ग्रहण किया गया है। सारांश यह कि ऐसे अवसरों पर विशिष्ट आकार (प्रकार) के संप्रत्यय, प्रत्यक्ष या बोध द्वारा व्यवहारविषय अथवा प्रसंग के अनुकूल अर्थ को समझ लिया जाता है।

६. विशिष्टावग्रहसंप्रत्ययहेतु विपरीत : यह अर्थ आँखों के सामने बाहर उपस्थित रहता है, अर्थात् इसका संबंध प्रत्यक्ष वर्तमान से है।

७. मुख्य : पुण्यराज ने इसका उदाहरण दिया है—सास्ना, आदि युक्त गाय। वस्तुतः मुख्य अर्थ अभिधेयार्थ है।

८. परिकल्पितरूपविपर्यास : इस अर्थ में निमित्त अथवा कारणवश अर्थ के रूप का विपर्यास, विपर्यय या परिवर्तन परिकल्पित किया जाता है। अतः यह मुख्य अर्थ न होकर गौण अर्थ होता है। पुण्यराज ने इस अर्थ का उदाहरण दिया है—'गौर्वाहीकः।' उदाहरण का अर्थ है—'वाहीक बैल (मूर्ख) होता है।' यहाँ निमित्तविशेषवश 'बैल' का अर्थ 'मूर्ख' किया गया है, जो 'बैल' का मुख्य अर्थ नहीं, गौण अर्थ है। हम देखते हैं कि इस अर्थ में, इस प्रकार, शब्द की लक्षणा, व्यंजना शक्ति द्वारा अर्थ प्राप्त होता है।

९. व्यपदेश्य : इसमें आवाप तथा उद्धार द्वारा अर्थ किया जाता है। जैसे—जाति, द्रव्य, आदि।

१०. अव्यपदेश्य : यह अखंड अर्थ होता है।

११. सत्त्वभावापन्न : आवापोद्धारिक व्यपदेश्य अर्थ के तत्त्व इसमें मिलते हैं। यह सत्वभावयुक्त कहा गया है, जिसका तात्पर्य है कि यह विद्यमान वस्तुव्यक्ति का बोध कराता है।

१२. असत्त्वभूत : उक्तिभेद से इसमें प्रायः भेद कथन होता है। असत्त्व का अर्थ है अविद्यमान वस्तुव्यक्ति, आदि। इसमें जो वस्तुव्यक्ति स्थित, विद्यमान नहीं है उसका वर्णन-विवरण होता है।

१३. स्थिरलक्षण : पुण्यराज ने इस अर्थ का उदाहरण दिया है—'राजपुरुष'। इस उदाहरण में पुरुष का राज संबंधित्व कभी व्यभिचरित अथवा उलट-पुलट नहीं होता है, इसलिए इसको स्थिर लक्षण कहते हैं।

१४. विवक्षाप्रापित संनिधान : इस अर्थ की विवेचना करते हुए 'राज्ञः पुरुषस्य' का उदाहरण दिया गया है। उदाहरण में 'राजा' तथा 'पुरुष' दोनों के साथ षष्ठी विभक्ति है, इसलिए इन दोनों शब्दों के

संबंधित्व में व्यभिचार, फेरफार होने की संभावना है। 'राजपुरुष' में इस व्यभिचार की संभावना नहीं है। 'राज्ञः पुरुषस्य' में इच्छानुसार किसी को विशेषण और किसी को विशेष्य मान सकते हैं। 'राजपुरुष' में ऐसा नहीं कर सकते। इस प्रकार इसमें अर्थ विवक्षाश्रित रहता है।

१५. अभिधीयमान : 'राजसखः' उदाहरण में 'राजा का सखा, मित्र' यह अर्थ अभिधा द्वारा प्राप्त है, अतः यह अभिधीयमान है।

१६. प्रतीयमान : उक्त अभिधीयमान अर्थ के ही उदाहरण को जब 'राजा सखाऽस्य'—'राजा सखा है जिसका'—बहुव्रीहि समास के रूप में ग्रहण किया जाता है तब प्रतीयमान अर्थ होता है।

१७. अभिसंहित : 'गो' शब्द से जब जाति या द्रव्य का ग्रहण होता है तब वह अभिसंहित अर्थ कहा जाता है। इस प्रकार इस अर्थ का संबंध जाति या द्रव्य से रहता है।

१८. नांतरीयक : उदाहरण द्वारा इस अर्थ की विवेचना करते हुए पुण्यराज कहते हैं कि जो शब्द उच्चरित होने से उस (गाय) के लाल, नील, आदि रंग की स्थिति का जो बोध होता है वह नांतरीयक अर्थ है। किसी वस्तु में प्रकृत गुण होता है, जो (गुण) वस्तु के कहने मात्र से समझ लिया जाता है। ऐसी ही स्थिति में यह अर्थ होता है। 'गो' शब्द के कहने से उसके रंग लाल, नील, आदि का बोध भी संमुख आ जाता है।

§ ३५ अर्थ के प्रकार के संबंध में साहित्यशास्त्रियों ने भी अपनी दृष्टि से विवेचना प्रस्तुत की है। वे शब्द के तीन प्रकार मानते हैं—वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक।

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा। २-१[1]

---

१. काव्यप्रकाश।

इन तीन प्रकार के शब्दों के उन्होंने तीन प्रकार के अर्थ भी माने हैं। ये अर्थ हैं—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। कुछ लोग तात्पर्यार्थ भी स्वीकार करते हैं :

वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः
वाच्य लक्ष्य व्यंग्याः॥
तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्॥ २-१[1]

विश्वनाथ महापात्र ने वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य अर्थों का ही उल्लेख किया है। वे तात्पर्यार्थ का उल्लेख नहीं करते :

अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधा मतः। २-२[2]

शब्द और अर्थ के ये प्रकार साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में ही स्वीकृत हैं, अन्य शास्त्रों के क्षेत्र में इनका यह प्रकार अप्राप्त है।

§ ३६ इन अर्थों की विवेचना के पूर्व मम्मट ने इसकी विवेचना की है कि वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य सभी अर्थों में प्रायः व्यंजकत्व होता है :

सर्वेषां प्रायशोऽर्थानां व्यंजकत्वमपीष्यते। २-३[3]

वे कहते हैं कि शब्द में ही व्यंजकत्व नहीं होता, वरन् अर्थ में भी व्यंजकत्व होता है। और, वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य अर्थों में भी व्यंजकत्व मिलता है। निम्नलिखित तत्वों के वैशिष्ट्य से अर्थों में व्यंजकत्व आता है :

वक्तृ बोधव्य काकूनां वाक्य वाच्यान्य [संनिधेः।

---

१. वही।
२. साहित्यदर्पण।
३. काव्यप्रकाश।

प्रस्ताव देशकालादेर्वैशिष्ट्यात् प्रतिभाजुषाम् ॥
योऽर्थस्यान्यार्थ धी हेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा । ३-१-२[1]

कारिका में 'प्रायशः' शब्द आया है। इसके द्वारा मम्मट यह कहना चाहते हैं कि रस आदि में जहाँ व्यंग्यार्थ प्रधान होता है वहाँ अर्थ में व्यंजकत्व नहीं होता।

वाच्यार्थ में व्यंजकत्व के उदाहरणार्थ वे निम्नलिखित पद्य उद्धृत करते हैं :

माए घरोवअरणं अज्जहु णत्थित्ति साहिअं तुमए ।
ता भण किं करणिज्जं एमेअ ण वासरो ठाइ ॥
(मातर्गृहोपकरणमद्य खलु नास्तीति साधितं त्वया
तद्भण किं करणीयमेव न वासर स्थायी)

अपने पूर्वाचरण द्वारा जो स्त्री असाध्वी प्रमाणित हो चुकी है वह अपनी सास से कहती है कि तुम स्वयं जानती हो कि घर में भोजन आदि की सामग्री नहीं है। अतः इन्हें खरीदने के लिए बाहर जाने की आज्ञा मुझे दो, नहीं तो आज हम लोगों को बिना खाए ही रहना पड़ेगा। पद्य का यह वाच्य अर्थ है। किंतु इस वाच्यार्थ में व्यंजकत्व यह है कि वह अपने प्रेमी से मिलने के लिए बाहर जाना चाहती है। पद्य के किसी भी शब्द द्वारा यह व्यंग्यार्थ प्राप्त नहीं होता; क्योंकि शब्दों ने वाच्यार्थ व्यक्त कर अपना कार्य पूरा कर दिया, बस। वाच्यार्थ को समझने के बाद यह व्यंग्यार्थ बिना व्यंजकत्व के नहीं समझा जा सकता। पद्य में स्त्री की अपने प्रेमी से मिलने के लिए बाहर जाने की इच्छा ही व्यंग्यार्थ है। उसकी इस इच्छा को हम उसके पूर्व के असाधु आचरण के आधार पर निश्चित करते हैं।

---

1. वही।

लक्ष्यार्थ में व्यंजकत्व की स्थिति के उदाहरणस्वरूप मम्मट निम्न-लिखित पद्य देते हैं :

साहेन्ती सहि सुहअं खणे खणे दूम्मिआसि मज्झकए।
सब्भावणेह करणिज्ज सरिसअं दाव विरइअं तुमए।
(साधयन्ती सखि सुभगं क्षणे क्षणे दूनासि मत्कृते।
सद्भावस्नेह करणीय सदृशं तावद्विरचितं त्वया)

मम्मट कहते हैं कि यहाँ लक्ष्यार्थ है यह कथन कि मेरे प्रेमी के साथ रमण करके तुमने मेरे प्रति शत्रुवत् आचरण किया है। इस लक्ष्यार्थ द्वारा व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि प्रिय अपराधी है, क्योंकि उसने दूती के साथ रमण किया है।

प्रसंग है कि एक प्रेमिणी यह सब अपनी उस दूती से कहती है, जिसको उसने अपने प्रिय के पास उस (प्रिय) को मनाने के लिए भेजा था। दूती ने उसका संदेश न कह कर स्वयं उसके प्रिय के साथ रमण किया। दूती अपने पूर्वाचरण द्वारा असाध्वी प्रमाणित हो चुकी है। इसलिए, यहाँ यह वाच्यार्थ कि मेरे कारण तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ, एक स्नेहालु सखीवत् तुमने बर्ताव किया है, बाधित है, क्योंकि यह प्रसंगानुकूल नहीं जान पड़ता। लक्ष्यार्थ यह है कि मेरे प्रेमी के साथ रमण करके तुमने मेरे प्रति शत्रुवत् आचरण किया है। इस लक्ष्यार्थ द्वारा व्यंग्यार्थ यह प्राप्त होता है कि प्रेमी अपराधी तथा अविश्वसनीय है, अब उससे मेरा कोई संबंध नहीं रहा।

व्यंग्यार्थ में व्यंजकत्व का उदाहरण है :

उअ णिच्चलणिप्पंदा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाआ
णिम्मलमरगअ भाअण परिट्ठिआ संखसुत्तिव्व ॥
(पश्य निश्चल निष्पंदा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मल मरकत भाजन परिस्थिता शंख शुक्तिरिव ॥)

मम्मट कहते हैं कि निष्पंदत्व द्वारा आश्वस्तत्व और इससे जनरहितत्व का बोध होता है। अतः इस प्रकार प्रेमिणी अपने प्रेमी से कहती है कि यह संकेतस्थान है। अथवा तुम झूठ बोलते हो, तुम यहाँ नहीं आए। यह व्यंग्यार्थ इससे निकलता है। तात्पर्य यह कि 'निष्पंद' शब्द यह व्यंजित करता है कि यहाँ किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होगी, इसके द्वारा यह भी व्यंजित होता है कि यह एकांत स्थल है, कोई व्यक्ति यहाँ आकर अव्यवस्था नहीं उत्पन्न करेगा। अतः यह उत्तम संकेतस्थान है। ऐसा प्रेमिणी अपने उस प्रेमी से कहती है जो स्थान के संबंध में जानना चाहता है। इसके द्वारा संभोग शृंगारगत व्यंग्यार्थ प्राप्त होता है। यहाँ एक दूसरा व्यंग्यार्थ भी है। 'तुम झूठ बोलते हो, तुम यहाँ कभी नहीं आए, अन्यथा बलाका निष्पंद कैसे रहता है'—यह एक प्रेमिणी द्वारा कहा गया, जिस पर उसके प्रेमी ने इस स्थान पर न मिलने का दोष लगाया था। यह विप्रलंभ शृंगारगत व्यंग्यार्थ है।

§ ३७ 'वाचक' शब्द की विवेचना करते हुए मम्मट कहते हैं :

साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः। २-२[1]

जो शब्द साक्षात् संकेत से अपने अर्थ को व्यक्त करता है वह वाचक शब्द कहलाता है। किसी शब्द के संकेत के न जाने बिना उसके अर्थ का ग्रहण असंभव है। कोई शब्द संकेत की सहायता से ही अर्थ विशेष व्यक्त करता है। यहाँ हम संकेत की विवेचना नहीं कर रहे हैं, इसकी विवेचना हम 'अर्थबोध की प्रक्रिया' के प्रसंग में कर चुके हैं। हम 'तात्पर्यार्थ' की मीमांसा भी नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं, इसके संबंध में भी उक्त प्रसंग में ही मीमांसा की जा चुकी है।

---

१. वही।

§ २८ विश्वनाथ महापात्र ने तीन प्रकार के शब्दों की तीन प्रकार की शक्तियाँ मानी हैं, जिनसे वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थों का बोध होता है। ये शक्तियाँ हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना :

वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।
व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः॥ २-३[1]

इन तीनों शक्तियों में संकेतित अर्थ का बोध कराने के कारण मुख्य शक्ति अभिधा है :

तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा। २-३[1]

अभिधा के संबंध में मम्मट कहते हैं :

स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। २-३[2]

यहाँ 'स' का अर्थ है 'साक्षात्संकेतित' और 'अस्य' का अर्थ है 'शब्दस्य—शब्द का।' विश्वनाथ तथा मम्मट द्वारा दिए गए अभिधा के लक्षणों में सामान्य भेद के अतिरिक्त काफी समता है। मम्मट का कथन है कि साक्षात् संकेत जिस अर्थ से संबद्ध है वह मुख्य अर्थ है; और, इस मुख्य अर्थ से संबद्ध किसी शब्द का मुख्य व्यापार अभिधा है। अभिधामूला व्यंजना में शब्द के अमुख्य व्यापार को अलग करने के लिए यहाँ व्यापार को मुख्य कहा गया है। विश्वनाथ ने जिस कारिका में अभिधा का लक्षण दिया है उसकी वृत्ति करते हुए अंत में लिखा है 'तं च संकेतितमर्थं बोधयंती शब्दस्य शक्त्यन्तरानन्तरिता शक्तिरभिधा नाम।' अभिधा वह शक्ति है जो संकेतित अर्थ का बोध शब्द की किसी अन्य शक्ति की सहायता के बिना कराती है।

यहाँ इस पर दृष्टि जाती है कि विश्वनाथ ने अभिधा, आदि को शक्ति कहा है और मम्मट ने व्यापार। इनके लिए वृत्ति शब्द के

1. साहित्यदर्पण।
2. काव्यप्रकाश।

व्यवहार का अधिक प्रचलन है। कुछ ग्रंथों के नाम देखिए—'अभिधा-वृत्ति मात्रिका', 'वृत्ति वार्तिक', आदि। अन्यत्र भी इसका प्रयोग मिलता है :

सा च वृत्तिस्त्रिधा शक्तिर्लक्षणा व्यंजना च।[1]
तिस्रो वृत्तयः पदानां भवंति शक्तिर्लक्षणा व्यंजना चेति ॥[2]

कुछ ग्रंथों के नाम तथा उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'शक्ति' का प्रयोग अभिधा के अर्थ में प्रायः होता है, और जिस अर्थ में विश्वनाथ ने 'शक्ति' का प्रयोग किया है उस अर्थ में प्रायः 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग मिलता है। मम्मट ने विश्वनाथ के 'शक्ति' तथा अन्यों के 'वृत्ति' शब्दों के अर्थ में 'व्यापार' शब्द का प्रयोग किया है।

§ ३६ मम्मट लक्षणा के स्वरूप का वर्णन यों करते हैं :

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया ॥२-६[3]

लक्षणा (अर्थ) आरोपित करने की एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वाच्य अथवा मुख्य अर्थ से भिन्न अन्य अर्थ लक्षित होता है। लक्षणा तब होती है जब मुख्यार्थ प्रसंग में लागू नहीं होता और जब लक्ष्यार्थ का संबंध मुख्यार्थ से रूढ़ि (व्यवहार या प्रयोग) अथवा प्रयोजन (लक्ष्य) द्वारा स्थापित होता है।

'कर्मणि कुशलः' और 'गंगायां घोषः' उदाहरणों में मुख्यार्थ का बाध है, मुख्यार्थ लागू नहीं होता। 'कुशल' का मुख्य अर्थ है 'दर्भ-

---

१. परमलघुमंजूषा, पृ० ४।
२. अलंकारशेखर, पृ० ४।
३. काव्यप्रकाश।

प्रहण' और 'गंगा' का मुख्य अर्थ है 'जल की धारा'। गंगा (जल की धारा) में 'घोष' (अहीरों का ग्राम) नहीं बस सकता है। यहाँ विवेचकत्व, सामीप्य संबंध भी है। 'कर्मणि कुशलः' में रूढ़ि और 'गंगायां घोषः' में पावनत्व, आदि गुणों के प्रतिपादन का प्रयोजन है, जो गुण 'गंगायां घोषः' वाक्य के मुख्यार्थ से नहीं प्रतिपादित हो सकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुख्यार्थ के माध्यम से लक्ष्यार्थ अथवा गौण अर्थ का बोध होता है। इस विवेचना द्वारा लक्षणा के संबंध में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं : (१) इसमें मुख्यार्थ का बाध होता है, (२) इसमें लक्ष्यार्थ का संबंध मुख्यार्थ से होना चाहिए, (३) लक्षणा तब होती है जब (क) शब्द अपने लक्ष्यार्थ में रूढ़ रहता है अथवा (ख) जब उसमें कोई प्रयोजन स्थित रहता है।

जैमिनि के 'मीमांसा-दर्शन' का एक सूत्र है :

अपि वा नामधेयं स्यात् यदुत्पत्तावपूर्वमविधायकत्वात् ।१-४-२

शबर स्वामिन् ने इसके भाष्य में इस पर बड़ा जोर दिया है कि लक्षणा लौकिकी होती है, अर्थात् इसका मूलाधार लोकव्यवहार है :

लक्षणेति चेत्, वरं लक्षणा कल्पिता, न यागाभिधानं,
लौकिकी हि लक्षणा, इतोऽप्रसिद्ध कल्पनेति ।

लक्षणा के विभिन्न भेद माने गए हैं; और, इन भेदों अथवा प्रकारों के संबंध में साहित्यशास्त्रियों में विभिन्न मत हैं। सभी ने अपनी-अपनी दृष्टि से इसके प्रकार निर्धारित किए हैं। मम्मट ने इसके छः भेद माने हैं :

लक्षणा तेन षड्विधा । २-७[1]

---

१. काव्यप्रकाश ।

मम्मट के अनुसार इसकी सरणी हम उपस्थित कर रहे हैं :
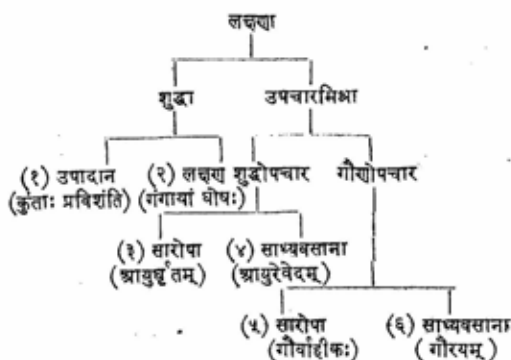
हम लक्षणा के इन भेदों की मीमांसा नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं—विस्तारभय से। किसी भी साहित्यशास्त्री ग्रंथ में लक्षणा का विवेचन-विस्तार देखा जा सकता है।

§४० विश्वनाथ व्यंजना का लक्षण देते हुए कहते हैं :

विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः। २-१२
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च। २-१३[1]

जब अभिधा, आदि शब्दशक्तियाँ अपना कार्य करके विरत हो जाती हैं तब शब्द की वृत्ति अथवा उसके अर्थ द्वारा जो अन्य अर्थ का बोध होता है वह व्यंजना द्वारा ही। यह एक सिद्धांत है कि जब कोई शब्द, बोध और कर्म अपना कार्य करके विरत हो जाता है तब उनमें व्यापार

---

१. साहित्यदर्पण।

अथवा का कार्य अभाव हो जाता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यही है कि शब्द में किसी अर्थविशेष की अभिव्यक्ति की ही शक्ति होती है। जब वह अर्थविशेष अभिव्यक्त कर चुकता है तब उसकी वाच्य अथवा मुख्य अर्थबोध कराने की शक्ति शेष हो जाती है। उसकी इस शक्ति के शेष हो जाने पर उससे जो अन्य अर्थ का बोध होता है वह व्यंजना शक्ति द्वारा।

व्यंजना के प्रकारों की एक सरणी नीचे दी जा रही है :

इसके इन प्रकारों की मीमांसा भी विस्तारभय से हम नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं। किसी भी साहित्यशास्त्री ग्रंथ में इनकी विवेचना देखी जा सकती है।
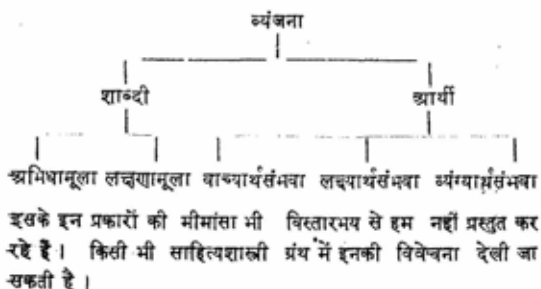
§४१ 'अर्थबोध की प्रक्रिया' के अंतर्गत हमने इसकी विवेचना की है कि इस शब्द का यह अर्थ है, इसका निश्चय 'संकेत' द्वारा होता है। 'संकेत' की विवेचना हम देख चुके हैं। किंतु, संकेत का सिद्धांत आधुनिक भाषाशास्त्री नहीं भी स्वीकार कर सकते। ऐसी स्थिति में अर्थ के निश्चय के लिए किसी व्यापक पीठिका का स्थापन आवश्यक है। अर्थ के निश्चय के संबंध में हम समष्टि और व्यष्टि, इन दो दृष्टियों से विचार कर सकते हैं। विवेचना की सुविधा के लिए ही हम ये दो दृष्टियाँ स्थिर कर रहे हैं।

अर्थ के निश्चय के संबंध में विचार करते हुए हमारी दृष्टि एक पश्चिमी भाषाशास्त्री की एतत्संबंधी मीमांसा पर जाती है, जिन्होंने यह कहा है कि भाषा के क्षेत्र के अन्य तत्वों की भाँति ही अर्थ भी परंपरा का विषय है, अर्थात् अर्थ का संबंध भी परंपरा से है। व्यक्तिसापेक्ष्य दृष्टि से विचार करने पर यह निर्णय दिया जा सकता है कि सामाजिक दृष्टि से भाषा चाहे कितनी ही सत्य हो परंतु यदि हम उसे न समझ सकें तो वह हमारे लिए भाषा नहीं हो सकती। मानव की उन्नति का आधार है सहयोगिता, सहयोगिता केवल पारस्परिक संबुद्धि पर एक दूसरे को ठीक से समझने पर अवलंबित हो सकती है, और संबुद्धि का आधार है अर्थ की परंपरित—परंपरागत—स्वीकृति :

Meaning, like all else in the realm of language, is a matter of convention. From the subjective standpoint, a language, we do not understand is no language, however objective its reality may be. Human progress is based upon co-operation, co-operation can be based only on understanding; understanding, in turn, is based upon the conventional acceptance of meaning.[1]

कहने का तात्पर्य यह कि अर्थ का संबंध परंपरा से है। अर्थ की परंपरा चलती है, वह परंपरा से प्राप्त होता है। और, इस परंपरा से संबंध है लोक, मानव, उसके क्रियाकलाप का। हम इस विवेचना द्वारा यही दिखाना चाहते हैं कि अर्थ का संबंध परंपरा से है, अर्थात् लोक से है। अतः अर्थनिश्चय के लिए अर्थ का लोक में व्यवहार प्रधान आधार

---

१. Mario Pei : The Story of Language, p. 148.

है। इस संबंध में पाणिनि का भी यही मत है। पाणिनि का एक सूत्र है :

प्रधान प्रत्ययार्थं वचनमर्थस्यान्य प्रमाणत्वात् । १-२-५६[1]

वामन-जयादित्य इस सूत्र में आए 'अन्य' के संबंध में वृत्ति करते हुए कहते हैं कि 'अन्य' शास्त्र की अपेक्षा लोक की ओर निर्देश करता है। शब्द का अर्थ स्वाभाविक होता है, उस (शब्द) की अशक्तता के कारण (अर्थ) पारिभाषिक नहीं होता। लोकव्यवहार से ही अर्थ समझा जाता है। जिन्होंने व्याकरण नहीं पढ़ा है उनसे जब यह कहा जाता है कि 'राजपुरुष को लिवा लाओ' तब वे राजविशिष्ट पुरुष लिवा लाते हैं, न राजा को लिवा लाते हैं और न पुरुषमात्र को। तात्पर्य यह कि जो अर्थ लोकव्यवहार से सिद्ध है उसके संबंध में प्रयत्न की क्या आवश्यकता :

> **अन्य इति शास्त्रापेक्षया लोको व्यपदिश्यते, शब्दर्थाभिधानं स्वाभाविकं न पारिभाषिकमशक्यत्वात्, लोकत एवार्थावगतेः। यैरपि व्याकरणं न श्रुतं तेऽपि राजपुरुषमानयेत्युक्ते राजविशिष्टं पुरुषमानयंति न राजानं नापि पुरुषमात्रम् ।...यश्च लोकतोऽर्थः सिद्धः किं तत्र यत्नेन ।**[2]

६४२ समष्टि, लोक की दृष्टि से अर्थ का निश्चय होता है, इसे हमने देखा है। व्यष्टि की दृष्टि से इसका निश्चय कैसे हो सकता है, हम इसे देखें। तात्पर्य यह कि यदि व्यक्तिसापेक्ष्य दृष्टि से अर्थ का निश्चय करें तो किस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, हम इसे देखें। इस दृष्टि से

---

१. अष्टाध्यायी।

२. काशिका।

विचार करते हुए हम भर्तृहरि और पुण्यराज के विचारों को उपस्थित करेंगे। भर्तृहरि का एक श्लोक है :

यथेंद्रियं सन्निपतद्वैचित्र्येणोपदर्शकम्।
तथैव शब्दादर्थस्य प्रतिपत्तिरनेकधा॥ २-१३६[1]

इसकी टीका करते हुए पुण्यराज कहते हैं कि जैसे (इंद्रिय के) अर्थ अथवा विषय के अविपरीत वा व्यवस्थित रहने पर भी दोषवश इंद्रिय नाना रूप में बोध कराती है वैसे ही जिनका मन नियतवासना या विशेष वासना से वासित है उनको शब्द के अर्थ की प्रतीति उनकी वासना के अनुसार ही होती है। पुण्यराज कहते हैं कि इसी कारण शब्द का कोई एक नियत अर्थ नहीं है :

नास्ति कश्चिन्नियत एकः शब्दस्यार्थः।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द का अर्थ व्यक्तिसापेक्ष है। अपने-अपने संस्कारों के अनुसार विभिन्न व्यक्ति एक शब्द का विभिन्न अर्थ समझते हैं। अतः अर्थ का निश्चय व्यक्तिपरक भी होता है, केवल लोकपरक नहीं। कालभेद से भी एक व्यक्ति एक शब्द का अर्थ भिन्न रूप में करता है। भर्तृहरि का श्लोक है :

एकस्मिन्नपि दृश्येऽर्थे दर्शनं भिद्यते पृथक्।
कालांतरेण वै कोपि तं पश्यत्यन्यथा पुनः॥ २-१३८[1]

पुण्यराज इस श्लोक की टीका में कहते हैं कि शब्द के एक अर्थ को जान लेने के बाद यदि किसी व्यक्ति की शास्त्रीय वासना में भेद आ जाय तो उस शब्द के अर्थ में भी भेद आ जाता है। सुगत (बौद्ध) दर्शन से संस्कृत मतिवाला व्यक्ति कभी एक शब्द के अर्थ को कुछ

---

1. वाक्यपदीयम्।

समझता था, परंतु बाद में वैशेषिकदर्शन के अध्ययन के कारण उसी शब्द का कुछ अर्थ समझने लगता है। तात्पर्य यह कि एक ही व्यक्ति वासना—संस्कार के भेद से कालांतर में एक ही शब्द का कुछ और अर्थ समझता है।

अर्थसंग्राहक की दृष्टि से जैसे अर्थनिश्चय के संबंध में व्यष्टि-सापेक्षता है वैसे ही अर्थप्रयोक्ता की दृष्टि से भी व्यष्टिसापेक्षता दृष्टिगत होती है। भर्तृहरि कहते हैं कि अर्थ में सर्वशक्तिमत्ता है। अतः प्रयोक्ताओं द्वारा वह जिस रूप में विवक्षित होता है उसी रूप में व्यवस्थित—लागू होता है। तात्पर्य यह कि प्रयोक्ताओं की इच्छा के अनुसार शब्द का अर्थ अपना रूप प्रकट करता है :

> योऽसौ येनोपकारेण प्रयोक्तृणां विवक्षितः।
> अर्थस्य सर्वशक्तित्वात्स तथैव व्यवस्थितः॥ २·४३७[1]

इस मीमांसा से यह स्पष्ट हो गया होगा कि अर्थनिश्चय का जैसे एक आधार समष्टि—लोक है, वैसे दूसरा आधार व्यष्टि भी है। अर्थ के वास्तविक बोध के लिए जैसे लोक पर दृष्टि रखने की आवश्यकता है वैसे ही व्यक्ति पर भी।

§ ४३ अर्थनिश्चय के कुछ साधनों की विवेचना व्यष्टि तथा समष्टि की पीठिका पर दृष्टि रखते हुए प्रस्तुत की गई है। भर्तृहरि ने अर्थनिश्चय के कुछ और उपायों का उल्लेख किया है जिनकी विस्तर टीका पुण्यराज ने की है। भर्तृहरि कहते हैं :

> वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
> शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात्॥
> संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
> अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः॥

---

१. वही।

सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः ।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेष स्मृति हेतवः ॥२-३१६-१८[1]

कहते हैं कि उपर्युक्त उपायों से शब्दार्थ का प्रविभाग होता है, केवल शब्द का रूप जान लेने से अर्थ नहीं प्राप्त होता। ये उपाय शब्दार्थ के अनवच्छेद के, किस शब्द का क्या अर्थ है, इसको जानने के हैं। अब हम एक-एक उपाय की विवेचना करें।

१. वाक्य : आगे भी हम अर्थनिश्चय के संबंध में इसका उल्लेख कर चुके हैं कि जब तक शब्दों का प्रयोग वाक्य में न हो तब तक उन (शब्दों) का वास्तविक अर्थ नहीं जाना जा सकता। वाक्यगत शब्द के व्याकरणिक रूपों के आधार पर ही शब्दार्थ का निर्णय किया जा जा सकता है।

२. प्रकरण : प्रकरण—प्रसंग भी शब्दार्थनिश्चय का एक उपाय है। प्रस्थान अथवा युद्ध के प्रसंग में 'सैंधव' का अर्थ घोड़ा और भोजन के प्रसंग में इसका अर्थ 'सेंधा नमक' होगा।

३. अर्थ : अर्थ द्वारा भी शब्दार्थ के निश्चय में सहायता मिलती है। पुण्यराज ने इसके संबंध में विचार करते हुए ये उदाहरण दिए हैं : 'अंजलिना जुहोति, अंजलिना सूर्यमुपतिष्ठते, अंजलिना पूर्णपात्रमाहरति'। और, कहते हैं कि 'जुहोति', 'उपतिष्ठते', 'आहरति' अर्थों के कारण 'अंजलि' शब्द विभिन्नार्थवाचक हो गया है।

४. औचित्य : इसकी विवेचना करते हुए पुण्यराज ने कई उदाहरण दिए हैं, जिनमें से एक यह है :

यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा ।
यश्चैनं गंधमाल्याभ्यां सर्वस्य कटुरेव सा ॥

---

१. वही।

यहाँ क्रियापद और साधन अनुक्त हैं; फिर भी औचित्य द्वारा अपने-अपने समुचित क्रियापद से अवगत होकर अवांतर वाक्य उपप्लावन-प्रत्यायनपूर्वक वाक्य के अर्थ के अप्रस्तुत प्रशंसा लक्षणा की प्रतीति उत्पन्न करते हैं। जो नीम को परशु से काटता है, जो इसको सुगंधि से अनुलेपित करता है, ऐसे व्यक्ति की मति दुरत्याज्य है, ऐसा बोध कराकर बुरे मनवाले की उदारता कटु ही होती है, यहाँ इस प्रकार की दुष्टता का प्रतिपादन ही तात्पर्यार्थ है। यहाँ विवेचना द्वारा यही दिखाया गया है कि प्रसंग के औचित्यबोध द्वारा वास्तविक अर्थ की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह औचित्य अर्थनिश्चय का एक उपाय है।

५. देश : जब यह कहा जाता है कि 'मथुरा के उत्तर-पूर्वी नगर से आ रहा हूँ'—तब इसका अर्थ होता है कि 'नगरविशेष पाटलिपुत्र से आ रहा हूँ।' पाटलिपुत्र और मथुरा में संबंध उत्तर-पूरब दिशा का है, इस स्थिति के बोध द्वारा यहाँ देश के कारण अर्थनिश्चय में सहायता मिली है।

६. काल : एक क्रियाविहीन वाक्य है : 'शिशिर में द्वार···।' यहाँ 'शिशिर' का उल्लेख है, अतः वाक्य की पूर्ति होगी 'बंद करो' क्रिया से। किंतु, यदि क्रियाविहीन वाक्य यह होता : 'ग्रीष्म काल में द्वार···' तो इस वाक्य को पूरा किया जाता 'खोलो' क्रिया रख कर। इस उदाहरण द्वारा यही दिखाया गया है कि काल के अनुसार भी शब्दार्थनिश्चय में सहायता मिलती है।

'वाक्यपदीय' के इस श्लोक (२-३१६) की टीका करते हुए पुण्यराज ने अंत में कहा है कि शब्दार्थनिर्णय के उपायों की विवेचना में इस (विवेचना) को दिशाप्रदर्शन मात्र समझना चाहिए :

एतच्च शब्दार्थनिर्णयोपायानां दिङ्मात्र प्रदर्शनं बोद्धव्यम्।

७. संसर्ग : एक उदाहरण लिया जाय : 'बछड़ेवाली गाय लानी चाहिए'। इस उदाहरण में 'बछड़े' के संसर्ग से जातिविशेष अथवा प्रकारविशेष, या किसी विशेष गाय का बोध होता है। बिना बछड़े की गाय भी गाय ही होती है, किंतु यहाँ 'बछड़े' के उल्लेख से गायविशेष का अर्थ संमुख आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी शब्द का संसर्ग अभीप्सित अर्थ के बोध का एक उपाय है।

८. विप्रयोग : यदि कहा जाय कि 'बिना बछड़ेवाली गाय लानी चाहिए' तो 'बछड़े' के विप्रयोग से एक गाय विशेष का अर्थ सामने आता है। अतः किसी शब्द का विप्रयोग भी अभीप्सित अर्थबोध का एक उपाय है।

९. साहचर्य : जब 'रामलक्ष्मण' का प्रयोग किया जाता है तब 'लक्ष्मण' के साहचार्य से 'राम' का अर्थ होता है 'दाशरथि राम'; 'परशुराम, बलराम' का अर्थ नहीं व्यक्त होता। इस प्रकार किसी शब्द का साहचर्य अर्थनिश्चय का एक उपाय है।

१०. विरोधिता : 'रामार्जुन' कहने से अर्जुन और राम में निसर्ग शत्रुता के कारण जामदग्न्य (परशुराम) का बोध होता है। यहाँ 'अर्जुन' द्वारा ही जामदग्न्य राम का यह अर्थ प्राप्त हुआ है।

अर्थ और प्रकरण की विवेचना हम पूर्व ही कर चुके हैं।

११. लिंग : लिंग का अर्थ होता है लक्षण, चिह्न। 'चन्द्रमौलि' कहने से 'चंद्र' जिन शिव का लक्षण है उन्हीं शिव का बोध होता है। इसका और कोई अर्थबोध नहीं होता। इस प्रकार लिंग भी अर्थ-निर्णय का एक साधन है।

१२. अन्य शब्दसंनिधि : 'संनिधि' का अर्थ है 'सामीप्य'। 'कार्तवीर्य अर्जुन, जामदग्न्य राम' में कार्तवीर्य तथा जामदग्न्य शब्द के

सामीप्य से अर्जुन का अर्थ पांडव अर्जुन नहीं होगा। ऐसे ही वाम-शब्द के समीप रहने से राम का अर्थ दाशरथि राम नहीं होगा। अतः अन्य शब्दसंनिधि भी अर्थनिर्णय का एक उपाय है।

१३. सामर्थ्य : 'रूपवान् को कन्या देनी चाहिए'। इस उदाहरण में 'रूपवान्' अपने सामर्थ्य से 'रूपवान् वर' का बोध कराता है। इस प्रकार शब्द का सामर्थ्य अर्थनिर्णय का उपाय होता है।

औचित्य, देश तथा काल की विवेचना आगे की जा चुकी है।

१४. व्यक्ति : यहाँ 'व्यक्ति' का तात्पर्य है—पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। हिंदी में 'नौ-रतन' पुंलिंग होने पर 'नौ नगोंवाला एक गहना' का बोध कराता है और स्त्रीलिंग होने पर 'एक प्रकार की चटनी' का अर्थ देता है।

१५. स्वर : संस्कृत में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वर के भेद से अर्थ में भेद होता है। हिंदी में भी स्वर, बल, बलाघात द्वारा अर्थ में भेद के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। 'लो' को जब बिना बल द्वारा बोला जाता है तब इसका अर्थ अनुनय, मनुहारपूर्वक देना का बोध कराता है, और 'लो' के 'ओ' पर जब बल देकर बोला जाता है तब किसी को क्रोधपूर्वक किसी चीज के देने का बोध होता है।

श्लोक में 'स्वरादयः' शब्द आया है अर्थात् 'स्वर, आदि।' इस 'आदि' का क्या तात्पर्य है। पुण्यराज का कथन है कि इससे सत्व, षत्व, णत्व, नत्व का अर्थ लेना चाहिए।

§ ४४ जर्मन भाषाशास्त्री हर्मान पाउल (Hermann Paul) ने अपने ग्रंथ 'दि प्रिंसिपुल्स आव् दि हिस्ट्री आव् लैंग्वेज' (The Principles of the History of Language) नामक ग्रंथ में यह विवेचना करने के उपरांत कि सभी प्रकार के शब्दों के

अर्थ अनिश्चित है, इसकी भी मीमांसा की है कि अर्थनिश्चय के उपाय क्या हैं ? उनके द्वारा विवेचित उपायों का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं।

१. वक्ता और श्रोता का समान अवधारण : 'सुरेश ने मोहन से कहा कि कल मैं वहाँ गया था'। इस उदाहरण के 'वहाँ' के संबंध में सुरेश और मोहन दोनों की जानकारी है, अतः सुरेश द्वारा 'वहाँ' के उल्लेख से मोहन ने समझ लिया कि 'वहाँ' से किस स्थान की ओर संकेत किया गया है। 'वहाँ' इंगित, आदि द्वारा भी संकेतित हो सकता है।

२. वक्ता के पहले बोले हुए वाक्य : मान लीजिए कि राजा भर्तृहरि की कथा कही जा रही है, तो मात्र 'राजा' कहने से 'राजा भर्तृहरि' का ही अर्थ लिया जायगा।

३. विशेष सामर्थ्य : अनिश्चित अर्थवाला शब्द विशेष सामर्थ्य प्राप्त कर निश्चित अर्थ का बोध करा सकता है। यह विशेष सामर्थ्य वक्ता और श्रोता के समान निवास, वयस्, श्रेणी, व्यापार, आदि द्वारा प्राप्त होता है। उदाहरण लीजिए : 'मैं बृहस्पतिवार को **शहर** चला जाऊँगा; **विश्वविद्यालय** में सांस्कृतिक संमेलन है, वहाँ **सविता** का **नृत्य है**'। इन उदाहरणों में 'बृहस्पतिवार' से 'आगामी बृहस्पतिवार', 'शहर' से 'निकट का शहर', 'विश्वविद्यालय' से 'विश्वविद्यालय विशेष', 'सविता' से 'सविता नाम्नी लड़की विशेष', 'नृत्य' से 'नृत्य विशेष' (जो मणिपुरी, कथक, कथाकली, कोई भी हो सकता है, जो नृत्य सविता करती है) का अर्थबोध होता है। यहाँ ध्यान में रखने की बात यह है कि उदाहरणों में आई चीजों को वक्ता तथा श्रोता दोनों जानते हैं। इसलिए ये चीजें यद्यपि अनिश्चित अर्थवाली हैं तथापि वक्ता तथा श्रोता में अनेकविध समानता के कारण इनका अर्थ निश्चित हो गया है।

४. अन्य शब्दों को जोड़ने से अर्थ की सीमा का निश्चय : 'महल' शब्द में 'राज' शब्द जोड़ और 'राजमहल' कर उसका अर्थ सीमित किया जा सकता है। 'राजमहल' में 'विक्रमादित्य का' शब्दों को जोड़ 'विक्रमादित्य का राजमहल' कर उसका अर्थ और सीमित किया जा सकता है। 'विक्रमादित्य का राजमहल' में 'उज्जैन का' शब्दों को जोड़ने और इसे 'विक्रमादित्य का उज्जैन का राजमहल' करने से इसका अर्थ और भी सीमित हो जायगा। इस प्रकार शब्द जोड़ने से उसके अर्थ की सीमा का निश्चय बढ़ता जाता है।

५. संबंधी शब्द : अनिश्चित अर्थवाले शब्द के संबंधी शब्द या शब्दों द्वारा उस (अनिश्चित अर्थवाले शब्द) का अर्थ निश्चित होता है। जब कहा जाता है : 'रामू की गाय' तब 'गाय विशेष' का अर्थ निश्चित होता है। 'मैंने कमर कस ली, से 'अपनी कमर' के अर्थ का निश्चय होता है।[1]

हम देखते हैं कि हर्मान पाउल द्वारा कथित अर्थनिश्चय के उपायों तथा भर्तृहरि द्वारा कथित उपायों में अनेक प्रसंगों में समता है। जैसे हर्मान पाउल द्वारा उपर्युक्त तृतीय तथा पंचम उपाय क्रमशः भर्तृहरि द्वारा कथित 'सामर्थ्य' तथा 'संसर्ग' की समता करते हैं।

---

१. बाबूराम सकसेना : अर्थविज्ञान, पृ० २९–८।

९

स्फोट

§४५ प्राचीन भारतीय वैयाकरण स्फोट के गंभीर और सूक्ष्म विवेचन द्वारा इसे एक वाद अथवा सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठापित कर व्याकरण को दर्शन की पीठिका—दर्शन की अति उच्च पीठिका—पर ले गए। इसके द्वारा उन्होंने व्याकरणतत्व को दर्शन के अति उच्च वेदांततत्व के साथ ला मिलाया। इस प्रकार स्फोटवाद व्याकरण के क्षेत्र का दर्शन (Philosophy) है। प्राचीन भारतीय वैयाकरणों द्वारा स्फोटवाद की विवेचना का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि मौलिक तत्वों की मीमांसा में उनकी दृष्टि कितनी अतलस्पर्शिनी थी। इस वाद की प्रतिष्ठा द्वारा उन्होंने भाषा—शब्द और अर्थ—का चरम स्रोत अथवा मूल ढूँढ़ निकाला है। इसीलिए स्फोट की विवेचना वस्तुतः अध्यात्म अथवा दर्शन की विवेचना हो जाती है। कौंडभट्ट ने कहा कि निष्कर्ष रूप से यही कहना चाहिए कि ब्रह्म ही स्फोट है :

निष्कर्षे तु ब्रह्मैव स्फोट इति भावः। ७४ की टीका[1]

उन्होंने यह भी कहा कि ब्रह्म ही शब्दतत्वरूप है, अक्षररूप है :

इत्थं निष्कृष्यमाणं यच्छब्दतत्त्वं निरंजनम्।
ब्रह्मैवेत्यक्षरं प्राहुस्तस्मै पूर्णात्मने नमः॥ ७४[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने अक्षर, शब्द, स्फोट, सबको ब्रह्मस्वरूप माना है, ये और कुछ नहीं हैं, ब्रह्म ही हैं।

---

१. वैयाकरणभूषण।

अतः अक्षरतत्व, शब्दतत्व, स्फोटतत्व तथा ब्रह्मतत्व में भेद नहीं है, ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है। स्फोट ब्रह्म की भाँति ही अक्षर है, नित्य है, अतः इन वैयाकरणों ने शब्द के अनित्य स्वरूप; उसके उच्चरित होकर नष्ट हो जाने के रूप पर तो ध्यान ही नहीं दिया है। शब्द को ये भौतिक मानते ही नहीं हैं—जैसा कि आज वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न हम लोग समझते हैं।

प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित भाषा के क्षेत्र के इस दर्शन को भारतीय शुद्ध दार्शनिकों ने स्वीकार नहीं किया और इन्होंने इसकी खूब खिल्ली उड़ाई है, अपनी पूरी शक्ति के साथ इसका विरोध किया है—विशेषतः तार्किकों ने। स्फोटवाद का प्रतिपादन और प्रतिष्ठापन करते हुए प्रायः परवर्ती वैयाकरणों ने भी दार्शनिकों—विशेषतः तार्किकों—के एतत्संबंधी विरोधों का पूरा जवाब दिया है और इस वाद की पुष्टि अनेक विवेचनाओं द्वारा की है।

§ ४६ ऊपर की विवेचना से स्फोट के स्वरूप का कुछ आभास मिलता है। यहाँ इसका भी उल्लेख किया जाय कि स्फोट ब्रह्म का प्रतिरूप ब्रह्म ही होने से उसी के समान शाश्वत माना गया है। ब्रह्म की ही भाँति यह निश्चित रूप से एक और उसी के समान अखंड भी है, ऐसा प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री स्वीकार करते हैं।

ऐसे स्फोट की कल्पना का आधार क्या है? इसका मूल कहाँ है? यह प्रश्न भी उपस्थित होता है। वैदिक साहित्य में बार-बार इसका उल्लेख आया है कि आध्यात्मिक शब्द प्रणव—ओ३म्—मूलभाषाध्वनि है, जिससे वाक्—भाषा—के सभी रूप विकसित अथवा उत्पन्न हुए हैं। इसका भी उल्लेख किया गया है कि इस पवित्र शब्द के तीन अवयवों—अ, उ, म्—का उदय ब्रह्म के हृदय में उस समय हुआ जिस समय वह गंभीर आध्यात्मिक चिंतन में निमग्न था। इस प्रणव ने गायत्री के

रूप में अपना स्वरूप अभिव्यक्त किया और गायत्री से तीनों वेदों की उत्पत्ति हुई। इसी एक शब्द ओ३म् से सारे जगत् की सृष्टि हुई। नागेश भट्ट ने इस विवेचन का बहुत ही स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि यह स्फोट आंतर प्रणव का रूप ही है। श्रुति में कहा गया है कि सभी वाक् इस ओंकार से ही विकसित हुए। स्पर्श, ऊष्म, आदि से अभिव्यक्त होकर यह वाक् अथवा वाणी नाना रूप धारण करती है। यह वाक्य, पद, आदि बहु रूपों में प्रकट होती है। घट, पट, आदि रूपों में भी यही स्थित है :

स चायं स्फोट आन्तर प्रणवरूप एव। 'ओंकार एव सर्वा वाक् सैषा स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवति' इति श्रुतेः। बह्वी, वाक्यपदादि रूपा। नाना रूपा, घट पटादि रूपा च।'[1]

इसी प्रसंग में नागेश भट्ट ने ब्रह्म के हृदय में प्रणव के आविर्भाव का उल्लेख करते हुए 'श्रीमद्भागवत महापुराण' के द्वादश स्कंध से निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत किया है :

> '**समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।**
> **हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते॥**'

ऊपर स्फोट को 'आंतर प्रणव' कहा गया है। 'वैयाकरण सिद्धांत-मंजूषा' की 'कुंजिका टीका' करते हुए कहा गया है कि प्रणव द्विविध होता है। एक पर दूसरा अपर। पर ब्रह्मात्मक होता है और अपर शब्दात्मक। टीकाकार ने अपने मत की पुष्टि 'सूत संहिता' से दो श्लोक उद्धृत करके की है :

प्रणवश्च द्विविधः परोऽपरश्च। परो ब्रह्मात्मकः,
अपरः शब्दात्मकः।

---

१. वैयाकरण सिद्धांतमंजूषा, पृ० ३८६।

तदुक्तं सूतसंहितायाम्—
परः परतरं ब्रह्म ज्ञानानंदादि लक्षणम्।
प्रकर्षेण नवं यस्मात्परं ब्रह्मस्वभावतः।
अपरः प्रणवः साक्षाच्छब्दरूपः सुनिर्मलः।
प्रकर्षेण नवत्वस्य हेतुत्वात्प्रणवः स्मृतः॥[1]

इस विवेचना का निष्कर्ष यह है कि ब्रह्म, प्रणव, स्फोट, शब्द, सब एक ही तत्व हैं। नाम भिन्न-भिन्न हैं, किंतु इनका मूल रूप समान अथवा एक ही है। एक ही तत्व के ये विभिन्न नाम हैं। अंत में हमने यह भी अवगत किया कि शब्द भी प्रणव का एक रूप है।

§४७ दार्शनिक और तांत्रिक ग्रंथों में वाक् के जो प्रकार मिलते हैं उनको दृष्टिपथ में रखकर भी स्फोट के संबंध में विचार किया जाय। वाक् के चार प्रकार हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा, वैखरी :

परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कंठदेशगा॥[2]

परा वाणी मूलाधार चक्र में स्थित रहती है। मूलाधारस्थ पवन से यह परिष्कृत होती है। यह मूलाधारस्थित वाणी ब्रह्मरूपिणी है। यह स्पंदनशून्या तथा बिंदुरूपिणी है। पश्यंती वाणी नाभिपर्यंत आती है, वहाँ (नाभि) की वायु से अभिव्यक्त होती है। यह मनोगोचरी है, मन से ही सुनी जा सकती है। ये दोनों वाग्-ब्रह्म योगियों को समाधि की अवस्था में निर्विकल्पक और सविकल्पक ज्ञान के विषय होते हैं। मध्यमा वाणी का स्वरूप यह है कि वह हृदयपर्यंत आती है। वहाँ (हृदय) की वायु से अभिव्यक्त होती है। अर्थवाचक वाणी

---

१. वही।
२. परमलघुमंजूषा, पृ० २३।

स्फोटरूपा होती है, परंतु श्रोत्र द्वारा ग्रहण की अपनी अयोग्यता के कारण सूक्ष्म होती है। यह जपादि की अवस्था में बुद्धिग्राह्य होती है। मुखपर्यंत आनेवाली, वहाँ की वायु से ऊपर जा और मूर्धा में टकराने के बाद लौटने पर मुख के विभिन्न स्थानों से अभिव्यक्त होनेवाली, दूसरों के कानों द्वारा सुनी जानेवाली वैखरी वाणी कहलाती है।[1]

मनीषियों ने मध्यमा और वैखरी वाणी के भेद का अनुभव कर उनके स्वरूप को प्रभूततः स्पष्ट किया है। मध्यमा और वैखरी वाणी से युगपत् रूप से नाद उत्पन्न होता है। मध्यमा वाणी से उत्पन्न नाद अर्थवाचक—अर्थ व्यक्त करनेवाला—स्फोटात्मक शब्द का व्यंजक होता है। इससे उत्पन्न नाद सूक्ष्मतर होता है और कर्णकुहरों के बंद करने अथवा जपादि की स्थिति में सुनाई पड़ता है। सूक्ष्मतर वायु से यह नाद अभिव्यक्त होता है। यह नाद शब्द-ब्रह्मरूप स्फोट का व्यंजक होता है। इस प्रकार मध्यमा नाद से अभिव्यक्त शब्द स्फोटात्मक, ब्रह्मरूप तथा नित्य होता है। वैखरी वाणी से उत्पन्न नाद—ध्वनि सकल जन श्रोत्रमात्र ग्राह्य भेरी, आदि नाद के समान निरर्थक होता है। मध्यमा तथा वैखरी वाणी में यही भेद है। हमने देखा कि इन दोनों में मुख्य है मध्यमा—यद्यपि दोनों युगपत् रूप से ही उत्पन्न होती हैं।[2]

§ ४८ मध्यमा तथा वैखरी वाणी के भेद से ध्वनि के भी दो भेद माने गए हैं—प्राकृत और वैकृत। प्रकृतितः अर्थबोधन की इच्छा अथवा स्वभाव से उत्पन्न स्फोटव्यंजक ध्वनि प्राकृत ध्वनि है। वैकृत ध्वनि उत्पन्न तो होती है प्राकृत ध्वनि से ही, किंतु वह अनवरत रूप से विकारयुक्त—परिवर्तनयुक्त होती रहती है। नागेश ने अपनी विवेचना की पुष्टि भर्तृहरि की उक्ति द्वारा की है, जिसमें कहा गया है कि स्फोट के

---

१. वही।

२. वही, पृ० २४।

ग्रहण में कारण होती है प्राकृत ध्वनि। शब्द की अभिव्यक्ति के बाद वैकृत ध्वनि उत्पन्न होती है। इससे स्फोटात्मा किसी प्रकार प्रभावित अथवा दूषित नहीं होती :

ध्वनिस्तु द्विविधः।प्राकृतो वैकृतश्च। प्रकृत्याऽर्थबोधनेच्छया स्वभावेन वा जातः स्फोटव्यंजकः प्रथमः प्राकृतः। तस्मात् प्राकृताज्जातो विकृतिविशिष्टश्चिरस्थायी निवर्तकतो वैकृतिकः।[1]

स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते।
वृत्तिभेदे निमित्तत्वं वैकृतः प्रतिपद्यते॥
शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृताः।
ध्वनयस्समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते॥ १-७७-८[2]

§ ४६. इस विवेचना में अब तक हमने कई ऐसे शब्दों का प्रयोग देखा है, जिनका प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की दृष्टि में बड़ा महत्त्व है। ये शब्द हैं—स्फोट, ध्वनि, नाद, शब्द। मोटे तौर से देखने पर ये प्रायः समान जान पड़ेंगे—ये सब अन्योन्याश्रित हैं भी, किंतु वस्तुतः इनमें भेद है। स्फोट तथा ध्वनि के भेद की विवेचना पतंजलि ने की है, इस प्रसंग में शब्द की विवेचना भी आ गई है। कहते हैं कि 'स्फोट' 'शब्द' है। तात्पर्य यह कि 'स्फोट' और कुछ नहीं है वह 'शब्द' ही है। 'ध्वनि' 'शब्द' का गुण है। इस तथ्य को यों भी कहा जा सकता है कि 'ध्वनि' के 'शब्द' अथवा 'स्फोट' का गुण स्वीकृत होने से वह (ध्वनि) 'शब्द' अथवा 'स्फोट' का व्यंजक है। इस तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि 'ध्वनि' है व्यंजक और 'स्फोट'

---

१. वही, पृ० २५।
२. वाक्यपदीयम्।

अथवा 'शब्द' है व्यंग्य। 'स्फोट' 'शब्द' है और 'ध्वनि' 'शब्दगुण'—ऐसा कह कर पतंजलि स्वयं प्रश्न करते हैं कि 'यह कैसे' ? और, स्वयं ही उत्तर देते हैं कि 'भेरी के आघात की भाँति'। भेरी बजाने पर उससे उत्पन्न शब्द २० पद, ३० पद, ४० पद तक जाता है। जो व्यक्ति जहाँ रहता है वह उसे वहीं सुनता है। कहने का तात्पर्य यह कि भेरी का 'शब्द' तो समान—एक—ही है, किंतु जो निकट है वह शीघ्र और जो दूर है वह देर में सुनता है। 'स्फोट' के संबंध में भी ऐसा ही समझना चाहिए। भेरी के शब्द के समान 'स्फोट' एक है, अपरिवर्तनीय है, एक भाव से सब समय रहता है; 'शब्द' का गुण 'ध्वनि' ह्रस्व, दीर्घ, आदि रूपों में, परिवर्तित रूपों में अनुभूत होता है :

एवं तर्हि—स्फोटः शब्दः। ध्वनिः शब्द गुणः ॥ कथम् ? भेर्याघातवत्। तद्यथा—भेर्याघातः भेरीमाहत्य कश्चिद्विंशति पदानि गच्छति। कश्चित्त्रिंशत् कश्चिच्चत्वारिंशत्। स्फोटस्तावानेव भवति। ध्वनिकृता वृद्धिः ॥

ध्वनिः स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते।
अल्पोमहांश्च केषांचिदुभयं तत्स्वभावतः ॥ १-१-६[1]

ध्वनि और स्फोट में भेद की मीमांसा में भर्तृहरि ने 'ध्वनि' को 'नाद' कहा है। मूलतः उनके विचार भी इस संबंध में पतंजलि के के समान ही हैं। वे कहते हैं कि नाद में पूर्व और अपरक्रम होता है, किंतु स्फोट में यह क्रम नहीं होता है, क्योंकि वह एक और नित्य है। उसमें जो क्रम का भान होता है वह नादाभिव्यक्तिगत क्रम के कारण। वास्तव में स्वतः स्फोट में पूर्वत्व तथा परत्वकृत क्रम का भेद नहीं है। भर्तृहरि अपने मत की पुष्टि एक उदाहरण द्वारा करते हैं। चंद्रादि का

---

१. महाभाष्य।

प्रतिबिम्ब जब जल में पड़ता है तब जल की चंचलता के कारण ऐसा जान पड़ता है कि चंद्रादि भी चंचल तथा अनेक हैं। किंतु, तथ्यतः ऐसा तो नहीं होता। ऐसे ही नाद अथवा ध्वनि की ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, द्रुत, आदि वृत्ति के कारण स्फोट भी उसी (ध्वनि) के समान जान पड़ता है, जो वास्तविक नहीं है :

नादस्य क्रमजातत्वान्न पूर्वो नापरश्च सः ।
स क्रमः क्रमरूपेण भेदवानिव गृह्यते ॥
प्रतिबिंबं यथान्यत्रस्थितं तोयक्रियावशात् ।
तत्प्रवृत्तिमिवान्वेति स धर्मः स्फोट नादयोः ॥ १-४८-९[1]

§ ५० हम इसका उल्लेख बराबर पाते आ रहे हैं कि स्फोट एक, अखंड, नित्य, आदि है। किंतु, इस स्वीकृति के साथ ही हम यह भी पाते हैं कि स्फोट के विभिन्न रूप हैं, जैसे—वर्णस्फोट, पदस्फोट, वाक्यस्फोट। ऐसी स्थिति में तो स्फोट के खंड हो गए। किंतु, बात ऐसी नहीं है, वह है एक और अखंड ही। वर्ण, पद, वाक्य में भी वह एक, अखंड भाव से रहता है, वैसे ही जैसे मुख तो एक ही रहता है, परंतु मणि, कृपाण, दर्पण में दीर्घ, वर्तुल, आदि रूपों में दिखाई पड़ता है :

यथा च मुखे मणि कृपाण दर्पण व्यंजकोपाधि-
वशाद् दैर्घ्यवर्तुलत्वादि भानं तद्वत् ।[2]

वर्ण, पद, वाक्य में एक, अखंड स्फोट की व्याप्ति पर दृष्टि रखकर ही, यह मानकर ही कि स्फोट के इस स्वरूप द्वारा तो वर्ण, पद, वाक्य में कोई भेद है नहीं, भर्तृहरि ने कहा है कि पद में वर्ण नहीं होते, वर्णों के

१. वाक्यपदीयम् ।
२. परमलघुमंजूषा ।

भी अवयव नहीं हैं, वाक्य से पदों को भी अलग नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह कि सब एक, अखंड हैं :

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन। १-७३[1]

स्फोट एक ही है, इसकी सिद्धि अन्य तर्कों से भी की गई है। प्रश्न उठता है कि जब स्फोट एक है तब 'क' तथा 'ग' ध्वनि में भेद क्यों है? इसका उत्तर है कि यह भेद उपाधि के कारण प्रतीत होता है, वस्तुतः भेद नहीं है। आकाश एक ही है, मगर घटाकाश, मठाकाश कहा जाता है, चेतन एक ही है मगर जीव में एक चेतना और ईश्वर में दूसरी चेतना का आभास होता है। इसी प्रकार स्फोट में भी भेद-व्यवहार से एक ही व्यंजक ध्वनि 'क' तथा 'ग' के रूप में जान पड़ती है। यह भेद औपाधिक है, वास्तविक नहीं :

यथा चैकस्याकाशस्य घटाकाशो मठाकाश इत्यौपाधिको भेदः, यथा चैकस्यैव चेतनस्योपाधिको जीवेश्वर भेदो। जीवानां च परस्परं भेदः, एवं स्फोटे व्यंजक ध्वनिगत-कत्वादि भानात्ककारो बुद्ध इत्यौपाधिको भेद व्यवहारः।[2]

कुछ लोग यह मानते हैं कि पद और वाक्य सखंड होते हैं। उनके मत के अनुसार पूर्व पूर्व वर्ण तात्पर्यग्राहक होता है और अंतिम वर्ण एक स्फोट को अभिव्यक्त करता है। इस मत के लोग भी, इस प्रकार, स्फोट को एक मानते हैं :

पद वाक्ययोस्सखंडत्वपक्षे त्वन्तिम वर्ण व्यंग्यः स्फोट एक एव। पूर्व पूर्व वर्णास्तु तात्पर्यग्राहकः।[2]

---

१. वाक्यपदीयम्।
२. परमलघुमंजूषा, पृ० २५।

इस विवेचना का निष्कर्ष यही है कि विभिन्न प्रतिभासित होते हुए भी स्फोट एक, अखंड है।

§ ५१ अब विचारणीय यह है कि स्फोट और ध्वनि का बोध कैसे होता है। भर्तृहरि के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए पुण्यराज ने इस संबंध में विचार किया है :

स्फोट रूपाविभागेन ध्वनेर्ग्रहणमिष्यते।
कैश्चिद् ध्वनिरसंवेद्यः स्वतंत्रोन्यैः प्रकाशकः ॥ १-८२[1]

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए पुण्यराज ने विभिन्न लोगों के विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। कुछ लोगों का मत अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि स्फटिकादि के संपर्क से जैसे जपाकुसुम का रूप ग्रहण होता है, अर्थात् स्फटिक, आदि से निकल कर जैसे जवाकुसुम का रूपबोध होता है, वैसे ही ध्वनि रूप से संपृक्त होकर स्फोट की उपलब्धि होती है। कुछ लोग इस पक्ष के हैं कि जिस प्रकार इंद्रिय के गुण असंवेद्य स्वरूप हैं, फिर भी ये विषयबोध के कारण होते हैं उसी प्रकार ध्वनि अगृह्यमाण होने पर भी शब्दग्रहण का निमित्त अथवा कारण होती है। कुछ लोग कहते हैं कि दूरत्व दोष से स्फोट स्वरूप का अवधारण नहीं होता, केवल ध्वनि की उपलब्धि होती है। एक पक्ष यह मानता है कि स्फोट भासता तो रहता है, किंतु दूरत्व दोष से अस्फुट, अस्पष्ट रहता है :

यथा जपाकुसुम रूपानुरक्तमेव स्फटिकादीनां ग्रहणं तथा ध्वनि-रूपानुरक्त एव स्फोटस्तदविभागेनोपलभ्यत इति केषांचिन्मतम्। अन्येषां तु यथेंद्रियगुणा असंवेद्यस्वरूपा एव विषयोपलब्धि हेतवः तथा ध्वनिरगृह्यमाण एव शब्दग्रहणे निमित्तं भवति। अन्ये तु दूरत्वदोषात्स्फोटस्वरूपानवधारणे केवल ध्वनेरुपल-

1. वाक्यपदीयम्।

भिधर्षेत्याहुः । अपरे तु स्फोटो भासत एव तथापि, किंतु दूरत्वदोषादस्फुटः यथा दूरत्व दोषाद्द्रव्यस्यापचित परिमाणतया ग्रहणमित्याहुः ।[1]

स्फोट तथा ध्वनि के बोध के संबंध में विभिन्न मतानुसर्ताओं द्वारा निर्धारित ये विभिन्न प्रकार अथवा उपाय हैं। इस मीमांसा द्वारा यह तथ्य भी अवगत होता है कि स्फोट तथा ध्वनि प्रगाढ़ रूप से संबद्ध तथा अन्योन्याश्रित हैं।

§ ५२ स्फोट का इतना विवेचनविस्तार क्यों ? अर्थतत्त्व अथवा अर्थ से इसका संबंध क्या है ? कहने की आवश्यकता नहीं कि 'स्फोट' शब्द के मूल में ही 'अर्थ' संनिहित है। पंकज, आदि की भाँति यह योगरूढ़ शब्द है, जिसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ ही है—'जिससे अर्थ स्फुटित होता है।' श्रीकृष्ण मौनि कहते हैं :

स्फुटति अर्थो यस्मादिति व्युत्पत्त्या पंकजादि पदवद्योगरूढः स्फोट शब्दः ।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें 'अर्थ' मिलता है स्फोट से। 'अर्थ देता है शब्द', यह विचार मात्र व्यावहारिक है, ऐसा हम मात्र समझते और जानते हैं। किंतु व्यापक मीमांसा के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुतः हमें अर्थ देता है स्फोट ही। हमारी अब तक की विवेचना से भी यह तथ्य प्रमाणित होता है।

स्फोट के दो स्वरूप माने गए हैं, एक आंतर और दूसरा बाह्य। पदादि रूप आन्तर स्फोट ही मुख्य है, यही अर्थवाचक होता है :

एवं च पदादि रूप आंतर स्फोटो वाचक इति सिद्धम् ।[3]

---

१. वाक्यपदीयम् ।

२. स्फोटचंद्रिका, पृ० १ ।

३. वैयाकरणसिद्धांतमंजूषा, पृ० २१५ ।

इसकी 'कुंजिका टीका' है :

स्फोटो द्विविधः आन्तरो बाह्यश्च । तत्रान्तरस्य मुख्यं वाचकत्वमित्यर्थः ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आंतर स्फोट ही, जो केवल ध्वनि द्वारा अभिव्यक्त होता है, वास्तविक रूप से अर्थव्यंजक है। बाह्यस्फोट का, जो हमारी श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा सुना जाता है, संबंध अर्थ के साथ घनिष्ठ नहीं है। स्फोट के बाह्य रूप के भी दो प्रकार हैं, एक जाति वाचक होता है और दूसरा व्यक्ति वाचक :

बाह्यस्तु जाति व्यक्ति भेदेन द्विविधः ।[1]

§ ५२ आंतर स्फोट मुख्य है, इसे हमने देखा है। बाह्य स्फोट तो आंतर स्फोट का मात्र शरीर है, स्फोट की आत्मा तो आंतर स्फोट ही है। किंतु स्फोट के प्रकार की विवेचना में आश्रय लेना पड़ता है बाह्य स्फोट का ही। इस प्रकार व्यक्ति और जाति के भेद से आठ प्रकार के स्फोट माने गए हैं :

१. वही, पृ० २३७ ।
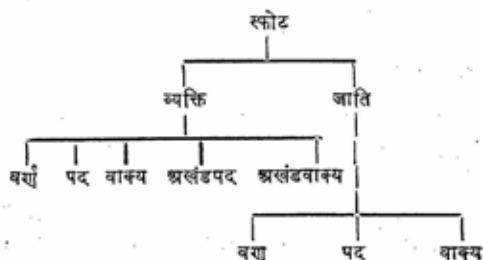
स्फोट के प्रकार की विवेचना करते हुए प्राचीन भारतीय भाषा-शास्त्रियों ने यह प्रश्न उठाया है कि आंतर स्फोट की विवेचना के लिए बाह्य स्फोट का आश्रय क्यों लिया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर भी इन्हीं लोगों ने बहुत ही समुचित रूप से दिया है, जैसे 'तैत्तिरीय उपनिषद्' की 'ब्रह्मानंद वल्ली' में शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान के लिए अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय, इन पाँच कोशों में अपारमार्थिक ब्रह्मत्व का प्रतिपादन एक उपाय है······वैसे ही पारमार्थिक अखंड वाक्य के बोध के लिए ये वर्ण, पद, वाक्य, अखंडपद स्फोट उपाय हैं। अंत में यह सिद्धांत स्थापित किया है कि असत्य मार्ग पर चल कर सत्य की प्राप्ति होती है :

यथाऽऽनंद वल्ल्यां शुद्ध ब्रह्मज्ञानार्थमन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमयानंदमयेति पंचसु कोशेषु अपारमार्थिक ब्रह्मत्वप्रतिपादनमुपायः······तथा पारमार्थिकाखंड वाक्य बोधार्थमेते वर्ण पद वाक्याखंड पदस्फोटा उपायाः। तदुक्तम्—

उपायाः शिक्षमाणानां बालानामुपलालनाः।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।[1]

ऊपर हमने ८ प्रकार के स्फोटों का उल्लेख किया है। ये प्रकार परवर्ती वैयाकरणों द्वारा कल्पित अथवा निर्धारित हैं। पतंजलि, आदि प्राचीन वैयाकरणों ने स्फोट को व्यक्ति और जाति में ही विभाजित कर इसके और प्रकार नहीं बताए हैं। उपर्युक्त विवेचना द्वारा इसका आभास मिला होगा कि इन सभी स्फोटों में प्रधान अथवा चरम

---

1. स्फोटचंद्रिका, पृ० १।

स्फोट है अखंडवाक्य स्फोट। अन्य स्फोट इसकी सिद्धि के लिए मात्र साधन अथवा उपाय हैं। वास्तविक अर्थवाचक तो यही है :

तस्मादेक वर्णात्मकोऽखंडवाक्यस्फोटो वाचक इति सिद्धम्।[1]

तार्किकों ने भी स्फोट की चर्चा की है। वैयाकरणों का वर्ण स्फोट ही तार्किकों का पद स्फोट है।[2] इसी प्रकार वैयाकरणों का पद स्फोट ही तार्किकों का वाक्य स्फोट है।[3]

विस्तारभय से हम स्फोट के एक-एक प्रकार के स्वरूप की विवेचना नहीं कर रहे हैं। एतद्विषयक किसी भी ग्रंथ में इनकी विवेचना देखी जा सकती है।

---

१. वही, पृ० १६।
२. वही, पृ० २।
३. वही, पृ० ६।

उत्तर मीमांसा

१०
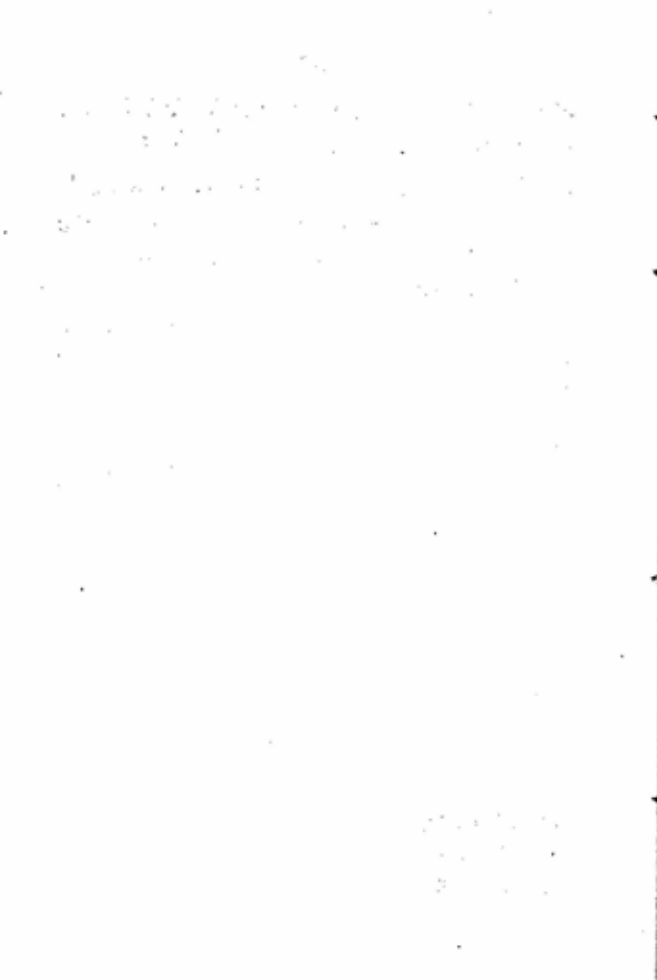
अर्थपरिवर्तन

§ ५४ अर्थतत्त्व की मीमांसा के अंतर्गत अब तक हमारा विवेच्य विषय 'अर्थ' था। अर्थ के विवेचन के प्रसंग में एतत् (अर्थ) संबंधी संभाव्य सूत्रों की संक्षिप्त विवेचना—विश्लेषण हमारा लक्ष्य रहा है। आगे हम 'अर्थपरिवर्तन' की मीमांसा की ओर प्रयत्नशील हो रहे हैं। अर्थपरिवर्तन क्यों होता है ? इस परिवर्तन के मूल में कौन-कौन से तत्त्व कार्य करते हैं ? उन्हीं पर हमें दृक्पात करना है।

व्यापक दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि भाषागत समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन अथवा विकास के मूल में (भाषा के) प्रयोक्ता के मन में प्रयत्नलाघव अथवा संक्षेप की प्रवृत्ति काम करती रहती है। थोड़े में ही कार्यसिद्धि हो जाय, कम प्रयत्न से ही अधिक से अधिक कह डाला जाय, बोलने में, अभिव्यक्ति में सुविधा हो—ये तत्त्व भाषाविकास के सभी क्षेत्रों में कार्य करते रहते हैं। ध्वनिपरिवर्तन अथवा विकास के क्षेत्र में तो ये सब तत्त्व प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने आते हैं। अर्थ-परिवर्तन अथवा विकास के क्षेत्र में भी प्रयत्नलाघव अथवा संक्षेप और सुविधा के तत्त्व किसी न किसी रूप में निहित हैं। किन्हीं क्षेत्रों में तो यह प्रवृत्ति स्थायीरूप से प्रभाव डालती हुई दिखाई पड़ सकती है। इस प्रवृत्ति के कारण ही कभी-कभी एक जातिवाचक संज्ञा, जिसे एक विशेष अर्थ में स्थित रहना चाहिए, इतने भिन्न अर्थ देती है कि उसके कई विशेष अर्थ हो जाते हैं और अंत में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वह एक विशेष अर्थग्रहण कर लेती है :

In some cases this tendency may perm-

anently affect the meaning of a common noun which has to serve so often instead of a specific name that at last it acquires a special signification.'[1]

एक उदाहरण देकर यह बात स्पष्ट की जाय। 'कॉर्न' (corn) का अर्थ इंगलैंड में 'ह्वीट' (wheat=गेहूँ), आयरलैंड में 'ओट' (oat=जई) और अमेरिका में 'मेज़' (maize=जुआर, मुट्टा) है। यहाँ हम देखते हैं कि अर्थसंबंधी (बुद्धिगत) प्रयत्नलाघव के कारण विभिन्न देशों में 'कॉर्न' को विभिन्न अर्थ दे दिया गया। 'ह्वीट', 'ओट', 'मेज़' न कह कर एक शब्द 'कॉर्न' द्वारा इन सभी का अर्थबोध करा देने की लाघव, संक्षेप, सुविधा की प्रवृत्ति यहाँ स्पष्टतः लक्षित हो रही है। 'ह्वीट', 'ओट', 'मेज़' का व्यवहार कौन करे! एक शब्द 'कॉर्न' द्वारा ही इन सभी के अर्थ को चलता कर दिया गया !!

ऊपर की विवेचना द्वारा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक ही शब्द को विभिन्न अर्थ दिया जा सकता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि विभिन्न शब्द को विभिन्न व्यक्ति, प्रदेश, देश विभिन्न अर्थ दे सकते अथवा दे देते हैं। अर्थपरिवर्तन के क्षेत्र में इस निष्कर्ष के आधार पर हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले (वाक्य से) अलग शब्दों के अर्थ अस्थिर—अनिश्चित रहते हैं, क्योंकि विभिन्न व्यक्ति उन्हें विभिन्न विचारों अथवा भावों से संयुक्त करते हैं। अर्थ की दृष्टि से शब्दों पर इस रूप में विचार करना चाहिए :

We need only consider what different ideas

1. Otto Jespersen: Language, p. 274.

are attached by different persons, to see the inexactness of separate words as expressions of thought.'

वाक्य से अलग शब्दों की इस स्थिति से हम परिचित हैं। इनके अर्थ का अस्थैर्य—अनिश्चय तब कम होता है जब ये वाक्य में अन्य शब्दों के साथ रखे जाते हैं; और, इस प्रकार इनका अर्थ सीमित किया जाता है; जब ये परिस्थिति अथवा प्रसंग, बल (accent) और स्वर के उतार-चढ़ाव द्वारा विश्लेषित होते हैं :

It is only when words are put together and 'modified', when they are expounded (by the circumstances or the context, or by stress and modulation of the voice), that we can interpret their meaning with much accuracy…[1]

अस्तु, शब्द के अर्थपरिवर्तन के कारणों अर्थात् परिस्थिति, प्रसंग, आदि की विवेचना हम यथाप्रसंग करेंगे। यहाँ हमारा अभीष्ट यही दिखाना है कि शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होते रहते हैं। उनके अर्थ स्थिर नहीं रहते। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा गया है कि साहित्य में अथवा सामान्य बातचीत में शब्द अपरिवर्तनीय विचारों का ठीक-ठीक चिह्न कभी होता ही नहीं है :

Whether in literature or in common talk, a

---

1. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 234.

word is never the exact sign of an unchangeable idea.'

तात्पर्य यह है कि शब्द परिवर्तनीय विचारों का ही चिह्न होता है। इस प्रकार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होता रहता है, यहाँ यही उपलब्धि हम करते हैं।

§ ५५ अर्थपरिवर्तन के क्षेत्र में मानवमन की प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियाँ भी कार्य करती रहती हैं। अर्थ-परिवर्तन में उसके मन की एक यह प्रवृत्ति भी काम करती है कि उसका मन अपने अनुभव के आधार पर किसी वस्तु के संबंध में अपनी धारणा स्थिर करता है। अनुभव द्वारा किसी वस्तु के संबंध में धारणा का स्थिरीकरण स्थिर अथवा स्थायी नहीं होता, क्योंकि किसी वस्तु के संबंध में उसका अनुभव परिवर्तित भी होता रहता है। इस अनुभव के परिवर्तन के कारण किसी वस्तु के संबंध में उसकी धारणा भी परिवर्तित होती है। अनुभव और किसी वस्तु की धारणा के परिवर्तन की इस प्रक्रियावश किसी वस्तु का जो अर्थ उसकी हृदय-मन-बुद्धि में स्थित रहता है वह भी परिवर्तित होता है। इस प्रकार वस्तु को अभिव्यक्त करनेवाले शब्द के अर्थ भी परिवर्तित अथवा विकसित होते रहते हैं। किसी वस्तुवाची एक शब्द का उसकी बुद्धि में कभी एक अर्थ रहता है और कभी दूसरा। निश्चय ही ऐसा होता है उसके अनुभव में परिवर्तन के कारण। 'कभी एक अर्थ रहता है और कभी दूसरा'—इसे यों भी कहा जा सकता है कि उसके मन में स्थित एक अर्थ के साथ दूसरा—अर्थ जुड़ जाता है, और यह प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। ग्रामनिवासी के मन में 'मकान' का अर्थ स्थिर रहता है। सामान्य शहर में जब वह 'मकान' देखता है तब 'मकान' का एक दूसरा अर्थ

'१ ब

उसके मन में बैठ जाता है। कलकत्ता, बंबई-जैसे बड़े-बड़े शहरों में जब वह 'मकान' देखता है तब 'मकान' का तीसरा अर्थ उसके मन में स्थित हो जाता है। इस प्रकार उसके अनुभव के आधार पर 'मकान' संबंधी उसकी धारणा के परिवर्तन के साथ-साथ 'मकान' के अर्थ में भी परिवर्तन हो उसकी बुद्धि में उस (मकान) का अर्थ बढ़ता अथवा जुड़ता जाता है। इस उदाहरण द्वारा हमारा तात्पर्य निश्चय ही स्पष्ट हुआ होगा।

बोध अथवा ज्ञान दो रूपों में हम प्राप्त करते हैं—परप्रत्यक्ष द्वारा और आत्मप्रत्यक्ष द्वारा। आत्मप्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त बोध अथवा ज्ञान हमारा अपना होता है, अतः वह हमारी हृदय-मन-बुद्धि पर अपेक्षाकृत गहरी छाप डालता है। स्वानुभव के आधार पर प्राप्त किसी वस्तु का अर्थ हमारे लिए प्रधान अथवा अधिक निकट होता है। जिसने 'नील गाय' को देखा है उसके मस्तिष्क में इसका अर्थ अधिक स्पष्ट होगा अपेक्षाकृत उस व्यक्ति के मस्तिष्क में इसके अर्थ के जिसने केवल इसकी वर्णना पढ़कर इसका एक अर्थ समझ लिया है।

§ ५६ उपर्युक्त मीमांसा द्वारा अर्थपरिवर्तन के क्षेत्र में मानव-मन की प्रवृत्तियों के कार्य की उपलब्धि के साथ ही हमें इस तथ्य की भी उपलब्धि होती है कि शब्द का अर्थ अनिश्चित होता है। अर्थ अनिश्चित क्यों होता है ? इस प्रश्न का संबंध भी एक प्रकार से मानवमन से ही है। हमारे सभी ज्ञान इंद्रियप्रत्यक्ष होते हैं। इंद्रियों को दो श्रेणियों में रखा गया है—बाह्येंद्रिय और अंतरिंद्रिय। बाह्येंद्रियों के अंतर्गत पंचज्ञानेंद्रियाँ आती हैं और अंतरिंद्रिय के अंतर्गत मन माना गया है। देखा यह जाता है कि बाह्येंद्रिय द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान में अनिश्चय की मात्रा अत्यल्प रहती है। इनके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान, यों कहा जाय कि, निश्चित रहता है। किंतु अंतरिंद्रिय अथवा मन

द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान में अनिश्चय हम बराबर देखते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'ईश्वर' होगा। विभिन्न संप्रदायवालों के लिए 'ईश्वर' का अर्थ विभिन्न है। इसका कारण यह है कि वह (ईश्वर) वस्तुतः बाह्येंद्रियप्रत्यक्ष नहीं, अंतरिंद्रिय प्रत्यक्ष हो सकता है। इस विवेचना द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जिन वस्तुओं का बाह्येंद्रियप्रत्यक्ष ज्ञान हमें होता है उनका अर्थ हमारे लिए निश्चित तथा जिन वस्तुओं का अंतरिंद्रियप्रत्यक्ष ज्ञान होता है उनका अर्थ हमारे लिए अनिश्चित होता है। इस प्रकार अर्थ के अनिश्चय का संबंध भी मन से ही है।

§ ५७ अब तक हम अर्थपरिवर्तन के ऐसे कारणों को देखते रहे हैं जिनका संबंध भाषा के प्रयोक्ता मानव के मन से घनिष्ठ है। विवेचना करके देखा गया है कि अर्थपरिवर्तन के कुछ कारण ऐसे हैं जो स्वयं भाषा की प्रकृति में ही विद्यमान हैं। जैसे, भाषा की इसके लिए बराबर निंदा होती है कि उसके शब्द तथा इस (शब्द) के द्वारा बोध्य वस्तु के बीच अनुपात का निरंतर अभाव रहता है, जिसके कारण शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति कभी अधिक विस्तृत तथा कभी अधिक संकुचित हो जाती है :

......Our languages are condemned to a perpetual lack of proportion between the word and the thing. Expression is sometimes too wide, sometimes too narrow.[1]

अब, प्रश्न यह उठता है कि भाषाप्रयोग के समय प्रयोक्ता को शब्द तथा इसके द्वारा बोध्य वस्तु के बीच आनुपातिक अभाव का बोध होता क्यों नहीं? दोनों के बीच सठीकता का बोध उसे क्यों नहीं होता? ऐसा इसलिए नहीं होता कि अभिव्यक्ति स्वयं परिस्थिति, स्थान,

---

१ Michel Breal, Semantics, P. 106.

अवसर और बातचीत का स्पष्ट लक्ष्य के अनुसार बोध्य वस्तु से मेल बैठा लेती है :

we do not notice this want of accuracy because, for the speaker, expression adopts itself to the thing through the circumstances, the place, the movement, and the obvious intention of the discourse.[1]

ऐसा इसलिए भी होता है कि संपूर्ण 'भाषा' के अस्तित्व में आधा हिस्सा रखनेवाले श्रोता का ध्यान शब्द के यथार्थ स्वरूप पर न जाकर इस (शब्द) में निहित विचार पर सीधे जाता है, और इस प्रकार वक्ता के लक्ष्य के अनुसार शब्द के यथार्थ स्वरूप को वह (ध्यान) विस्तृत अथवा संकुचित कर देता है :

At the same time the attention of the hearer, who counts for half in all Language, goes straight to the thought behind the word, without dwelling on its literal bearing, and so restricts or extends according to the intention of the speaker.[1]

§ ५८ सभ्यता-संस्कृति के विकास, इनके परिवर्तन, एक देश की सभ्यता-संस्कृति से अन्य देश की सभ्यता-संस्कृति के मेल-मिलाप, समाज तथा जीवन में बड़ी-बड़ी घटना-दुर्घटना, नवजागरण, औद्योगिक क्रांति, आदि की स्थितियों में जैसे समाज तथा जीवन में विकास अथवा परिवर्तन आता है वैसे ही भाषा में भी विकास अथवा परिवर्तन आता है; और, ऐसी स्थिति में अर्थ में भी विकास अथवा परिवर्तन

१. वही।

होता देखा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थविकास, अर्थ-परिवर्तन के जैसे मानसिक तथा स्वयं भाषा में स्थित कारण होते हैं वैसे ही बाह्य कारण भी होते हैं, अर्थात् अर्थविकास—परिवर्तन–के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, औद्योगिक, आदि कारण भी होते हैं। जिस देश अथवा समाज में उक्त स्थितियों का अथवा यों कहें कि सभ्यता-संस्कृति का विकास—परिवर्तन जितना अधिक और जितनी तीव्र गति से होता है उस देश अथवा समाज में अर्थपरिवर्तन—विकास भी उतना ही अधिक और उतनी ही तीव्र गति से होता देखा जाता है। इसीलिए भाषाशास्त्र के मनीषियों का मत है कि प्राचीन काल की अपेक्षा और यहाँ तक कि उन युगों की अपेक्षा, जो अभी बीते हैं, हमारे आधुनिक समाजों में शब्द के अर्थ अधिक शीघ्रता से परिवर्तित होते हैं। इस परिवर्तन का कारण वे बतलाते हैं—दलीय युद्ध, वर्गों के मेल-मिलाप, स्वार्थों तथा विचारों के संघर्ष, महत्त्वा-कांक्षाओं के वैविध्य, और अभिरुचियों का प्रभाव :

In our modern societies, the meaning of words is more quickly modified than was usual in antiquity and even in the generations which immediately preceded us. Herein we see the effect of party warfare, of mingling of classes, of the strife of interests and of opinions, of the diversity of aspirations and of tastes.[1]

इस विवेचना का निष्कर्ष यह है कि अर्थपरिवर्तन द्वारा सामाजिक

1. वही, पृ० १०५।

प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं। ध्वनिपरिवर्तन द्वारा वे उतनी अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होतीं :

Social tendencies appear more clearly in semantics than in phonetic change.[१]

अर्थपरिवर्तन प्राचीन कालीन जीवन के संबंध में हमें अवगत कराता है। ऐसा इसलिए होता है कि यह व्यावहारिक वस्तुओं के बीच के संबंध को अभिव्यक्त करता है :

…a change of meaning may imply a connection between practical things and thereby throw light on the life of the older times.[२]

§ ५६ किसी शब्द के प्रचलित अर्थ में कोई व्यक्ति जान-बूझ कर अथवा अनजाने कोई नया अर्थ जोड़ता है; और, इस नए अर्थ के संबंध में समाज अथवा एक वर्ग स्वीकृति दे देता है। ऐसी स्थिति में ही अर्थपरिवर्तन का रूप सामने आता है। ध्वनिपरिवर्तन के संबंध में भी यही कहा जा सकता है :

In the case of each semantic shift, as in the case of each sound-shift or change in the grammatical pattern, there is usually an innovation made by an individual, deliberately or accidently, and accepted by the group.[३]

इसे यों भी कहा जा सकता है कि जब किसी शब्द के कोशसंबंधी अर्थ में कोई नवीन अर्थ जोड़ा जाता है, और इस प्रकार उसके

---

१. Margaret Schlauch : The Gift of Tongues, p. 117.

२. Leonard Bloomfield : Language, p. 428.

३. Mario pei : The Story of Language, p. 147.

कोशीय अर्थ में परिवर्तन होता है, तब अर्थपरिवर्तन का स्वरूप खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में शब्द के रूप की व्याकरणिक क्रिया में कोई परिवर्तन नहीं होता :

Innovations which change the lexical meaning rather than the grammatical function of a form are called as 'change of meaning' or 'semantic change.'[1]

अर्थपरिवर्तन के अंतर्बाह्य कारणों तथा अर्थपरिवर्तन के स्वरूप का कुछ आभास इस विवेचना द्वारा मिलता है। हमने देखा है कि स्थूलतः भाषापरिवर्तन के नियम ही अर्थपरिवर्तन के क्षेत्र में भी कार्य करते हैं। हमने यह भी देखा है कि जैसे भाषा एक सामाजिक स्वीकृति है वैसे अर्थविकास अथवा अर्थपरिवर्तन भी एक सामाजिक स्वीकृति है। यहीं यह कहना भी अतिप्रसंग न होगा कि अर्थपरिवर्तन अथवा अर्थविकास कब से आरंभ हुआ, यह निश्चित करना कठिन है। यह वैसे ही कठिन है जैसे यह निश्चित करना कठिन है कि भाषा का परिवर्तन अथवा विकास कब से आरंभ हुआ। इतना कहा जा सकता है कि अर्थपरिवर्तन का क्रम अति प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। इसे उतने ही प्राचीन काल से चला आता हुआ समझना चाहिए जितने प्राचीन काल से भाषा का विकास चला आता हुआ समझा जा सकता है।

---

१. Leonard Bloomfield : Language. p. 425.

११

अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया

§ ६० अर्थ क्यों बदलता है, इसकी कुछ विवेचना हमने ऊपर की है। अब द्रष्टव्य यह है कि अर्थ कैसे बदलता है? अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया क्या है? अब यह देखना चाहिए। हम यह जानते हैं कि विभिन्न परिस्थितियों के कारण एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। हम यह भी जानते हैं कि यदि एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते अथवा मिलते हैं तो भी उस शब्द का एक प्रधान अथवा मूल अर्थ (Primary or Basic meaning) जरूर रहता है, जिसके आधार पर ही एकाधिक गौण अर्थ (Secondary or Marginal meaning) परिस्थिति के अनुसार हो जाते हैं। देखना यह है कि प्रधान अर्थ से गौण अर्थ होने की क्या प्रक्रिया है, कैसे प्रधान अर्थ से गौण अर्थ निकलते हैं?

प्राचीन भारतीय भाषातात्त्विकों तथा नवीन पश्चिमी भाषातात्त्विकों ने भी इस प्रसंग में अपनी-अपनी मान्यताएँ उपस्थित की हैं। प्राचीन भारतीय भाषातात्त्विकों की मीमांसा हम पहले देख लें। ऊपर हमने शब्द के मुख्य अर्थ और गौण अर्थ का उल्लेख किया है। इन दो प्रकार के अर्थों का स्वरूप क्या है? जिस शब्द के शुद्ध उच्चारण से उस (शब्द) के अपने प्रसिद्ध अर्थ का बोध होता है वह (अर्थ)

उस (शब्द) का मुख्य अर्थ होता है। ऐसे शब्द को मुख्यार्थ शब्द कह सकते हैं :

शुद्धस्योच्चारणे स्वार्थः प्रसिद्धो यस्य गम्यते।
स मुख्य इति विज्ञेयो रूपमात्र निबंधनः॥ २-२६७[1]

जो शब्द जब प्रकरण, आदि के अनुसार प्रयुक्त होता है तब प्रकरण, आदि के अनुसार उसमें जो अर्थ मिलता है वह (अर्थ) अप्रसिद्ध अथवा गौण अर्थ होता है। और ऐसा शब्द गौणार्थ शब्द कहा जाता है :

यस्त्वन्यस्य प्रयोगेण यत्नादिव नियुज्यते।
तमप्रसिद्धं मन्यन्ते गौणार्थाभिनिवेशिनम्॥ २-२६८[1]

इस संबंध में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने और भी विवेचना की है और कहा है कि अपने अर्थ में प्रयुक्त होकर जो जिस अर्थ को ग्रहण करता है वह (अर्थ) निमित्त और मुख्य होता है। निमित्ती गौण अर्थ कहलाता है :

स्वार्थे प्रवर्तमानस्य यस्यार्थं योऽवलम्बते।
निमित्तं तत्र मुख्यं स्याद् निमित्ती गौण इष्यते॥ २-२६९[1]

इस कारिका की टीका करते हुए पुण्यराज कहते हैं कि जो वाहीक के अर्थ में प्रयुक्त होकर अपने अर्थ में सास्नादि में वर्तमान गो शब्द के संबंधी अर्थ को निमित्त भाव से अवलंबन करता है, उस स्थिति में वह मुख्य अर्थ निमित्त होता है। गौण अर्थ को निमित्ती कहते हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जहाँ शब्द स्थिर होता है वहाँ मुख्य अर्थ समझना चाहिए और जहाँ वह शब्द अस्थिर होता है वहाँ गौण अर्थ समझना चाहिए :

यो वाहीके प्रवर्तमानः स्वार्थे सास्नादिमति वर्तमानस्य गो

---

1. वाक्यपदीयम्।

शब्दस्य संबंधिनमर्थं निमित्तत्वेनावलम्बते तत्रविषये मुख्योऽर्थो निमित्तं स्यात् । गौणस्तु निमित्तीत्युच्यते । एतदुक्तं भवति । यत्राऽस्खलद्गतिः शब्दस्तत्र मुख्योऽर्थः स्खलद्गतिरथे तु गौणार्थतेति बोद्धव्यम् ।[1]

इस मीमांसा का निष्कर्ष यह है कि मुख्य, प्रधान, मूल अर्थ (Primary or Basic meaning) की स्थिति में शब्द अपने अर्थ—रूढ़ अर्थ—में स्थित रहता है । गौण अर्थ (Secondary or Marginal meaning) की स्थिति में वह (शब्द) अपने रूढ़ अर्थ में स्थित न रह कर अन्य अर्थ भी देता है ।

§ ६१ ऊपर हमने देखा है कि शब्द के माध्यम से ही अर्थ की मीमांसा की गई है । शब्द पर ही और विचार करने से अर्थ की मीमांसा और स्पष्ट होगी । शब्द चार प्रकार के माने गए हैं—रूढ़, लक्षक, योगरूढ़, यौगिक । कुछ लोग रूढ़यौगिक शब्द भी मानते हैं । इस प्रकार शब्द के पाँच प्रकार स्थिर होते हैं :

रूढ़ञ्च लक्षकञ्चैव योगरूढञ्च यौगिकम् ।
तच्चतुर्धा, परै रूढ़यौगिकं मन्यतेऽधिकम् ॥ १६[2]

कुछ शब्द अर्थविशेष में रूढ़ हो जाते हैं, स्थिर हो जाते हैं, उनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता, ऐसे शब्द रूढ़ कहे जाते हैं । जैसे, गो, प्रभृति शब्द । शब्द के अर्थ के संबंध में हम विवेचन देख चुके हैं । अर्थ के संबंध में नैयायिकों का मत भी हमने देखा है, जो मानते हैं कि संकेत अथवा शक्ति द्वारा किसी शब्द का अर्थ स्थिर कर दिया जाता है । यह संकेत अथवा शक्ति ईश्वर की इच्छा है । संकेत द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि 'गो' का अर्थ होगा सींग, खुर,

---

१. वही ।

२. शब्दशक्तिप्रकाशिका ।

आदि युक्त एक जंतु विशेष। इस संबंध में एक दूसरी दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। यह दृष्टि है, किसी शब्द का किसी अर्थविशेष में लोक में प्रचलन और इस प्रकार उसके अर्थ का स्थिर हो जाना। ऐसी स्थिति में शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ किया जाता है। जैसे—'गो' शब्द सं० 'गम्' धातु से बना है, और इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'गमनशील'। 'गमनशील' तो बहुत सी चीजें हैं, उन सबको तो 'गो' नहीं कहते हैं। 'गो' तो जंतु विशेष को ही कहते हैं। ऐसे ही व्युत्पत्तिमूलक अर्थ और लोकव्यावहारिक अर्थ में वैपरीत्य के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। तात्पर्य यह कि शब्दों का अर्थ प्रधानतः लोक ही स्थिर करता है। ऐसा करते हुए वह व्युत्पत्ति, आदि की परवाह नहीं करता।

लक्षक शब्द द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होता है। एक उदाहरण लेकर इस संबंध में विचार किया जाय। एक प्रसिद्ध उदाहरण है—'गंगायां घोषः'—'गंगा में गांव'। इस उदाहरण में प्रयुक्त शब्दों के रूढ़ अर्थों को लें, तो अनर्थ की संभावना है। अतः यहाँ प्रधानतः साहित्यशास्त्र में मीमांसित लक्षणा नामक शब्दशक्ति द्वारा अर्थ करना पड़ेगा, तब अनर्थ की संभावना नहीं रहेगी और इसका अर्थ होगा—'गंगातीरवर्ती गांव।' यहाँ हम देखते हैं कि रूढ़ार्थबोधक शब्दों के माध्यम से लक्ष्यार्थ की प्राप्ति होती है। ऐसे शब्दों को लक्षक शब्द कहा गया है।

योगरूढ़ शब्द होता तो यौगिक है, किंतु किसी अर्थविशेष में रूढ़ हो जाता है। जैसे—'पंकज' (पंक+ज=पंक से उत्पन्न) शब्द। पंक से तो बहुत-सी चीजें उत्पन्न होती हैं, मगर यह शब्द 'कमल' के ही अर्थ में रूढ़ हो गया है। यहाँ हम देखते कि इसके व्युत्पत्तिमूलक अनेक अर्थ हो सकते हैं, परंतु लोकव्यवहार में इसे एक ही अर्थ में प्रचलित कर उस (प्रचलित अर्थ) को मान्यता दे दी गई है।

यौगिक शब्द अपने यौगिक अर्थ को व्यक्त करते हैं। यथा, 'पाचक' शब्द, जिसका अर्थ है—'पकानेवाला'।

रूढ़यौगिक शब्द कभी अपने रूढ़ अर्थ का बोध कराते हैं और कभी अपने यौगिक अर्थ का। समुदाय शक्तिवश रूढ़यौगिक शब्द अपने रूढ़ अर्थ का बोध कराते हैं और अपनी अवयववृत्ति से—अपने अवयव के अर्थ के अनुसार—यौगिक अर्थ का। 'मंडप' शब्द का उदाहरण लिया जाय। 'मंडप' का रूढ़ार्थ है—'शुभ अवसर, उत्सव, आदि के लिए बांस, कपड़े आदि से छाकर बनाया गया स्थान'। इसका यौगिक अर्थ है 'मांड पीनेवाला (मंड+प)'।

इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यहाँ भी मुख्यार्थ से गौण अर्थ निकलते हैं। शब्द के जो उपर्युक्त प्रकार माने गए हैं उनके उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है। लक्षक, योगरूढ़ शब्दों द्वारा तो स्पष्टतः ज्ञात होता है कि शब्द के प्रधान अर्थ से दूसरे गौण अर्थ निकलते हैं। रूढ़ शब्दों में भी अर्थ लोकव्यवहार द्वारा स्थिर कर दिया जाता है, वैसे उनका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ ही अगर लिया जाय तो अनेक दूसरे गौण अर्थ भी होंगे। ध्यान में रखने की बात यह है कि सभी शब्दों का मुख्य अथवा गौण अर्थ स्थिर करता है लोक ही। सभी प्रकार के अर्थों के स्थिरीकरण में इस लोकतत्त्व की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस मीमांसा द्वारा भी हम मुख्यार्थ से गौणार्थ की प्राप्ति की प्रक्रिया से अवगत होते हैं।

§ ९२ प्रधान, मूल, मुख्य अर्थ से गौण अर्थ के निकलने की प्रक्रिया अथवा अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया के संबंध में और भी विचार करते हुए प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने कहा है कि ऐसा चार प्रकार से होता है—तात्स्थ्य, ताद्धर्म्य, तत्सामीप्य, तत्साहचर्य से :

चतुर्भिः प्रकारैस्तस्मिन् 'सः' इत्येतद्भवति—तात्स्थ्यात्, ताद्धर्म्यात्, तत्सामीप्यात्, तत्साहचर्यादिति । ४-१-२[1]

तात्स्थ्य का अर्थ है 'वहाँ रहने की क्रिया'। यहाँ इसका तात्पर्य है किसी वस्तु का किसी वस्तु पर रहना। इसे यों भी कहा जा सकता है कि किसी आधार वस्तु पर किसी आधेय वस्तु का रहना। कहते हैं कि ऐसी स्थिति में मुख्यार्थ से गौणार्थ निकलता है। उदाहरण उपस्थित करते हैं कि 'मंच हँसते हैं', 'पर्वत जलाया जाता है' :

तात्स्थ्यात्तावत्-मंचा हसंति, गिरिर्दह्यते ।[1]

'मंच' निर्जीव पदार्थ हैं, वे क्या हँसेंगे, अतः यहाँ इसका तात्पर्य है 'मंचस्थित व्यक्ति हँसते हैं'। इसी प्रकार 'पर्वत' भी निर्जीव है, उसे जलाया जाय तो उसका क्या बनता-बिगड़ता है, मगर यहाँ इसका तात्पर्य है—'पर्वतस्थित वृक्ष, गुल्म, आदि जलाए जाते हैं'।

ताद्धर्म्य का अर्थ है उसी के समान धर्म होने का भाव; अर्थात् दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं-व्यक्तियों में समान धर्म के होने का भाव। ऐसी स्थिति में भी मुख्यार्थ से गौणार्थ निकलता हुआ देखा जाता है। 'जटी के आने पर ब्रह्मदत्त आया' ऐसा कहा गया। यहाँ 'ब्रह्मदत्त के जो कार्य हैं जटी के भी उन्हीं कार्यों के करने पर जटी को ब्रह्मदत्त कहते हैं' :

ताद्धर्म्यात्—जटिनं यान्तं ब्रह्मदत्त इत्याह। ब्रह्मदत्त यानि कार्याणि जटिन्यपि तानि क्रियंते इत्यतो जटी ब्रह्मदत्त इत्युच्यते ॥[1]

यहाँ जटी तथा ब्रह्मदत्त में धर्मगत, कार्यगत समानता है, अतः जटी को ब्रह्मदत्त कहा जाता है।

तत्सामीप्य का अर्थ है उससे सामीप्य का होना, अर्थात् दो अथवा

---

1. महाभाष्य ।

दो से अधिक वस्तुओं-व्यक्तियों में समीपता का होना। ऐसा होने पर भी मुख्यार्थ से गौण अर्थ का बोध होता हुआ दिखाई पड़ता है। इसके उदाहरण के लिए 'गंगा में गांव', 'कुएँ में गर्गकुल' को उपस्थित किया गया है :

तत्सामीप्याद्—गंगायां घोषः, कूपे गर्गकुलम्।[1]

ऐसे उदाहरण की मीमांसा हम पहले कर चुके हैं।

तत्साहचर्य का अर्थ है उससे साहचर्य अर्थात् किन्हीं वस्तुओं-व्यक्तियों का साथ-साथ रहना। ऐसी स्थिति में भी मुख्यार्थ गौणार्थ देता है। 'भालों को भीतर भेजो, लाठियों को भीतर भेजो' का तात्पर्य यह है कि 'भालाधारी, लाठीधारी व्यक्तियों को भीतर भेजो' :

तत्साहचर्यात्—कुंतान् प्रवेशय, यष्टीः प्रवेशयेति।[1]

ऐसे प्रसंगों के संबंध में अन्य प्राचीन भारतीय भाषातात्त्विकों ने भी विचार किया है और कहा है कि ऐसी स्थिति में शब्द तो अपने अर्थ में ही स्थित रहता है, केवल अर्थ ही विपर्यस्त होता है, बदलता है :

गोत्वानुषंगो वाहीके निमित्तात्कैश्चिदिष्यते।
अर्थ मात्रं विपर्यस्तं शब्दः स्वार्थे व्यवस्थितः॥[2] २-२५७

इसका तात्पर्य यही है कि मुख्यार्थ तो ज्यों का त्यों बना रहता है, परिवर्तित होता है उससे निकलनेवाला केवल गौणार्थ। कहने की आवश्यकता नहीं कि शब्द की लक्षणाशक्ति के द्वारा ही ऐसे प्रसंगों में गौणार्थ प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थपरिवर्तन कैसे होता है, कैसे प्रधान, मूल, मुख्य अर्थों (Primary, Basic or Central meani-

---

१. वही।

२. वाक्यपदीयम्।

ngs) द्वारा गौणार्थ (Secondary or Marginal meanings) निकलते हैं, अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया क्या है ?

§ ६३ अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया के संबंध में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की उपलब्धि की चर्चा की गई है। आधुनिक पश्चिमी भाषातात्त्विकों की एतत्संबंधी मीमांसा पर दृष्टिपात करने से भी हम समान उपलब्धि के दर्शन करते हैं। उनका भी यही मत है कि शब्द के अर्थ उनके मूल अथवा प्रधान अर्थों के आधार पर विकसित हुए हैं, जैसे शब्दों के मूल रूपों के आधार पर ही उनके अन्य रूप विकसित होते हैं :

Generally speaking, 'the connotations of individual words developed from basal meanings just as the forms of words evolve from the base-forms'.[१]

प्रधान अर्थ से गौण अर्थ निकलने में परिस्थिति अथवा प्रसंग का भी बड़ा महत्त्व है। कहा गया है कि परिस्थितियाँ, जिनमें किसी शब्द का प्रयोग होता है, भी बहुधा शब्द के प्रधान तत्त्व अथवा अर्थ के परिवर्तन में मुख्य रूप से सहायक होती हैं :

The circumstances under which a word is used very often lead to change the predominant element in its meaning.[२]

अर्थ के दो प्रकारों को स्वीकार करते हुए अन्य मनीषियों ने भी इस क्षेत्र में प्रसंग के महत्त्व को स्वीकार किया है। ऐसे लोग अर्थ के

---

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 251

२. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, pp. 87–8.

प्रधान (Normal or Central) और गौण (Marginal, Metaphorical or Transferred) प्रकार मानते हैं। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्री भी अर्थ के ये ही प्रकार स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि प्रधान अर्थ इस रूप में स्वीकार किया जाता है कि हम प्रधान अर्थ के एक रूप को समझ लेते हैं। ऐसा हम तब तक करते रहते हैं जब तक व्यावहारिक परिस्थिति की कोई विशेषता हमें (इस प्रधान अर्थ में) गौण अर्थ (Transferred meaning) देखने को बाध्य न करे :

The remarkable thing about these variant meanings is our assurance and our agreement in viewing one of the meanings as normal (or central) and the others, as marginal (metaphoric or transferred). The central meaning is favoured in the sense that we understand a form (that is, respond to it) in the central meaning unless some feature of the practical situation forces us to look to a transferred meaning.[१]

विदेशी भाषाशास्त्रियों ने भी अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया पर विचार किया है। उन लोगों ने भी विचार किया है कि प्रधान अर्थ से गौण अर्थ कैसे हो जाता है? उनका कथन है कि संकुल विचार (Complex idea) के एक तत्व पर जोर इतना अधिक हो जाता है कि अन्य तत्व भुला दिए जाते हैं :

The emphasis on one element of a complex

१. Leonard Bloomfield : Language, p. 149.

idea may be so strong that the other elements are forgotten.[1]

तात्पर्य यह कि किसी शब्द के विभिन्न अर्थों में से एक अर्थ इतना अधिक प्रधान हो जाता है कि उसके अन्य अर्थ भुला दिए जाते हैं; और उस एक अर्थ का ही प्रचलन हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रधान अर्थ से गौण अर्थ निकल कर वही (गौण अर्थ ही) समय पाकर प्रधान हो जाता है। इसका एक उदाहरण लिया जाय। अँगरेजी शब्द 'नेव' (Knave) और जर्मन शब्द नेब' (Knabe) का मूल एक ही है। इसका एक समय प्रधान अर्थ था 'लड़का' (Boy)। बहुत से 'लड़के' नौकर-चाकर के रूप में काम करते थे। ऐसे 'लड़कों' में से कुछ 'दुष्ट, बदमाश' भी होते रहे होंगे। इनके 'दुष्ट, बदमाश' होने के कारण इस शब्द के साथ 'दुष्ट, बदमाश' का तत्त्व इतना अधिक जुड़ गया कि इस शब्द का अर्थ 'लड़का' से 'दुष्ट, बदमाश' हो गया। आजकल इस शब्द का यही अर्थ प्रचलित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल अर्थ से गौण अर्थ निकलकर परि-स्थितिवश वही (गौण अर्थ) प्रधान अर्थ हो जाता है।

प्रधान और गौण अर्थ को दृष्टिपथ में रखकर अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया के रूप पर मीमांसा की ओर विदेशों में सर्वप्रथम दृष्टि गई जर्मन भाषाशास्त्री हर्मान पाउल (Hermann Paul) की। इन दोनों प्रकार के अर्थों के अन्योन्याश्रय की विवेचना करते हुए उन्होंने कहा कि कभी गौण अर्थ आकस्मिक होते हैं, क्योंकि गौण अर्थ प्रधान अर्थों से विशेषतः इसलिए भिन्न होते हैं कि हम गौण अर्थ को केवल तभी स्वीकार करते हैं जब कोई विशेष परिस्थिति प्रधान अर्थ के ग्रहण को

---

१. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 86.

असंभव बना देती है। इसी प्रकार प्रधान अर्थ भी तब आकस्मिक होते हैं जब परिस्थिति उस प्रधान अर्थ के लिए आदर्श परिस्थिति से भिन्न होती है, और यह आदर्श परिस्थिति शब्द के रूप के अर्थ के संपूर्ण विस्तार से मेल खाती है :

All marginal meanings are occasional,-for-as Paul showed—marginal meanings differ from central meanings precisely by the fact that we respond to a marginal meaning only when some special circumstance makes the central meaning impossible. Central meanings are occasional whenever the situation differs from the ideal situation that matches the whole extent of a form's meaning.[1]

अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया के संबंध में संक्षेपतः हमने विचार किया है। इस विचार में हमने भारतीय तथा विदेशी मनीषियों की एतत्संबंधी धारणाओं में साम्य की ओर भी संकेत किया है। इससे प्रकट होता है कि दोनों वर्ग के मनीषियों ने इस प्रक्रिया के मूल में प्रायः समान तत्त्व स्वीकार किए हैं।

———

१. Leonard Bloomfield : Language, p. 431.

१२

अर्थपरिवर्तन के कारण

§ ६४ अर्थपरिवर्तन के कारण निर्धारित करना—यह निर्धारित करना कि अमुक-अमुक कारणों – नियमों द्वारा अर्थपरिवर्तन होता है—बड़ा कठिन है। इस कठिनाई का कारण भी है। हमने अनेक अवस्थाओं में, अनेक रूपों में यह देखा है कि अर्थतत्व मानव के मन को लेकर चलता है। मानवमन बड़ा दुर्गम है। ऐसी स्थिति में मन की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा घटित अर्थपरिवर्तन के संबंध में कोई निश्चित कारण कोई निश्चित नियम—निर्धारित करना कठिन होगा ही। अर्थविस्तार, अर्थसंकोच, अर्थप्रस्फोट, अर्थारोप में उनका कोई एक नियम ही लागू होता है, यह नहीं कहा जा सकता। अर्थप्रस्फोट में अर्थविस्तार, अर्थसंकोच भी काम कर सकते हैं, और करते हैं; तब, अंत में हमको बोध होता है कि अमुक शब्द के अर्थपरिवर्तन में अर्थ-प्रस्फोट का नियम काम कर रहा है। अर्थपरिवर्तन धारण किए हुए शब्द का जो अर्थ हमारे विचार के अति निकट रहता है, और अंत में उसमें अर्थपरिवर्तन का जो नियम स्पष्ट रूप से लागू होता दिखाई पड़ता है उसी नियम के अंतर्गत हम उस शब्द को रख देते हैं। किंतु वह अर्थ अर्थपरिवर्तन के अन्य नियमों को पार करता हुआ भी अंत में हमारे द्वारा निर्धारित किसी एक नियम के अंतर्गत आ सकता है—आता है। जब अर्थपरिर्तन में इतनी संकुलता (Complexity) है तब अर्थ-परिवर्तन के निश्चित कारणों—नियमों को निर्धारित करने में भी कठिनता उपस्थित होगी ही।

अर्थपरिवर्तन के कारण—नियम—निर्धारित करने में और भी कठिनाइयाँ हैं। अर्थपरिवर्तन में अंतर्बाह्य—मानसिक, सामाजिक, आदि—सभी कारण काम करते हुए देखे जाते हैं। एक शब्द के अर्थपरिवर्तन में मानसिक कारण ही काम नहीं कर सकते, सामाजिक कारण भी काम कर सकते हैं, अथवा सामाजिक कारण ही काम नहीं कर सकते, मानसिक कारण भी काम कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में भी यह कैसे कहा जाय कि अर्थपरिवर्तन के कारण निर्धारित करना कठिन नहीं है। इसके अतिरिक्त अर्थपरिवर्तन अंतर्बाह्य इतने कारणों से होता है कि संख्याओं अथवा श्रेणियों के माध्यम से उनको निर्दिष्ट करना उचित नहीं जान पड़ता। संख्याएँ अथवा श्रेणियाँ तो सीमा निर्धारित कर देती हैं, और कारण हैं बहुत। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि बहुत से कारण हमसे अदृश्य हों। निष्कर्ष यह कि अर्थपरिवर्तन के कारणों—नियमों को संख्याओं अथवा श्रेणियों में रखना कठिन है।

अर्थपरिवर्तन के कारण—नियम निर्धारित करने में विभिन्न संभावित कठिनाइयों की विवेचना ऊपर की गई है। भाषाशास्त्रियों की दृष्टि भी ऐसी कठिनाइयों की ओर गई है। इसीलिए एफ० जी० टकर (F. G. Tucker) ने कहा है कि अर्थपरिवर्तन के नियम अभी तक ढूँढ़े नहीं गए हैं, और संभवतः वे अगवेषणीय हैं :

Laws of meaning-change are not yet discovered and are probably undiscoverable.[१]

§ ६५. फिर भी अर्थपरिवर्तन के विभिन्न रूपों को दृष्टिपथ में रखकर इसके कारणों अथवा नियमों को स्थूलतः निर्धारित करने की चेष्टा की गई है। अर्थात् यह निर्धारित करने की चेष्टा की गई है कि

१. Introduction to Natural History of Language, p. 373.

अर्थपरिवर्तन किन-किन परिस्थितियों में देखा जाता है।[1] इस संबंध में टकर (F. G. Tucker) के मत के आधार पर कुछ कारणों, नियमों अथवा परिस्थितियों का उल्लेख हम कर रहे हैं :

क. आरंभ में प्रयुक्त एक शब्द के अर्थ में अनिश्चित विस्तार होता है, जो इसके प्रयोग की विविधता का कारण बनता है।

ख. किसी वस्तु का एक नाम रखा जाता है। नाम रखने का कारण होता है उस (वस्तु) में एक तत्व का प्राधान्य। इस (प्राधान्य) के कारण नाम का अधिकतर विशेष व्यवहार उस तत्व के लिए होता है।

ग. विचार अथवा भाव के स्वाभाविक संपर्क के कारण अचेतन रूप से गौण अर्थ का संग्रहण हो जाता है, इससे उस गौण अर्थ का क्रमिक आरोप अथवा विस्तार होता है।

घ. शब्दों के आलंकारिक प्रयोग की प्रचेष्टा के कारण उनका विस्तार होता है।

ङ. अभिव्यक्तिगत भावनात्मक बल (Emphasis) के कारण एक शब्द अथवा मुहावरे का दुष्प्रयोग उसके वास्तविक अर्थ की अपेक्षा विस्तृत अथवा संकुचित अर्थ में होता है।

च. अशुभ के लिए शुभ का प्रयोग (Euphemism) और व्यंग्यप्रयोग, अथवा अशोभन या कम शिष्ट शब्दों अथवा मुहावरों के निवारण की इच्छा के कारण अशुभ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शुभवाची शब्द अथवा मुहावरे नूतन अर्थ ग्रहण करते हैं।

छ. शब्दप्रयोग में भूल अथवा दुर्बोधता के कारण अन्य अनिश्चय का होना।

---

1. वही, पृ० २८०-१।

तारापुरवाला (I. J. S. Taraporewala)[1] ने टकर द्वारा उल्लिखित इन कारणों को काफी सरल करके इस प्रकार रखा है :

(क) अभिव्यक्ति की स्पष्टता की प्रचेष्टा के परिणामस्वरूप आलंकारिक भाषा तथा रूपक का प्रयोग ।

(ख) परिवेश (Environment) का परिवर्तन, जो (१) भौगोलिक, (२) सामाजिक अथवा (३) भौतिक हो सकता है ।

(ग) व्यक्तियों के संबोधन में नम्रता ।

(घ) अशुभ के लिए शुभ का प्रयोग ।

(ङ) व्यंग्य ।

(च) भावनात्मक बल ।

(छ) एक वर्ग के लिए एक व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रयोग का प्रचलन ।

(ज) भूल के कारण शब्दों के प्रयोग में अनिश्चय ।

(झ) स्वयं शब्दों के अर्थ में अनिश्चयता ।

(ञ) व्यक्तिव्यवहृत शब्द के अर्थ में भेद ।

(ट) शब्द में एक तत्त्व का प्राधान्य ।

(ठ) गौण अर्थ का अचेतन रूप से संग्रहण ।

तारापुरवाला द्वारा उल्लिखित अर्थपरिवर्तन के इन कारणों को कुछ विस्तार से रखा जा सकता है ।

§ ६६ **अलंकार :** साहित्यशास्त्र में अनेकानेक अलंकारों की विवेचना मिलती है । अर्थतात्त्विक का अभीष्ट उन सभी की विवेचना नहीं होता । अर्थतात्त्विक तो उन्हीं की मीमांसा में प्रवृत्त होता है जो स्पष्टतः अर्थपरिवर्तन के कारणस्वरूप लोकव्यवहार की भाषा में प्रयुक्त होते हैं ।

---

१. Elements of the Science of Language, p. 90.

साहित्यक्षेत्र में हम देखते हैं कि अलंकारों का प्रयोग प्रायः काव्य-सौष्ठव के संनिवेश के लिए—और प्रायः चमत्कारप्रदर्शन के लिए भी—होता है। लोकव्यवहार की भाषा में अलंकारों का प्रयोग प्रायः अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए देखा जाता है। जिस भाव या विचार को सीधी-सादी भाषा में अभिव्यक्त करने में लोग अपने को असमर्थ पाते हैं उसको श्रोता तक स्पष्ट रूप से प्रेषित करने के लिए अलंकारों का सहारा लेते हैं। हम जानते हैं कि भाषा भाव अथवा विचार को संपूर्णतः अभिव्यक्त करने में—श्रोता तक उसे प्रेषित करने में—समर्थ नहीं होती। इसीलिए कहीं-कहीं लोगों को 'अक्षिनिकोच तथा पाणि-विहार', आदि संकेतों का भी सहारा लेना पड़ता है; और, इसीलिए लोगों को अलंकारों का भी आश्रय लेना पड़ता है। अलंकारों का प्रयोग एक और परिस्थिति में भी देखा जाता है। समाज में बहुत से प्रयोग बहुत दिनों से चलते रहने के कारण अपना महत्त्व कभी-कभी या तो खो बैठते हैं या उनका प्रभाव जनता पर नहीं रह जाता। ऐसे प्रयोगों में तब अभिव्यक्ति की आवश्यक शक्ति भी मर जाती है। परिणामतः जनता अलंकारों की सहायता से नवीन प्रयोग चलाती है, जिससे उसकी अभिव्यक्ति में प्रभावात्मकता आये। इस प्रकार प्रधानतः भाषातात्त्विक दृष्टि से अलंकारों की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कि भाषा में प्रेषणीयता की शक्ति बढ़े। और, भाषा में प्रेषणीयता की शक्ति का मतलब है उसमें स्पष्टता का आना, उसमें ऐसी शक्ति का आना कि बिना कठिनाई के श्रोता भावों, विचारों का बोध कर ले। यह संभव होता है अलंकारों के कारण। अलंकारों का प्रयोग हम किसी देश के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में देखते हैं। और, इनका प्रयोग हमें जनभाषा में भी मिलता है। अर्थतात्त्विक की विवेचना का विषय प्रधानतः इसी जनभाषा में प्रयुक्त अलंकार होता है।

हम जानते हैं कि 'पाद अथवा पैर' जीव-जंतु को ही होते हैं; किंतु

इनके 'पाद अथवा पैर' को दृष्टि में रखकर लोगों ने मेज, कुर्सी, पलंग, आदि वस्तुओं के भी 'पाद, पैर' की कल्पना कर ली है, जिसे 'पाया' कहते हैं, जो 'पाद' का ही विकसित रूप है। स्टुर्टिभांट (E. H. Sturtevant) का कथन है कि इस प्रकार का जानबूझकर किया गया और अल्पाधिक रूप में शब्द के आरोप अथवा व्यवहार का स्वेच्छाचारी विस्तार अलंकार है :

Such a conscious and more or less arbitrary extension of the applicability of a word is called a figure of speech.[१]

अलंकार के प्रयोजन की विवेचना हमने ऊपर की है। स्टुर्टिभांट ने भी कहा है कि अलंकारों का व्यवहार भव्यता, ध्वन्यात्मकता, कभी-कभी स्पष्टता के लिए होता है :

Figures of speech are used for the sake of vividness, suggestiveness, and sometimes for clearness.[१]

§ ६७ अर्थतत्त्व के क्षेत्र में विवेचित अलंकारों में सर्वप्रधान है उपचार (Metaphor)। इसे 'रूपक' का नाम दिया जाता है, मैं 'उपचार' कह रहा हूँ, क्योंकि साहित्यशास्त्र के 'उपचार' और अर्थतत्त्व के 'मेटाफोर' (Metaphor) में काफी मेल है। इस (साहित्यशास्त्र) के 'रूपक' अलंकार तथा 'मेटाफोर' में उतना मेल नहीं है। उपचार के बारे में कहा गया है कि कहीं-कहीं यह तादर्थ्य पर आधृत रहता है। जैसे इंद्र के लिए स्थूणा को इंद्र कहा जाता है। कहीं-कहीं इसका

१. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 90.

आधार स्वामी और सेवक का संबंध होता है। जैसे, राजकीय पुरुष को राजा कह देते हैं। कहीं-कहीं इसका आधार अवयवावयवी का संबंध होता है। जैसे, अग्रहस्त में हस्त शब्द (हाथ का) अग्र भाग मात्र व्यक्त करता है। कहीं-कहीं यह तात्कर्म्य पर आधृत होता है। जैसे, बढ़ई की जाति का न होने पर भी बढ़ई का काम करने से बढ़ई कहना :

क्वचित्तादर्थ्यादुपचारः । यथा इंद्रार्था स्थूणा इंद्रः ।
क्वचित्स्वस्वामिभावात् । यथा राजकीयः पुरुषो राजा ।
क्वचिदवयवावयविभावात् । यथा अग्रहस्त इत्यत्राग्रमात्रेऽवयवे हस्तः । क्वचित्तात्कर्म्यात् । यथा अतक्षा तक्षा । २·७[1]

उपचार को अर्थपरिवर्तन का प्रधान कारण माना गया है :

"......metaphor is the chief cause of semantic change."[2]

'काव्यप्रकाश' के आधार पर उपचार का जो उल्लेख किया गया है उसके द्वारा इसके स्वरूप का कुछ आभास मिला होगा। इससे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उपचार शब्दों के अर्थ को परिवर्तित कर देता है, उन्हें नया अर्थ दे देता है। इस प्रकार उपचार द्वारा हमें नवीन-नवीन अभिव्यक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि उपचार का मूलाधार है सादृश्य। दो वस्तुओं, दो क्रियाओं, आदि के आधार पर ही उपचार की सृष्टि होती है। उपचार की सृष्टि की प्रक्रिया बड़ी तीव्र होती है। इसके द्वारा अर्थपरिवर्तन, नवीन-नवीन अभिव्यक्तियों की सृष्टि, दो वस्तुओं, क्रियाओं, आदि में सादृश्य की झलकवश इसकी रचना तत्काल, तुरत हो जाती है। उपचार के इन

---

१. काव्यप्रकाश।
२. Louis H. Gray : Foundations of Language, P. 255.

तत्वों की दृष्टि से माइकेल ब्रेअल (Michel Breal) का यह कथन ध्यान देने योग्य है :

Metaphor changes the meaning of words and creates new expressions on 'the spur of the moment. It is born from the instantaneous glimpse of a similarity between two objects or two acts.[1]

उपचार में वस्तुओं, क्रियाओं, आदि संबंधी जो सादृश्य है उसी के कारण भाषा में वस्तुओं का नामकरण होता हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसा 'क्युंटिलियन' (Quintilian, viii 6) का मत है :

According to the remark of Quintilian (viii 6) it is owing to Metaphor that every thing seems to have its name in Language.[1]

माइकेल ब्रेअल (Michel Breal) का कथन है कि उपचार द्वारा कभी-कभी संपूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्षित (Perspective) का पता चलता है। उन्होंने वर्तमान काल में प्रभूततः प्रचलित एक अँगरेजी शब्द 'इंफ्लुएंस' (Influence) का उदाहरण देकर कहा है कि यह हमें प्राचीन ज्योतिर्विदों के अंधविश्वासों का स्मरण दिलाता है। प्राचीन काल में यह माना जाता था कि व्यक्तियों और वस्तुओं पर प्रभाव डालनेवाला एक द्रवविशेष नक्षत्रों से निकलता है। अँगरेजी शब्द 'इन्फ्लुएंस' में पहले यही अर्थ निहित था[2]।

---

१. Michel Breal : Semantics, P. 122.

२. वही, पृ० १२७–८।

सभी भाषाओं में एक विशेष प्रकार का उपचार प्रचलित मिलता है। ऐसे उपचार का आधार होती हैं हमारी ज्ञानेंद्रियाँ। ऐसे उपचार में हम चक्षुरिंद्रिय की अनुभूति को श्रोत्रेंद्रिय की अनुभूति के रूप में अथवा स्पर्शेंद्रिय की अनुभूति को रसनेंद्रिय की अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त करते हैं :

A special kind of Metaphor, extremely frequent in all languages, comes from the communication between an organs of sense, which permit us to transport the sensations of sight into rhe domain of hearing, or the ideas of touch into the domain of tasts.[1]

इनके उदाहरण किसी भी भाषा में मिल सकते हैं। हिंदी भाषा में भी हम 'गंभीर स्वर, उच्च स्वर, कटु वाणी', आदि का प्रयोग करते हैं। 'गंभीर, उच्च' चक्षु-इंद्रिय का विषय है और 'स्वर' श्रवणेंद्रिय का विषय। 'कटु' रसनेंद्रिय का विषय है और 'वाणी' श्रवणेंद्रिय का विषय। 'मोटी बात' में 'मोटी' त्वक् इंद्रिय का विषय है और 'बात' श्रवणेंद्रिय का। ऐसे ही प्रचुर प्रयोग प्रचलित हैं, जिनसे हमारा नित्य-प्रति का परिचय है। यहाँ प्रसंग से इसका भी उल्लेख किया जा सकता है कि सजीव प्राणियों के लिए प्रयुक्त विशेषण निर्जीव वस्तुओं के लिए भी व्यवहृत होते देखे जाते हैं। जैसे—'अंधा कुआँ, अंधी गली', आदि। संस्कृत भाषा में भी 'अंधकूप' का प्रयोग मिलता है।

माइकेल ब्रेअल (Michel Breal) का कथन है कि जब उपचार असली और मार्मिक होते हैं तब अपनी जन्मदातृ भाषा में

---

1. वही, पृ० १२६-३०।

सीमित नहीं रह पाते। वे एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रयोग के माध्यम से जाते हैं। वे अनूदित होते हैं। इस प्रकार वे मानवजाति की पैतृक संपत्ति हो जाते हैं :

Metaphors are not chained to the language which gave them birth. When they are true and striking, they travel from idiom to idiom and become the patrimony of the human race.''''''Metaphors are translated.[1]

उदाहरणार्थ संस्कृत का 'अंधकूप' हिंदी में 'अंधा कुआँ' के रूप में प्रचलित है।

अलंकारों के संबंध में अब तक हमने जो विचार प्रस्तुत किया है उसका सारांश यही है कि अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए लोग अलंकारों का प्रयोग करते हैं। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में तो ऐसा ही देखा जाता है। चमत्कार के लिए अलंकारप्रयोग साहित्य के क्षेत्र में देखा जा सकता है। विषय को स्पष्ट करने के लिए हमने यथाप्रसंग कुछ उदाहरण दिए हैं। ये उदाहरण प्रायः उपचार के हैं। ध्यान में रखने की बात यह है कि अर्थतत्त्व के क्षेत्र में प्रयुक्त अलंकारों के मूल में सादृश्य ही काम करता हुआ दिखाई पड़ता है। सादृश्य द्वारा हम अमूर्त (Abstract) वस्तु के संबंध में भी अलंकार की सहायता से अपनी अभिव्यक्ति स्पष्ट करते हैं और मूर्त (concrete) वस्तु के संबंध में भी। अमूर्त विषयक कुछ उदाहरण हमने यथा प्रसंग दिए हैं। यहाँ एक उदाहरण गुजराती का दिया जा रहा है। गुजराती में 'निकम्मा आदमी' के लिए प्रयोग किया जाता है 'उसमें नमक नहीं है'—'एना मां मीठुं नथी।'

---

१. वही, पृ० १३१-२।

मूर्त विषयों की अभिव्यक्ति भी आलंकारिक ढंग से की जाती है। आलंकारिक अभिव्यक्ति में सादृश्य की चर्चा मैंने की है, अर्थात् अलंकार तथा अलंकार्य में गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, आदि संबंधी सादृश्य होता है। इन दोनों में यदि सादृश्य सर्वतोभावेन हो तो बड़ा ही अच्छा, किंतु ऐसा पाया कम जाता है—विशेषतः भाषाशास्त्र के क्षेत्र में। किंतु अलंकार तथा अलंकार्य में अल्पाधिक रूप में सादृश्य तो रहता ही है, अन्यथा आलंकारिक अभिव्यक्ति समझी ही न जाय। 'मूर्ख' को 'सुअर, गधा, बैल' कहना, 'धूर्त, चालबाज, धोखेबाज' को 'साँप' कहना खूब प्रचलित है। ऐसे प्रसंगों में व्यक्तिवाचक नामों का भी उपयोग होता हुआ दिखाई पड़ता है। दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति के संकल्प को 'भीष्मप्रतिज्ञा' हम कहते हैं। भ्रातृद्रोह कर कुल, परिवार को क्षति पहुँचानेवाले को 'विभीषण' कहा जाता है। एक समय में माइकेल मधुसूदनदत्त को 'बंगाल का शेक्सपीयर' कहा जाता था। इस तरह के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं।

'रास्ते का माथा,' 'निहाई का माथा,' 'आरी के दाँत,' 'कलम की जीभ या जिभ्भी,' आदि का प्रयोग भी आलंकारिक ही है।

§ ६८ मुहावरे अथवा प्रयोग में भी आलंकारों का व्यवहार देखा जाता है। मुहावरे में वस्तुतः प्रस्तुत अर्थ का तिरस्कार और लक्षणा या व्यंजना द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का ग्रहण ही होता है। विषय को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लिया जाय। एक मुहावरा है—'मामला खटाई में पड़ना', जिसका अर्थ है—'किसी कार्य के संपन्न होने में अति विलंब होना'। देखना यह चाहिए कि इस मुहावरे का मूल क्या है। स्वर्णकार, कांस्यकार, आदि आभूषण, धातु के पात्र, आदि को साफ करने के लिए आम, इमली आदि की खटाई में उन्हें काफी समय तक भिगोए रखते हैं, कभी-कभी दो-तीन दिनों तक भी इन्हें खटाई में रखा

जाता है। काफी समय अथवा कई दिनों तक इन्हें भिगोए रखने की 'देरी' तथा 'मामला खटाई में पड़ना' (मुहावरे के) अर्थ में 'अति विलंब' में सादृश्य के आधार पर यह मुहावरा बना है। इसी प्रकार सभी मुहावरों में अलंकार का कुछ न कुछ तत्व काम करता हुआ दिखाई पड़ेगा। इस विवेचन का तात्पर्य यह कि मुहावरों के अर्थ में प्रस्तुत अर्थ का तिरस्कार कर उसके विशेष अर्थ का ग्रहण किया जाता है और उनका यह विशेष अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। मुहावरों के संबंध में दूसरी बात हमने यह देखी है कि इनमें अलंकार का तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है।

§ ६९ मुहावरों की भाँति ही कहावतों में भी अलंकार का तत्व संनिहित रहता है। हम देखते हैं कि इनमें प्रस्तुत पदार्थ तो तिरस्कृत रहता ही है, पदों से बने वाक्य का अर्थ भी गौण होता है। 'ऊखल में दिया सर, तो मूसलों का क्या डर' का अर्थ है—'यदि कोई साहसपूर्ण कार्य करने के लिए तत्पर हुआ जाय तो विपत्तियों से भय छोड़ देना चाहिए।' यहाँ हम देखते हैं, कि पदार्थ तथा वाक्यार्थ दोनों तिरस्कृत हैं, इनसे एक अन्य ही अर्थ प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख किया गया है। दूसरा तत्व जो हम यहाँ देखते हैं वह यह है कि ऊखल में पड़ी वस्तुओं में मूसल के प्रहारों तथा साहसपूर्ण कार्य में विपत्तियों के सहने का सादृश्य है। इस प्रकार अलंकार का तत्व भी यहाँ प्राप्त है।

§ ७० **परिवेश :** परिवेश अथवा परिस्थिति (Environment) के परिवर्तन से अर्थ में परिवर्तन होता है। इसकी विवेचना को तीन भागों—भौगोलिक, सामाजिक और भौतिक—में विभक्त कर देखा जा सकता है। 'ऋग्वेद' में 'उष्ट्र' शब्द मिलता है। नव्य भारतीय आर्यभाषा में 'ऊँट' शब्द इसी से विकसित हुआ है। इसका अभिधेयार्थ है 'जला हुआ', अर्थात् 'भूरा'। 'ऋग्वेद' में इसका अर्थ है 'एक विशेष प्रकार

का भैंसा, जो एकदम काला नहीं होता, जिसकी कालिमा में लालिमा रहती है। एक उदाहरण लीजिए :

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्रानां विंशतिं शता।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा॥[1]

'ऋग्वेद' के पश्चात् के वाङ्मय में इसका प्रयोग 'ऊँट' के अर्थ में मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'भैंसा' से इसका अर्थ 'ऊँट' हुआ। इसके इस अर्थपरिवर्तन के आधार पर भाषातात्विक यह अनुमान लगाते हैं कि आर्य 'भैंसा' पाए जानेवाले प्रदेश से उस प्रदेश में आए जहाँ 'ऊँट' पाया जाता था। फारसी 'शीर' शब्द (भारत में जिसका उच्चारण 'शेर' हुआ) का अर्थ 'सिंह' है, किंतु उर्दू तथा अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में इसका प्रयोग 'बाघ' के अर्थ में होता है। फारसी 'दर्या' शब्द का अर्थ 'नदी' है। उर्दू 'दरिया' का भी यही अर्थ है। किंतु गुजराती में इसका अर्थ हुआ 'सागर'। उत्तर भारत में एक वृक्ष विशेष को, जिसके पत्ते आम्र अथवा अशोक वृक्ष के पत्ते के समान होते हैं, किंतु उनके किनारे लहरदार रहते हैं, जिसको वनस्पतिशास्त्र में 'पोलिएल्थिया लांजिफोलिया' (Polyalthia longifolia) कहते हैं, साधारणतः 'अशोक' कहते हैं; धार्मिक और शुभ अवसरों, आदि पर जिसके पत्तों से बंदनवार, तोरण आदि बनाते हैं। संभवतः इसी कारण इसे 'अशोक' कहा गया हो। किंतु, हम जानते हैं कि (असली) 'अशोक' एक दूसरा वृक्ष होता है, वनस्पतिशास्त्र में जिसे 'सेराका इंडिका' (Saraca indica) कहते हैं। वंग प्रदेश में उत्तर भारत के इस 'अशोक' (Polyalthia longifolia) को 'देवदार' कहा जाता है, परंतु 'देवदारु' (Cederus deodora)

---

१. ऋग्वेद, ८. ४६. २२। इस ग्रंथ में अन्यत्र भी इसका प्रयोग मिलता है : १. १३८. २। ८. ५. ३७। ८. ६. ४८। ८. ४६. ३१।

यह नहीं है, जो हिमालय पर्वत और उसकी श्रेणियों में पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रदेश भेद से जीव-जंतु, नदी, वृक्ष, आदि के नाम और अर्थ बदल जाते हैं।

§ ७१ सामाजिक परिवेश के परिवर्तन से, समाज के बदलने से भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। अँगरेजी शब्द 'फी' (Fee) एक समय में 'मवेशी' अथवा 'पशुसंपत्ति' (Cattle) के अर्थ में प्रयुक्त होता था और यह माना जाता था कि इसका उपयोग ऋण-शोध के लिए भी किया जा सकता है। जब ऋणशोध के लिए इसका उपयोग बंद हुआ तब इस ('मवेशी') का अर्थ स्वतंत्र हो गया और 'फी' के अर्थ की भावना भी द्रव्य के रूप में ऋणशोध के अर्थ में सामने आई। आज 'फी' अथवा 'शुल्क' द्रव्य के रूप में ही दिया जाता है। इस उल्लेख से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जब समाज में 'मवेशी' का प्राधान्य था तब इसका उपयोग 'फी' के रूप में होता था और परिणामतः 'फी' का अर्थ 'मवेशी' हो गया। जब 'मवेशी' की कमी हुई अथवा इसका उपयोग किसी अन्य कार्य के लिए किसी कारण-वश होने लगा और द्रव्य का प्रचार धातु रूप में हुआ तब 'मवेशी' का अर्थ स्वतंत्र हो गया। और 'फी' के साथ भी धातु, आदि की वस्तुओं की भावना संबद्ध हो गई।

समाज से संबद्ध ऐतिहासिक परंपरा से परिचय हो, तो भी शब्द के अर्थपरिवर्तन की जानकारी हो सकती है, अर्थात् अर्थपरिवर्तन के एक कारण के रूप में, इस प्रकार, इतिहास भी संमुख आता है। जर्मन शब्द 'कैसर' (Kaiser) और रूसी शब्द 'ज़ार' (Tsar) का अर्थ 'सम्राट्' है। ये शब्द लैटिन शब्द 'सीज़र' (Caesar) के विकसित रूप हैं। इस 'सीज़र' का संबंध भी रोम के एक सम्राट् 'गेअस ज्यूलियस सीज़र' (Gaius Julius Caesar) से है। हम देखते

है कि यहाँ एक व्यक्ति के नाम का सामान्यीकरण कर दिया गया। जो इस 'सीज़र' व्यक्ति को न जाने वह 'कैसर' तथा 'ज़ार' के मूल को ठीक से नहीं समझ सकता। आश्चर्य की बात तो यह है कि कैथोलिक धर्म में 'पिता' (Father) का भी अर्थ बदल गया। इसमें 'फादर' पोपों (Popes) की एक श्रेणी है। वैसे, 'पोप' (Pope) शब्द 'पापा' (Papa) का विकसित रूप है, जिसका अर्थ ही है 'पिता' (Father)।

सामाजिक आचारव्यवहार, संस्कार, आदि द्वारा भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है। समस्त पद 'तिलांजलि' का एक विशेष अर्थ है। मृत व्यक्ति को लोग अंजलि में जल ले उसमें तिल डालकर देते हैं। वस्तुतः 'तिलांजलि' का संबंध इसी संस्कार से है। इसी के आधार पर 'तिलांजलि देना' का अर्थ 'त्यागना' हो गया। 'पिंड छुड़ाना' मुहावरे का सामान्य अर्थ प्रचलित है 'अपने को बचाना, अलग होना'। इसका संबंध भी एक प्रेतसंस्कार से है, जो सभी हिंदू धर्मावलंबियों को करना पड़ता है।

'शतक्रतु' का अभिधेयार्थ है 'सौ यज्ञ', किंतु इसका अर्थ हो गया है 'इंद्र'। 'इंद्र' द्वारा 'सौ यज्ञ' करने की पौराणिक कथा जो न जाने वह इसके 'इंद्र' अर्थ की वास्तविकता को कैसे जान सकता है। साहित्य में संख्या का प्रयोग न कर उसके लिए उसके बोधक कुछ शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे : ०=आकाश, १=ब्रह्म, ४=वेद, ७=ऋषि, ६=रस, आदि। आकाश, ब्रह्म, वेद, ऋषि, रस द्वारा इन संख्याओं का बोध क्यों होता है, यह जानने के लिए हमें अपनी संस्कृति से अवगत होना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक परिवेश, जिसके अंतर्गत हमारी संपूर्ण संस्कृति आती है, के कारण भी शब्दों के अर्थ परिवर्तित होते हैं।

§ ७२ अर्थपरिवर्तन में भौतिक परिवेश–परिस्थिति–भी एक कारण के रूप में संमुख आता है। इस परिवेश को सामाजिक परिवेश के ही अंतर्मुक्त कर सकते हैं। किंतु, तारापुरवाला (I. J. S. Taraporewala) ने इसे सामाजिक परिवेश से पृथक् कर दिया है। उनका कथन है कि भौतिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ शब्दों के अर्थ में नवीन परिवर्तन आता है। जिस सामग्री द्वारा वस्तुएँ निर्मित हुई उस (सामग्री) के आधार पर वस्तुओं का नामकरण किया गया। यह भी देखा गया कि निर्माणसामग्री में पूर्णतः परिवर्तन हो गया, तथापि पुराने नाम चालू रहे :

With the growth of material civilization new changes come over words. Things were named after the material out of which they were made, and even after the latter changed entirely the old name continued.[1]

अँगरेजी 'पेपर' (Paper=कागज) शब्द का मूल लैटिन शब्द 'पेपिरस' (Papyrus) है, जो बेंत जातीय एक पौधा होता है; इसी से पहले 'पेपर'='कागज' बनाया जाता था। अब इससे यह नहीं निर्मित होता, फिर भी इसे 'पेपर' ही कहते हैं। हिंदी 'चमोटी' (चाम+ओटी प्रत्यय) का मूल है 'चाम' (संस्कृत चर्म)। इसका एक अर्थ है 'चाबुक, कोड़ा', जो 'चाम' से निर्मित हो सकता है। किंतु इस 'चमोटी' का आज प्रचलित अर्थ है 'पतली छड़ी, कमाची, बेंत'। इनका संबंध 'चाम' से नहीं है, फिर भी इन्हें 'चमोटी' ही कहते हैं। इसके अतिरिक्त आज 'कोड़ा', 'चाम' से ही नहीं, सूत की पतली डोरी, आदि से भी बनाया जाता है। अँगरेजी 'ह्विप्'

१. Elements of the Science of Language, p. 95.

(Whistle) शब्द, हिंदी में जिसे 'सीटी' कहते हैं, बँगला में 'बाँसि' कहा जाता है। यह 'ह्विस्ल' धातु का बनता है, आजकल प्लास्टिक का भी बनने लगा है, किंतु इसके अर्थ में प्रयुक्त बँगला शब्द 'बाँसि', जो हिंदी 'बाँसी' और संस्कृत 'वंशी' का समानार्थी है, 'वंश'—'बाँस'—से बनता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भौतिक परिवेश से भी अर्थपरिवर्तन होता है।

§ ७३ **संबोधन में नम्रता** : अर्थपरिवर्तन की गतिविधि देखने से विदित होता है कि 'संबोधन में नम्रता' अथवा अन्य अवसरों पर भी 'नम्रता' के कारण शब्दों के अर्थ में परिवर्तन आता है। अतः 'नम्रता' अर्थपरिवर्तन का एक कारण है। 'नम्रता' सभ्यता तथा संस्कृति के विकास का फल है। इनके विकास, विशेषतः सभ्यता के विकास के साथ-साथ समाज के कई क्षेत्रों में दिखावटी 'नम्रता', जिसे बँगला में 'भद्रता' (Formality) कहते हैं, का विकास होता गया है। यह भद्रता शासक और शासित के दो भिन्न संप्रदाय हो जाने से अधिक बलवती हुई, जिस (भद्रता) का प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में अत्याधिक रूप में पड़ा है। ऐसी भद्रता का परिणाम यह हुआ कि जापानी भाषा में तो राजपरिवार तथा सामान्य जन के लिए दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ गढ़ी गईं। जापानी भाषा में सामान्य जन के 'टहलने' के लिए 'अरुकु' (Aruku) शब्द का प्रयोग होता है, मगर राज-परिवार वालों के टहलने के लिए 'ओ हिरोइ' (O hiroi) शब्द प्रयुक्त होता है, जिसका अभिधेयार्थ है 'संमानपूर्वक ग्रहण'। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'संमानपूर्वक ग्रहण' का अर्थ 'टहलना' हो गया है। ऐसे ही जापानी भाषा में सामान्य जन के 'रक्त' को 'चि' (Chi) कहते हैं और उच्चवर्गीय व्यक्तियों के 'रक्त' को 'असे'

(Ase), जिसका अभिधेयार्थ है 'प्रस्वेद'। इस प्रकार 'प्रस्वेद' का अर्थ हो गया 'रक्त'।

नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में से उर्दू में भी ऐसे भद्रताभरे बहुत से शब्द हैं। इसमें वक्ता अपने को 'ग़रीब', 'बंदा' (दीन; दास) और जिससे बातें करता है उसको 'ग़रीब-परवर', 'बंदा-नवाज़' कहता है, जिनके अर्थ हैं 'दीन का पालक-पोषक; दास पर पूर्ण कृपा रखनेवाला'। 'ग़रीब' अरबी शब्द है और 'परवर' फारसी शब्द। 'बंदा' फारसी 'बंदः' का तद्भव रूप है, 'नवाज़' भी फारसी शब्द है। ऐसे ही जिससे बातें की जाती हैं उसे 'मालिक' (अरबी स्वामी) और अपने को 'अर्ज़-करदा' (प्रार्थी) कहते हैं। 'अर्ज़-करदा' फारसी शब्द है; 'करदा' फारसी 'कर्द' का विकसित रूप है। 'अर्ज़-करदा' प्रायः 'अर्ज-कर्ता'-के रूप में व्यवहृत मिलता है। इसीलिए 'मालिक' कोई बात 'कहते' नहीं हैं, 'फ़रमाते' हैं। 'फ़रमाना' फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है 'आज्ञा देना'। जिससे बातें की जाती हैं उसका 'घर' 'दौलतखाना' होता है और वक्ता का घर 'ग़रीबखाना'। 'दौलतखाना' में 'दौलत' अरबी शब्द है और 'खाना' फारसी शब्द। इसका अर्थ है 'संपत्ति-आगार'। 'ग़रीबखाना' का मतलब है 'दीन कुटीर'। उर्दू में ऐसे बहुत से प्रयोग मिलते हैं। वक्ता अपने को 'नाचीज़' (फारसी अकिंचन, तुच्छ) कहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भद्रता अथवा आदरवश हम अतिशयोक्तिपूर्ण प्रयोग करते हैं। यह अतिशयोक्ति आदरकर्ता तथा आदरपात्र दोनों पक्षों में होती है। इसीलिए सामान्य 'मकान, घर' का अर्थ 'दौलतखाना' भी हुआ और 'ग़रीबखाना' भी। नम्रतावश ही लोग अपने बड़े-बड़े मकानों, प्रासादों का नाम 'कुटी, कुटीर' रखते हैं। जैसे, गोपाल-कुटी, श्यामनंदन कुटीर, आदि। 'कुटी, कुटीर' का अर्थ होता है 'घास-फूस से बना छोटा घर, झोपड़ी'। भगवान् के प्रति दीनता-हीनता,

पापी होने की भावना के कारण वंग प्रदेश में अपनी कन्याओं का नाम लोग 'मलिना' रखते हुए देखे जाते हैं। उल्लिखित अन्य प्रयोगों की विवेचना भी इसी रूप में की जा सकती है।

§ ७४ संबोधन में नम्रता का प्रभाव व्याकरण के क्षेत्र में भी पड़ा है। भारोपीय परिवार की अनेक भाषाओं में मध्यम पुरुष एकवचन का प्रयोग एक प्रकार से लुप्त-सा दिखाई पड़ता है। अर्थात् 'तू' के स्थान पर भी 'तुम' का प्रयोग किया जाता—मध्यम पुरुष एक वचन के लिए मध्यम पुरुष बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। अँगरेजी में भी यही स्थिति है, 'दाउ' (Thou) के स्थान पर 'यू' (You) का प्रयोग होता है। कई प्रसंगों में 'आदरार्थे बहुवचनम्' का नियम लागू कर भी ऐसा करते हैं।

प्रेम, स्नेह, भक्ति के प्रसंग में, किंतु, मध्यम पुरुष एक वचन का प्रयोग मिलता है। जैसे, भक्तिमूलक इस पंक्ति में : 'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।'

§ ७५ **अशुभ के लिए शुभ** : अशुभ अथवा अमंगल प्रसंगों, वस्तुओं, व्यक्तियों, आदि के लिए शुभ अथवा मंगल शब्दों, प्रयोगों, आदि का व्यवहार भी अर्थपरिवर्तन का एक कारण होता है। अर्थ-परिवर्तन के इस कारण को अँगरेजी में 'इयुफेमिज्म' (Euphemi-ism) कहते हैं। अशुभ के लिए शुभ के व्यवहार की स्थिति में कभी-कभी आलंकारिक प्रयोग भी देखा जाता है। जैसे, किसी को 'गधा' न कहकर 'वैशाखनंदन', 'शीतलावाहन' कहा जाय, 'उल्लू' न कहकर 'लक्ष्मीवाहन' कहा जाय, 'उल्लू बसंत' न कह कर 'लक्ष्मीवाहन ऋतु-राज' कहा जाय। ऐसे प्रयोगों का भी आरंभ कोई एक व्यक्ति करता है और उनमें यदि शक्ति हुई तो वे प्रचलित हो जाते हैं। ऐसे प्रयोगों का अल्पाधिक प्रसार इनकी अल्पाधिक शक्ति पर आधृत है, जिनमें

जितनी अधिक शक्ति होती है वे उतने व्यापक क्षेत्र में प्रचरित होते हैं।

अर्थपरिवर्तन के इस तत्व में हम देखते हैं कि अशुभ, अमंगल, असभ्य, अश्लील अर्थ व्यक्त करनेवाले शब्दों के स्थान पर मंगल अर्थ देनेवाले शब्द लाए जाते हैं। इस प्रकार इसके द्वारा अशुभ को शुभ शब्दों द्वारा ढँक दिया जाता है। अशुभ के लिए शुभ के प्रयोग का एक लक्ष्य यह भी होता है कि किसी को चोट न पहुँचे, अर्थात् अशुभ, अमंगल का बोध करते हुए भी कोई भीत न हो, अश्लील का बोध करते हुए भी किसी को जुगुप्सा की अनुभूति न हो, असभ्यता का बोध करते हुए भी कोई क्रुद्ध न हो।

अशुभ के स्थान पर शुभ के प्रयोग के माध्यम से हम किसी व्यक्ति अथवा जाति की अभिरुचि का परिचय पाते हैं, क्योंकि सभ्यता-संस्कृति-संपन्न व्यक्ति अथवा जाति में ऐसे प्रयोग का प्राधान्य अधिक संभव है। परिणामतः इससे किसी व्यक्ति अथवा जाति की परंपरा के संबंध में भी जानकारी होती है। संभवतः इसी पर दृष्टि रख कर कहा गया है:

Euphemism seems to be, in the main, a question of taste and convention.[1]

सभ्यता-संस्कृतिसंपन्न व्यक्ति अथवा जाति में इसका प्राधान्य होना संभव है, किंतु इसके मूल की कल्पना सभ्यता की आरंभिक स्थितियों में भी की जा सकती है। अशुभ का उल्लेख न करना और यदि करना तो शुभबोधक पदावली द्वारा, यह हमारा स्वभाव बन गया है। जंगली तो इसके उल्लेख से और भी अधिक हिचकता है। उसके गिरोह का जो व्यक्ति मर जाता है उसके नामोल्लेख को भी वह उचित नहीं समझता, अपने बच्चे का नाम भी उसके नाम-सा नहीं रखता, इस प्रकार उस मृत व्यक्ति का नाम लुप्त हो जाता है। यह सब मात्र अशुभ-मृत्यु-

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 266.

के भय के कारण होता है। यदि वह ऐसे व्यक्ति का नामोल्लेख करता भी है तो शुभबोधक शब्दों से उसे ढाँक कर। अतः हम देखते हैं कि अशुभ के लिए प्रयोग का मूल मानव के आदिम युगों की स्थिति तक जाता है :

The origins of euphemism, then, are to be sought not in our complex civilization, but in these conceptions of language which are common to men in every stage of culture. We instinctively avoid the mention of death, and take refuge in such vague or softened phrases as……The savage feels still greater reluctance. Sometimes he even refuses to utter the name of a person, who is no longer living, or to give it to a child, so that the name actually becomes obsolete among the tribe.[1]

अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि आज भी और सभ्य-संस्कृत लोग भी ऐसा ही करते हैं।

§ ७६ यह देखना अनुचित न होगा कि प्रधानतः किन-किन अवसरों पर हम अशुभ के लिए शुभ का प्रयोग पाते हैं। मनुष्य के जीवन में मृत्यु और इसके समाचार से बढ़कर भयावह और अशुभ कुछ नहीं है। इसलिए मृत्यु और इसके समाचार के लिए मंगलबोधक अनेक शब्द हैं। यहाँ तक कि भारतीय विभिन्न दार्शनिक-धार्मिक संप्र-

१. J. B. Greenough and G. L. Kittredge : Words and their Ways in English speech, p. 300.

दायों में इसके लिए विभिन्न मंगलबोधक प्रयोग प्रचलित हैं। जैसे, 'मर जाना' के लिए 'दिवंगत होना, स्वर्गवास होना, गोलोकवास होना, कैलासवास होना, काशीवास होना, गंगालाभ होना' आदि-आदि बहुत से प्रयोग प्रचलित हैं। उर्दू में 'मृत्यु' के लिए 'इंतिकाल', 'इंतकाल' का प्रयोग चलता है, जिसका अभिधेयार्थ है, 'स्थानपरिवर्तन'। मृतभाषा संस्कृत 'अमरभाषा' है। मुसलमान लोग 'जनाजे के साथ जाना' को 'मिट्टी देने जाना' कहते हैं। इस अवसर के लिए ऐसे बहुत से प्रयोग प्रचलित हैं।

रोग अथवा रोग की स्थिति के उल्लेख के अवसर पर भी कभी-कभी मंगलबोधक प्रयोग मिलते हैं। सामान्यजन 'राजयक्ष्मा' न कह 'बड़ी बीमारी, बड़ा रोग' कहते हैं। शिक्षित लोग भी इसका नाम न लेकर 'फेफड़े की बीमारी' कह देते हैं। इस रोग की भयंकरता के कारण ही ऐसे प्रयोग मिलते हैं। लोग इसका नाम लेना भी अशुभ, भयावह समझते हैं। पुराने जमाने में लोग 'बादशाह की तबीयत खराब है' न कह कर कहते थे 'बादशाह के दुश्मनों की तबीयत नासाज़ है'। 'नासाज़' फारसी शब्द है, जिसका अभिधेयार्थ है 'विरोधी, अनुपयुक्त'। अँगरेजी में भी किसी को 'सिक' या 'इल' (Sick or Ill) न कह कर 'इंडिस्पोज़' (Indispose) होना कहते हैं। रोग अथवा रोग की स्थिति अशुभ है, अतः ऐसे मंगलबोधक प्रयोग चलते हैं।

वे खाद्य या पेय पदार्थ, जिनका समाज में खाना या पीना उचित नहीं समझा जाता अथवा जो स्वास्थ्य के लिए अनुपयुक्त या घातक हैं उनको भी मंगलबोधक नाम देते हैं। 'मद', 'शराब' को 'कारण' (तांत्रिक शब्द), 'लाल पानी', 'लाल परी' कहते हैं। 'नमक' को गुजरात में 'मिठु' और हिंदी में 'रामरस' नाम दिया गया है। अवधी में 'विष, जहर' को 'माहुर' कहा जाता है, जो संस्कृत 'मधुर' का तद्भव

रूप है। मुसलमान लोग 'गोमांस' का नाम न लेकर 'बड़े (जानवर) का मांस' कहते हैं। उत्तर भारत में कहीं-कहीं 'मांस' को 'तरकारी' बोलते हैं। मदरास में 'आमिष भोजनालय' का नाम 'मिलिट्री होटेल' (MilitryHotel) रखा जाता है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम्'[1] में कोतवाल—श्यालः—'मद पीना' का प्रयोग न कर श्रानुक से कहता है—'धीवर, महचरो तुमं पिश्र वश्रस्सश्रो दाणिं मे संवुत्तो। **कादंबरी-सक्खिश्रं अह्माणं पढम सोहिदं इच्छी अदि।** ता सोण्डिश्रापणं एव्व गच्छामो। (धीवर, महचरस्त्वं प्रियवयस्क इदानीं मे संवृत्तः। **कादंबरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते।** तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः)'।

ऐसे कार्य जो समाज में असभ्य अथवा गर्हित समझे जाते हैं उन्हें मंगलबोधक पदावली द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। 'जुआ' को 'सोलह परी का नाच' कहते हैं। 'पाखाना जाना' को देहातों में 'मैदान जाना' कहा जाता है। इसको शहरों में 'शौच जाना, टट्टी जाना, निबटने जाना' कहते हैं। 'पेशाब करना' को 'लघुशंका करना' द्वारा व्यक्त करते हैं। शिक्षित लोग 'पाखाना' को 'बाथ रूम' (Bath room= स्नानागार) कहने लगे हैं। पुरुष-स्त्री संबंधी बहुत से अश्लील कार्यों के लिए अनेक मंगलबोधक पदावलियाँ हैं।

शरीर के कुछ अवयवों का नाम लेना अश्लील समझा जाता है, अतः उन्हें शुभबोधक शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं। पुरुष की जननेंद्रिय को कई जगहों में 'डंडी' कहते हैं। इसी प्रकार स्त्री की जननेंद्रिय को 'अरघा' कहते हैं। 'स्तन, कुच' न कहकर 'छाती' कहते हैं। ऐसे अवयवों का नाम लेना अश्लील समझा जाता है, इसे हम जानते हैं, इस अश्लीलता के मार्जन के भ्रम में लोग इनका नाम अपनी भाषा में

---

1. अंक ६, प्रवेशक।

न लेकर इन्हें इनके अँगरेजी पर्यायवाची शब्दों द्वारा भी व्यक्त करते हुए देखे-सुने जाते हैं। कभी-कभी इनको संस्कृत शब्दों द्वारा व्यक्त कर देने से इनकी अश्लीलता मार्जित हो जाती है, ऐसा भी भ्रम है। ऐसे शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने का तात्पर्य यही होता है कि सभी लोग इन्हें न समझेंगे और अश्लीलता का गोपन होगा।

शरीर के—विशेषतः स्त्रियों के शरीर के-कुछ अवयवों को आच्छादित करनेवाले वस्त्रों का नाम लेना भी अश्लील है, अतः 'चोली' न कह कर 'बॉडिस' (Bodice) कहना और अधोवस्त्रविशेष को 'अंडर वेयर' (Under wear) कहना श्लील समझा जाता है।

समाज में कुछ व्यक्तियों का नाम लेना असभ्यता का लक्षण है, अतः उनके लिए भी मंगलबोधक शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'वेश्या' को 'मंगलामुखी', 'रखेली' को 'रक्षिता' कहते हैं।

समाज जिनको नीचा काम करनेवाला समझता है उनके नाम उच्चार्थ शब्दों द्वारा रखता है, जिससे उनके हृदय को चोट न पहुँचे। 'झाड़ू लगानेवाला' को 'जमादार', 'मैला उठानेवाला' को 'मेहतर' कहा जाता है। 'जमअ' अरबी शब्द है और 'दार' फारसी शब्द। इसका प्रधान अर्थ है 'सिपाहियों, पहरेदारों आदि का मुखिया'। 'मेहतर' का मूल संस्कृत 'महत्तर' शब्द है। उत्तर भारत के कई जिलों में 'नापित' को 'ठाकुर' कहते हैं। वंग प्रदेश में 'रसोइया' को 'ठाकुर' कहते हैं। उत्तर भारत में 'रसोइया' को 'महाराज' कहते हैं। काठ को काट-काट कर कम करनेवाले को संस्कृत में 'वर्द्धकी' और हिंदी में इसी का तद्भव 'बढ़ई' कहा जाता है। बंगाल में अनेक स्थानों पर 'मुसलमान' को 'मुसलमान' न कहकर 'भाई साहब' के नाम से पुकारते हैं।

अमंगल के लिए मंगल के प्रयोग के कुछ अवसरों अथवा प्रसंगों

का उल्लेख किया गया है। प्रधानतः इन्हीं अवसरों पर हम ऐसा प्रयोग पाते हैं। ऐसे प्रयोगों के और छोटे-मोटे अवसर भी हो सकते हैं।

§ ७७ सभी देशों के समाज में किसी न किसी रूप में अंधविश्वास प्रचलित है ही। अंधविश्वास के क्षेत्र में भी अमंगल के लिए मंगल शब्दों, प्रयोगों का व्यवहार मिलता है। इस क्षेत्र में ऐसे प्रयोग के मूल कारण का संबंध कहीं किसी अलौकिक शक्ति से, कहीं किसी आधिभौतिक शक्ति से, कहीं लोक से भय है। हमने देखा है कि मृत्यु से भय के कारण बहुत से ऐसे प्रयोग मिलते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसे प्रयोगों के मूल में भय भी एक प्रधान कारण है।

'चेचक' नामक रोग में विकट जलन होती है। किंतु अंधविश्वास-गत भय के कारण इस रोग की अधिष्ठातृ देवी का नाम है 'शीतला', 'माता'। लोक ने 'चेचक' के सात प्रकार मान रखे हैं, अतः 'शीतला माता' भी सात बहिनें मानी गई हैं।

अंधविश्वास है कि रात में साँप का नाम नहीं लेना चाहिए, नाम लेने से वह कहीं न कहीं से निकल आता है। किंतु रात में इसका नाम लेना ही पड़े, तो लोग इसे 'मामा' नाम से पुकारते हैं। बंगाल में ऐसी स्थिति में इसे 'लता' नाम देते हैं।

समाज में अंधविश्वासवश 'दीया बुझाना, आग बुझाना, चूड़ी फोड़ना, कड़ाही में घी छोड़ना, होली जलाना, दूकान बंद करना' कहना अशुभ समझा जाता है, अतः इनके स्थान पर मंगलबोधक क्रमशः ये प्रयोग प्रचलित हैं 'दीया बढ़ाना, दीया ठंढा करना, दीया-नँदाना (सं० नंद्); आग ठंढी करना; चूड़ी बढ़ाना; कड़ाही में घी बढ़ाना; होली मँगलाना ('मंगल' से नाम धातु की क्रिया); दूकान बढ़ाना'।

§ ७८ भारतीय समाज में अनेक स्थानों पर पति पत्नी एक दूसरे का नाम नहीं लेते हैं। अपने बड़े पुत्र का नाम भी माँ-बाप नहीं लेते

है। अंधविश्वास यह है कि ऐसा करने से अनिष्ट होता है—विशेषतः पति का अथवा पुत्र का। इस कारण पति की संतान रहने पर पत्नी 'अमुक के बाप, बाबा' अथवा 'हे, ओ', आदि नामों से पुकारती है। पति भी पत्नी को 'अमुक की माँ, अम्मा', अथवा 'हे, ओ', आदि नामों से पुकारता है। बंगाल में पति के लिए 'ओगो' नाम बड़ा प्रसिद्ध है। लोग बड़े लड़के के प्रायः दो नाम रखते हैं और उसके प्रधान नाम से न पुकार कर गौण नाम से पुकारते हैं, समझते हैं कि इससे अंधविश्वास-गत होनेवाले पुत्र के अनिष्ट का मार्जन हो जाता है। पुत्र का गौण नाम 'ऐरा गैरा नत्थू खैरा' की तरह का प्रायः कुछ भी रख देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अंधविश्वास के फलस्वरूप शोभन नामधारी व्यक्ति का नाम कहीं तो लिया ही नहीं जाता, कहीं 'हे, ओ, ओगो', आदि के रूप में रह जाता है, कहीं 'ऐरा गैरा नत्थू खैरा', आदि रख दिया जाता है।

कुछ लोग अपने पुत्र का बड़ा विचित्र, अजीब-ओ-ग़रीब, खूब तुच्छ नाम रखते हुए देखे जाते हैं। विशेषतः तब जब उनके कई पुत्र जन्म ले-लेकर मर चुके रहते हैं। ऐसा करने में यह अंधविश्वास है कि ऐसा नाम देखकर मृत्युरूप राक्षस बच्चे की जान बख्श देगा, उसे ले नहीं जायगा। इस प्रकार 'गोबर, मँहगू, छेदी, खुनखुन, पवारू, चिथरू, धर-पकड़', आदि विचित्र-विचित्र नाम रख देते हैं। 'मुरली मनोहर, उमाकांत, सरोज, प्रेमकुमार, सुंदरलाल', आदि नाम नहीं रखते। तात्पर्य यह कि शोभन नाम न देकर अशोभन नाम देते हैं।

दूसरी ओर अनेक कन्याओं के माँ-बाप हो जाने पर लोग अपने इष्टदेव से विनती करते हैं कि बस, अब नहीं। बंग प्रदेश में ऐसी स्थिति का एक नाम बड़ा प्रसिद्ध है। बहुत-सी कन्याओं से ऊबकर आखिरी कन्या (उसके बाद फिर भी हो सकती है !) का नाम रख दिया जाता

है 'आर ना काली' (माता काली, और नहीं)। बंगाल में कुछ लड़कियों या औरतों का नाम 'आन्ना या अन्ना' होता है। यह 'आर ना काली' का संक्षिप्त रूप है। ऐसे नाम में 'काली' अंतर्धान हो गई हैं और 'आर ना' का 'आन्ना या अन्ना' हो गया है। यहाँ भी शोभन नाम न रख कर एक अशोभन नाम रख दिया गया, ऐसा हम देखते हैं।

अमंगल के स्थान पर मंगल के प्रयोग की विवेचना करते हुए अंधविश्वास के कारण हमने कुछ अजीब-ओ-गरीब नाम रखे जाने की प्रवृत्ति देखी है तथा कुछ ऐसे नामों का उल्लेख भी किया है। हमने देखा है कि ऐसे उल्लेखों में अमंगल के स्थान पर मंगल के विपरीत मंगल—शोभन—के स्थान पर अमंगल—अशोभन का प्रयोग भी हुआ है। क्या मैं ऐसे प्रयोगों को मंगल के स्थान पर अमंगल के प्रयोग कहने की छूट पा सकता हूँ ?

§ ७६. हमने अमंगल के स्थान पर मंगल के प्रयोग की विवेचना प्रधानतः की है। इस विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि अमंगल के लिए प्रयुक्त हुए मंगल शब्द अथवा पदावली में अर्थ के अपकर्ष का तत्व आ जाता है। उदाहरणार्थ, 'वेश्या' के लिये प्रयुक्त मंगलबोधक शब्द 'मंगलामुखी' 'वेश्या' के संपर्क से अपने में अर्थापकर्ष का तत्व ही धारण करता है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि अमंगल के लिए प्रयुक्त मंगल शब्द इतना बड़ा और बंबास्टिक होता है कि अमंगलबोधक शब्द का प्रयोग ही चालू रहता है। जैसे, 'मंगलामुखी' का प्रयोग अत्यल्प लोग ही करते देखे-सुने जाते हैं, प्रायः सभी 'वेश्या' शब्द का ही प्रयोग करते हैं। इसीलिए कहा गया है :

Unfortunately, the words substituted for them (polite uses) often share their fate and

are, in their turn, displaced as their meaning becomes specialized into an offensive implication; but sometimes euphemisms become so stilted and affeteed that their formerly tabued equivalents are reinstated,[1]

§ ८० **व्यंग्य :** व्यंग्य भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन लाने का एक कारण है। इसके द्वारा शब्द का एक विशेष अर्थ अभिव्यंजित होता है। व्यंग्य का मूलस्वरूप तो यह है कि इसमें किसी शब्द के अभिधेयार्थ के विपरीत अर्थ प्राप्त होता है। व्यंग्य की शक्ति सभी भाषाओं में पाई जाती है। जो भाषा जितनी अधिक समृद्ध रहती है उसमें व्यंग्य की उतनी ही अधिक शक्ति होती है। यहाँ यह कहना भी अनुचित न होगा कि यद्यपि व्यंग्य की प्रवृत्ति अल्पाधिक रूप में सभी व्यक्तियों में होती है तथापि उसकी विशेष प्रवृत्ति उनमें पाई जाती है जो अनुभवी, सभाकुशल, कुशाग्रबुद्धि होते हैं।

इसके कुछ उदाहरण देखे जायँ। 'हैं तो **ढाई मुर्गी**, रोना इतना कि आसमान फट पड़े', 'आप बड़े **हज़रत हैं**, सात बजे सुबह बाज़ार गये थे, एक बजे दोपहर को लौटे हैं', 'आप बड़े **ईमानदार हैं**, नहीं तो मालिक का दीवाला कैसे होता'। उपर्युक्त वाक्यों में 'ढाई मुर्गी का मतलब है बहुत कम आदमी, स्त्री-पुरुष मिल कर दो और एक बच्चा' 'हज़रत' का अर्थ है 'दुष्ट, पाजी'। वैसे इसका एक अच्छा अर्थ होता है 'बादशाहों, महात्माओं, आदि की उपाधि'। यह अरबी शब्द है। 'ईमान' अरबी शब्द है और 'दार' फारसी। इसके अर्थ हैं 'धर्मविश्वासी; विश्वासपात्र; लेन-देन, व्यवहार में सच्चा; सच्चा; न्यायी'। किंतु, उदाहृत वाक्य में इसका अर्थ इसके मूल अर्थों के विपरीत है।

---

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 266.

'तीन बित्ते का आदमी' (बहुत छोटा या नाटा आदमी), 'कौवा' (बहुत चालाक, धूर्त) 'फूलसुंघी रानी' (बहुत कम खानेवाली लड़की और बहुत कम खानेवाले लड़के के लिए भी इसी का प्रयोग देखा जाता है), 'शुक्राचार्य' (काना), 'तैमूरलँग' (लंगड़ा), आदि प्रयोग व्यंग्य के प्रसंगों में ही चलते हैं।

इन उदाहरणों द्वारा लक्षित किया जा सकता है कि व्यंग्य में औपचारिक प्रयोग, अशोभन के लिए शोभन प्रयोग, आदि कई तत्व भी काम करते हैं। और, इन तत्वों के कारण भी शब्द का अभिधेयार्थ अपने से विपरीत अर्थ देता है।

§ ८१ **भावनात्मक बल :** भावनात्मक अथवा भावात्मक बल भी अर्थपरिवर्तन के कारणों में से एक है। भावनात्मक अथवा भावात्मक बल से हमारा तात्पर्य 'इमोशनल इंफैसिस' (Emotional emphasis) से है। भाषाशास्त्रियों ने विवेचना के बाद यह निष्कर्ष व्यक्त किया है कि शब्द बुद्धिसंगत अर्थ अभिव्यक्त करने के साथ ही कुछ भावनाएँ अथवा भाव भी ध्वनित करते हैं। इस भावनात्मक ध्वनि के कारण ही 'अपना घर' (Home) और सामान्य घर (House) के अर्थ में अंतर आ गया है, अन्यथा दोनों का अर्थ 'घर' ही है, किंतु 'अपना घर' (Home) के साथ भावना का संयोग हो गया है। कभी-कभी शब्द के साथ भावनामूलक अर्थ इतना प्रधान हो जाता है कि उसके बुद्धिमूलक अर्थ पर दृष्टि ही नहीं जाती। व्यवहार के विस्तारवश शब्द के बौद्धिक अर्थ का ह्रास बढ़ता जाता है। व्यवहार का यह विस्तार वक्ता द्वारा चेतनतापूर्वक पहिचाना नहीं जा सकता :

In addition to their intellectual content words suggest certain emotions. The word 'home' differs from 'house' chiefly in its emotional

content......Sometimes the emphasis on the emotional content of a word becomes so great that intellectual content is lost sight of...... The decrease in the logical content of the word involved an increase in its range of application. Such an extension of application cannot be consciously recognised by the speaker.[1]

व्यक्ति के नामों के साथ भी भावनात्मक बल का तत्व जुड़ा हुआ है। मान लीजिए कि किसी का एक नाम 'सुधीरचंद्र मिश्र' है और दूसरा पुकारने का नाम 'धीरू' है। 'सुधीरचंद्र मिश्र' के माँ-बाप, भाई, आदि निकट आत्मीय उन्हें 'धीरू' ही कहेंगे, उनके प्रधान नाम को नहीं लेंगे, क्योंकि 'धीरू' में एक विशेष प्रकार की आत्मीयता का भाव निहित हो गया है।

§ ८२ भावनात्मक बल के अंतर्गत ही शब्दों के मानसिक समूहीकरण के संबंध में भी विचार किया जा सकता है, जिस (मानसिक समूहीकरण) में परिवर्तन होने से शब्दों के अर्थ में भी परिवर्तन होता है। अंगरेजी शब्द 'शेड' (Shed=झोपड़ी) संज्ञा 'शेड' (Shade) का बोली का रूप है। इस संज्ञा 'शेड' (Shed) का संबंध क्योंकि क्रिया 'शेड' (Shed = झरने देना, बहने देना) से है; और, क्योंकि इससे सामासिक शब्द 'वाटर-शेड' (जल से बचने के लिए झोपड़ी, छाजन) से है, अतः हम समझते हैं कि 'शेड' (Shed) का अर्थ धूप से नहीं, वरन् जल से ही बचने के लिए छाजन है :

---

१. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 89.

Any change in the psychological grouping of words involves a shift of meaning. The word 'shed', 'a hut', is a dialectic form of the name 'shade'; but, since the word has come to be associated rather with the verb 'shed' and the compound 'water-shed', we think of a 'shed' as a protection, not from the sun, but from the rain.'[1]

§ ८३ किसी देश अथवा प्रदेश के व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक भावुक होते हैं। जैसे, योरोप में फरासीसी और भारत में बंगाली लोग। इन लोगों की भावुकतावश इनकी भाषाएँ भी अधिक भावप्रधान हैं, और ये कभी-कभी अतिशयोक्ति का व्यवहार अधिक करते हैं। परिणामतः इनकी भाषा के कुछ शब्द अपने वास्तविक अर्थ का त्याग कर देते हैं। फरासीसी और अंगरेज भी 'हॉरिबुल, टेरिबुल, ऑफुल, ड्रेडफुल', (horrrible, terrible, awful, dreadful), आदि शब्दों का व्यवहार अयथाप्रसंग करते देखे जाते हैं। जैसे, '**ड्रेडफुली** फनी स्टोरी', 'ऐन **ऑफुली** नाइस मैन', 'थैंक्स, **ऑफुली**', '**बैडली** नीडेड' (dreadfully funny story, an awfully nice man, thanks awfully, badly needed)। फल यह हुआ है कि उक्त प्रयोगों में स्थूल मुद्रित शब्दों का वास्तविक अर्थ लुप्त होकर इनका अर्थ मात्र 'भेरी, भेरी मच' (very, very much—अधिक, अत्यधिक) रह गया है। ऐसे ही बंगला में 'भयंकर, भयानक, प्रचंड, दारुण, भीषण', आदि का अर्थ भी 'अधिक, अत्यधिक' ही हो गया है।

---

१. वही, पृ० ४४।

इसी प्रकार जो लोग बात-बात में कसम खाया करते हैं उनकी कसम को व्यक्त करनेवाले शब्द भी निरर्थक हो जाते हैं।

§ ८४ **एक वर्ग के लिए एक व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रयोग का प्रचलन :** इस प्रसंग की विवेचना के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं 'विद्यार्थी'। 'विद्यार्थी' पुरुषबोधक शब्द है। 'विद्यार्थिनियाँ' भी विद्यार्थियों के साथ ही पढ़ती-लिखती हैं, किंतु व्यवहार में 'विद्यार्थी' के अंतर्गत 'विद्यार्थिनी' को भी ले लेते हैं। इस प्रकार पुरुषबोधक 'विद्यार्थी' द्वारा 'विद्यार्थिनी' का भी बोध हो जाता है। कानून की भाषा में भी 'पुंलिंग' 'वह' के अंतर्गत स्त्रीलिंग 'वह' भी आ जाती है (He includes she)। इस बोध का कारण यह है कि हम लड़कों की शिक्षा की भावना वा संस्कार से लड़कियों की शिक्षा की भावना वा संस्कार की अपेक्षा अधिक परिचित हैं। हम देखते हैं कि इस प्रकार के अर्थपरिवर्तन के कारण में वर्ग के किसी एक से परिचय का तत्व ही प्रधान है। ऐसे ही 'हाथी', 'मोर', आदि द्वारा हम उनके ही वर्ग की 'हथिनी', 'मोरनी' का भी बोध कर लेते हैं। जब हम कहते हैं कि 'उनके पास बहुत पैसा है', तब 'पैसा' का अर्थ मात्र एक विशेष सिक्का ही नहीं होता, वरन् 'रुपया, गिन्नी', आदि अर्थ भी होता है। इसीलिए यहाँ इसका अर्थ वस्तुतः है 'धन-दौलत'। बंगाल में लोग दोपहर को 'भात' खाते हैं और उत्तर भारत में 'रोटी'। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मात्र 'भात' अथवा 'रोटी' खाते हैं, इनके साथ और भी जो कुछ खाया जा सकता है उसको भी खाते हैं, मगर 'भात' तथा 'रोटी' में सब अंतर्भुक्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक वर्ग के लिए एक व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रयोग के प्रचलन से भी अर्थ में परिवर्तन आता है।

§ ८५ **भूल के कारण शब्दों के प्रयोग में अनिश्चय :** इस तत्व पर विचार करने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि भाषा के

पंडितों द्वारा भ्रमवश शब्दों के प्रयोग में अनिश्चय के कारण अर्थभेद अथवा अर्थपरिवर्तन बहुत कम देखा जाता है। सामान्यजन द्वारा ही ऐसा होना अधिक संभव होता है; और, तब इसका प्रचार समाज में हो जाने के कारण भाषाशास्त्रियों की दृष्टि ऐसे प्रयोगों की विवेचना की ओर जाती है। दूसरी बात यह ध्यान में रखने की है कि प्राचीन भाषाओं में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। 'असुर' और 'सुर' शब्द इसके बड़े प्रसिद्ध उदाहरण हैं। 'असु' का अर्थ 'प्राण' है और 'असुर' का अर्थ 'प्राणवान्'। यही इसका मूल अर्थ है। इस प्रकार यह पहले 'देवता' के अर्थ में प्रचलित था। बाद में इस शब्द के संबंध में लोगों को भ्रम हुआ, लोगों ने समझा कि यह 'अ+सुर' है, इसमें 'अ' निषेध-सूचक उपसर्ग है, जो 'सुर' (देवता) से संयुक्त है। अतः इसका अर्थ 'दानव' समझा गया। 'सुर' का अर्थ 'देवता' मान लिया गया। आज भी इन दोनों शब्दों के ये ही अर्थ प्रचलित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस (असुर) का अर्थ मूलतः 'देवता' था उसका अर्थ 'दानव' कर दिया गया। विचित्र विडंबना है! और, आज जिस (सुर) को हम 'देवता'-बोधक शब्द समझते हैं उसकी रचना का कोई शास्त्रीय उत्तर ही नहीं दिया जा सकता। इस विवेचना द्वारा यह स्पष्ट है कि शब्द के वर्णविन्यास (Spelling) को ठीक से न समझने के कारण भ्रमवश शब्द का कुछ का कुछ अर्थ समझ लिया गया और वह 'कुछ' अर्थ प्रचलित भी हो गया।

प्रसंग वर्णविन्यास का आ गया, जिस (वर्ण) में वर्णध्वनि रहती ही है और वर्णध्वनि के आधार पर मिथ्या व्युत्पत्ति (False etymology) का तत्व मिलता है, अतः कुछ विचित्र उदाहरण उपस्थित कर रहा हूँ : 'हुकालेसर' (ओंकारेश्वर महादेव, काशी में जिनको हुक्का चढ़ाया जाता है); 'लत्ताशाह' (पीर लतीफशाह, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में जिनकी कब्र के आसपास के पेड़ों में लत्ता बाँधकर

मन्नत मानी जाती है); 'रमाइ कार्थिक' (रोमन कैथोलिक)—Roman Catholic, (बंगाल के ग्रामीणों ने जिन्हें 'रमाइ कार्थिक' बना दिया है)। मूल की वर्णध्वनि का विकृत होकर मूलशब्द से एक विचित्र शब्द का बनना, विचित्र शब्द द्वारा उसकी मिथ्या-व्युत्पत्ति अथवा प्रतीति की कल्पना कर लेना; और, तब मिथ्या-व्युत्पत्ति के आधार पर किसी शब्द के मूलअर्थ से भिन्न अर्थ की धारणा (Conception) बना आचरण करना, इतनी प्रक्रिया यहाँ चल रही है। यह भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि यहाँ अर्थपरिवर्तन का उतना अधिक महत्त्व नहीं है जितना कि धारणा के परिवर्तन का महत्त्व है।

मध्यवर्गीय परिवार में एक नौकर था, परिवेशवश उसे अँगरेजी के शब्दों के प्रयोग का शौक हुआ, जो बराबर बढ़ता गया। कुछ दिनों बाद उक्त परिवार से उसकी नौकरी छूट गई। दूसरे परिवार में वह नौकरी ढूँढ़ने गया और गृहस्वामिनी से उसने कहा—'सुना है, आपको एक हस्बैंड (Husband) की जरूरत है।' इसके बाद उसका क्या हुआ होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है! स्पष्ट है कि उसे 'सर्वेंट' तथा 'हस्बैंड' शब्दों के अर्थ के संबंध में भ्रम था। हम देखते हैं अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित को शब्दों के अर्थ के संबंध में भ्रम रहता है। मजा तो यह है कि ऐसे भ्रमात्मक अर्थ ही कभी-कभी लोक में प्रचलित हो जाते हैं; और, शब्दों के अर्थों में परिवर्तन लाने के कारण होते हैं।

संस्कृत 'निर्भर' शब्द का अर्थ है 'अच्छी तरह भरा हुआ'। बंगला में इसका प्रयोग भ्रमवश 'आधृत' के अर्थ में प्रचलित हो गया। बंगला के प्रभाव से हिंदी में भी यह 'आधृत' के अर्थ में ही खूब चलता है। अंगरेजी शब्द 'ओब्लाइज' का अनुवाद 'बाधित' आज कल खूब चलता है, जिसके मूल अर्थ हैं 'जो रोका या दबाया गया

हो; जिसके साधन में बाधा हो, ग्रस्त'। किंतु इसका प्रयोग किया जाता है 'कृतज्ञ' के अर्थ में। 'धन्यवाद' का अर्थ है 'साधुवाद, प्रशंसात्मक वाणी', किंतु यह अंगरेजी के 'थैंक्स' (Thanks) के लिए बराबर व्यवहृत होता है, जिस (थैंक्स) का अर्थ है 'कृतज्ञता-भरी वाणी'।

§ ८६ **स्वयं शब्दों के अर्थ में अनिश्चयता :** एफ० जी० टकर (F. G. Tucker) ने इस संबंध में कहा है कि शब्द भाषा का एक सिक्का है। मान लीजिए कि कभी एक वक्ता का लक्ष्य इस सिक्के का मूल्य छह पैसा बतलाना है, किंतु एक श्रोता के लिए इसका मूल्य चार पैसा भी हो सकता है और नौ पैसा भी हो सकता है :

···a word is a coin or token of language, a speaker may intend his token to represent six pence, while to a listener its current value may either be only four pence or it may be nine pence.[1]

तात्पर्य यह है कि वक्ता और श्रोता की दृष्टि से भाषा के शब्दों के अर्थ में बड़ी अनिश्चयता है, अस्पष्टता है। वक्ता किसी शब्द का प्रयोग किसी अर्थ को दृष्टि में रखकर करता है और श्रोता अपनी परिस्थिति, विद्या-बुद्धि, आदि के अनुसार उसका कुछ अर्थ समझता है। किसी भाषा के सभी शब्दों के संबंध में तो ऐसा नहीं कहा जा सकता, परंतु उसमें कुछ शब्द ऐसे जरूर होते हैं। 'हिंसा, अहिंसा' ऐसे ही शब्द हैं और आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने इन शब्दों का इतने

---

१. I. J. S. Taraporewala : Elements of the Science of Language, p. 102 से उद्धृत।

प्रसंगों में व्यवहार किया है और इतने प्रकारों से इसकी व्याख्या की है कि इनका ठीक एक अर्थ निकाल लेना स्वयं गांधीवादियों के लिए भी कठिन है। 'अत्याचार', 'आततायी', 'अन्याय' शब्दों के अर्थों की व्यापकता इतनी बड़ी है कि इनका अर्थ भी आज बड़ा अस्पष्ट है। अतः इनके तथा ऐसे अन्य शब्दों के अर्थों में परिवर्तन बराबर लक्षित होता रहता है।

§ ८७ **व्यक्तिव्यवहृत शब्द के अर्थ में भेद :** इस तत्व का संबंध वक्ता और श्रोता के मन से अधिक है। 'सोसायटी' (Society) से भाषाशास्त्री 'लिंग्विस्टिक सोसायटी आव् इंडिया' (Linguistic Society of India) समझता है और थियोसोफिस्ट, 'थियोसोफिकल सोसायटी' (Theosophical Society) समझता है, जिसका संबंध 'एशियाटिक सोसायटी आव् बेंगाल' (Asiatic Society of Bengal) से है वह इसका तात्पर्य उक्त सोसायटी से लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिसका संबंध जिससे अधिक है, जिसके मन में जो प्रधानतः घूमता रहता है वह 'सोसायटी' से भिन्न-भिन्न 'सोसायटी' का अर्थ ग्रहण करता है। इसी कारण 'सोसायटी' का अर्थ यहाँ भिन्न-भिन्न 'सोसायटी' है। एक व्यक्ति इसका व्यवहार किसी 'सोसायटी' के अर्थ में करता है और दूसरा व्यक्ति किसी 'सोसायटी' के अर्थ में।

'धर्म' शब्द विभिन्न धर्मावलंबियों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ धारण करता है। ऐसा भी देखा जाता है कि किसी 'धर्म' के प्रतिष्ठाता के लिए 'धर्म' का जो अर्थ होता है उस 'धर्म' के अनुयायियों के लिए देश-काल-पात्र, आदि के भेद से वही अर्थ नहीं रह जाता। एक समय प्राचीन हिंदुओं के लिए 'धर्म' का बड़ा भारी महत्व था। जीवन, समाज, लोक-परलोक, आदि को जो धारण करे—जिन क्रिया-कर्मों पर ये आधृत हों—वह धर्म माना जाता था। इस प्रकार

इसका बड़ा ही व्यापक अर्थ था; किंतु, अब हिंदुओं के लिए यह मात्र 'विविध कर्मकांड' रह गया है। इस विवेचना से स्पष्ट है कि व्यक्ति द्वारा व्यवहृत शब्द के अर्थ में भेद होता है, जिस भेद के कारण भी अर्थपरिवर्तन घटित होता है।

§ ८८ **शब्द में एक तत्व का प्राधान्य :** जिस वस्तु अथवा व्यक्ति में जिस एक तत्व का प्राधान्य होता है उस तत्व को ही दृष्टि में रखकर उस वस्तु अथवा व्यक्ति से संबद्ध शब्द अथवा प्रयोग प्रचलित हो जाते हैं, अन्य तत्वों पर लोगों की दृष्टि ही नहीं जाती, क्योंकि वस्तु अथवा व्यक्ति में ये (अन्य तत्व) अति सामान्य अथवा गौण होते हैं। 'मुर्गा' को 'अरुणशिखा' कहा गया है, यह उसमें उसकी 'लाल चोटी या कलँगी' के प्राधान्य के कारण ही। इसी प्रकार 'लाल पगड़ी' से 'पुलिस' का और 'सफेद पाघड़ी' (पगड़ी) से 'पारसी पुरोहित' का बोध होता है। 'चोटी और डाढ़ी के मेल से ही भारत का उद्धार होगा'—इस वाक्य में 'चोटी' का तात्पर्य 'हिंदू' तथा 'डाढ़ी' का तात्पर्य 'मुसलमान' है। शब्द में एक तत्व के प्राधान्य के कारण अर्थ भेद अथवा परिवर्तन के इन उदाहरणों में हम यह देख रहे हैं कि कोई व्यक्ति अथवा वस्तु जब अपने बाह्य लक्षण द्वारा प्रमुख रूप से दृष्टि आकृष्ट करता है तब उससे संबद्ध शब्द में उस लक्षण का प्राधान्य होता है; और लक्षण के इस प्राधान्य के कारण मात्र उस (लक्षण) के उल्लेख से उस व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध हो जाता है। इसी कारण केवल 'लाल पगड़ी' कहने से 'पुलिस' का अर्थ लिया जाता है। 'लाल पगड़ी' का अभिधेयार्थ कुछ और है, मगर विशेष व्यक्ति के साहचर्य से इसका अर्थ 'पुलिस' हो गया है। इस प्रकार शब्द में एक तत्व के प्राधान्य के कारण अर्थपरिवर्तन उपस्थित होता है।

§ ८९ **गौण अर्थ का अचेतन रूप से संग्रहण :** फारसी के 'जामः' शब्द से विकसित उर्दू का 'जामा' शब्द है, जिसका प्रधान

अर्थ है 'चुननदार घेरे की एक पोशाक'। बंगला में यह 'कुर्ता' के लिए प्रयुक्त होता है। यही नहीं, औरतों के 'ब्लाउज' के लिए भी इसका प्रयोग चलता है। गुजराती में अँगरेजी शब्द 'कर्टेन' (Curtain) का विकसित रूप 'कुरतिन' है, जिसका अर्थ है 'मसहरी'। संस्कृत शब्द 'अवकाश' का अर्थ है 'देश', किंतु बंगला तथा हिंदी में इसका अर्थ भ्रम से कर लिया गया है -'विश्राम, फ़ुरसत'। इस प्रकार हम देखते हैं कि अचेतन रूप से अथवा भ्रम से प्रधान अर्थ में एक गौण अर्थ जोड़कर अर्थपरिवर्तन कर दिया गया है।

एफ० जी० टकर (F. G. Tucker) तथा आइ० जे० एस० तारापुरवाला (I. J. S. Taraporewala) उल्लिखित अर्थपरिवर्तन के कारणों की विवेचना संक्षेप में हमने की। किंतु इस विवेचना के आरंभ में ही इसका निर्देश किया जा चुका है कि अर्थपरिवर्तन के कारणों का ठीक-ठीक निर्धारण करना कठिन है। शब्द और अर्थ की इयत्ता इतनी बड़ी है कि इस क्षेत्र में निश्चित रूप से कुछ कहना संगत नहीं जान पड़ता। फिर भी भाषाशास्त्रियों की साक्षी पर अपने ढंग से इस संबंध में विवेचना करने का हमने प्रयत्न किया है।

१२

अर्थपरिवर्तन के व्याकरणिक कारण

§ ६० अर्थपरिवर्तन के कारणों के संबंध में भाषा और व्याकरण की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से नव्य भारतीय आर्यभाषा में तत्सम रूप में गृहीत हुए कुछ शब्दों में अर्थपरिवर्तन हो गया है। इस प्रकार विदित होता है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से नव्य भारतीय आर्यभाषा में आने के कारण तत्सम शब्दों में भी अर्थपरिवर्तन होता है। संस्कृत 'पाठशाला' का अर्थ हिंदी में प्रधानतः 'संस्कृत की पाठशाला' है। संस्कृत 'पंडित' का प्रधानतः हिंदी में अर्थ होता है 'संस्कृत का पंडित।' संस्कृत 'राग' का अर्थ बंगला तथा मराठी में 'क्रोध' हो गया है और संस्कृत 'आदर' से बंगला में अर्थ लिया जाता है 'स्नेह' का। संस्कृत 'विवेक' का अर्थ गुजराती में है 'सद्व्यवहार'। संस्कृत 'संबंधी (संबंधिन्)' का हिंदी में 'नातेदार' तथा बंगला में 'साला' अर्थ है। ऐसे ही और भी उदाहरण संगृहीत किए जा सकते हैं। संस्कृत 'धूमः' और ग्रीक 'थुमोस' (Thumos) एक ही हैं, मगर ग्रीक में इसका अर्थ 'आत्मा' है। संस्कृत 'आत्मा' तथा ग्रीक 'एट्मोस्' (Atmos) समान हैं। किंतु ग्रीक 'एट्मोस्' का अर्थ है 'धूम' वा 'वाष्प'।

§ ६१ ऊपर हमने प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के तत्सम शब्दों के नव्य भारतीय आर्यभाषा में आने पर उनके तत्सम रूप में ही अर्थपरिवर्तन पर विचार किया है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के तत्सम शब्द नव्य भारतीय आर्यभाषा में तद्भव होकर भी अपने अर्थ का परिवर्तन

करते हुए देखे जाते हैं। संस्कृत 'धी' का अर्थ 'कन्या' है। इसी के तद्भव रूप 'झी' का अर्थ बँगला में 'चाकरानी' है। संस्कृत 'गर्भिणी' का प्रयोग आजकल 'स्त्री की गर्भवती होने की स्थिति' का द्योतक है और इसी का तद्भव रूप 'गाभिन' शब्द द्योतन करता है 'पशु की मादा के गर्भवती होने की स्थिति' को। संस्कृत 'वाटिका' का तद्भव रूप 'वाड़ी' है, बँगला में इसका अर्थ 'घर' है। इसी के तद्भव रूप 'बारी' का हिंदी में अर्थ है 'फलों का बगीचा', जैसे, 'आम की बारी'। 'वाड़ी' के पुंलिंग रूप 'वाडो' का अर्थ गुजराती में 'आँगन' है, मराठी में इसका अर्थ 'मुहल्ला' है। संस्कृत 'गृह' का तद्भव रूप 'घर' के अर्थ हिंदी, गुजराती, मराठी में 'घर, मकान' हैं, किंतु बँगला में 'घर' का एक अर्थ 'कमरा' भी है। संस्कृत 'संबंधी' के हिंदी तद्भव रूप 'समधी' का अर्थ 'वर अथवा कन्या का पिता' है। ऐसे ही संस्कृत 'वैवाहिक' (विवाहसंबंधी) का तद्भव रूप बँगला में 'बेयाइ' है, इसका भी अर्थ 'वर अथवा कन्या का पिता' है। संस्कृत 'स्तन' स्त्री के और इसी का तद्भव 'थन' पशु की मादा के होता है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि तत्सम शब्द के तद्भव हो जाने के कारण भी अर्थपरिवर्तन होता है।

§ ६२ किसी भाषा में जब विदेशी शब्द गृहीत होते हैं, तब वे (विदेशी शब्द) अपने मूल अर्थ का त्याग करते हुए देखे जाते हैं, अर्थात् दूसरी भाषा में आकर विदेशी शब्द अर्थपरिवर्तन कर देते हैं। इस प्रकार किसी भाषा में विदेशी शब्द का आना भी अर्थपरिवर्तन का कारण होता है। फारसी 'शीर' या 'शेर' का अर्थ है 'सिंह'। उर्दू, हिंदी, गुजराती, आदि नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में इसका अर्थ हो गया 'बाघ'। अँगरेजी 'वेस्ट कोट' (Waist coat) गुजराती में 'बासकुट' हुआ और वह 'औरतों का ब्लाउज' के अर्थ में प्रचलित है। गुजराती का 'कलाक' अँगरेजी के 'क्लाक' (Clock) का तद्भव रूप है, जिसका अर्थ प्रचलित है 'घंटा' (Hour) के रूप में।

हिंदी में 'एक प्रकार का अन्न' को 'बजरी, बजड़ी' कहते हैं। ईसा की १७वीं शती की अंगरेजी में इसका रूप 'बज्री' (Bajri) मिलता है और इसका अर्थ मिलता है 'विभिन्न प्रकार का अन्न'। 'हाकिम' अरबी शब्द है, जिसके अर्थ हैं 'शासक, बड़ा पदाधिकारी, बड़ा अफसर'। उक्त शती की अंगरेजी में 'हाकिम' (Hakim) का अर्थ है 'जज, न्यायाधीश'। उक्त शती की अंगरेजी में 'मद्रास' (Madras) का अर्थ 'रूमाल' और 'मालाबार' (Malabar) का अर्थ 'एक प्रकार का रूमाल' है। 'बहादुर' फारसी शब्द है, जिसके अर्थ हैं 'वीर, शक्तिशाली'। १८वीं शती की अंगरेजी में इसका अर्थ है 'प्रसिद्ध व्यक्ति' (Distinguished personage)। अंगरेजी भाषा का 'चेयर' (Chair=कुर्सी) शब्द जब फरासीसी भाषा में आया तब उसका वर्णविन्यास (Chaire) तो बदल ही गया, अर्थ भी बदल गया, उसका अर्थ किया गया 'मंच' (Pulpit)। इन उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी भाषा में जब विदेशी शब्द गृहीत होते हैं तब उनके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। अतः किसी भाषा में विदेशी शब्दों के ग्रहण के कारण भी अर्थपरिवर्तन होता है।

§ ६३ हमने ऊपर निवेदन किया है कि व्याकरण की दृष्टि से भी अर्थपरिवर्तन के कारण पर विचार किया जा सकता है। अर्थ-परिवर्तन के कुछ व्याकरणिक कारणों की मीमांसा की जा रही है। उप-सर्ग द्वारा अर्थपरिवर्तन होता है, यह वैयाकरणों ने बराबर कहा है :

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार संहारविहार परिहारवत् ॥

वैदिक संस्कृत में उपसर्गों की स्थिति वाक्य में कहीं भी हो सकती थी। लौकिक संस्कृत में हम देखते हैं कि उपसर्ग धातु अथवा क्रिया-

पद के पूर्व स्थित होने अथवा जुड़ने लगे। इस प्रकार इनका संबंध धातु वा क्रिया से हो गया, वाक्य में इनकी सत्ता अलग नहीं रह गई। धातु वा क्रिया के अर्थ में महत् भेद उपस्थित करते हुए भी ये इस प्रकार उसके आश्रित हो गए। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की यह परंपरा नव्य भारतीय आर्यभाषा में भी आई है। साधु और संस्कृतनिष्ठ नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में अब भी संस्कृत के ही उपसर्ग चल रहे हैं, तथा उनके द्वारा धातु अथवा क्रिया में जिस प्रकार का अर्थ-परिवर्तन संस्कृत में होता था, उसी प्रकार का अर्थपरिवर्तन नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में भी होता है। 'अध' (अधपक्का), 'औ' (औगुन), आदि हिंदी के उपसर्ग हैं, किंतु इनका मूल संस्कृत ही है। हिंदी के 'भर' (भरपेट, भरबाँह, भरपूर) उपसर्ग में निश्चय ही अपनी विशेषता है। हिंदी में उर्दू से आए उपसर्ग प्रायः उर्दू शब्दों में ही लगते हैं। कुछ हिंदी शब्दों से भी जुड़ते हैं। जैसे, 'बेसुरा, बेजोड़, हरघड़ी, हरएक'।

§ ६४ प्रत्यय द्वारा भी अर्थ में भेद होता देखा जाता है। हिंदी का एक 'ई' प्रत्यय है, जो संबंध का बोध कराता है। जैसे, 'साहबी, अमीरी, नवाबी', आदि। इनका अर्थ है 'साहब, अमीर, नवाब संबंधी'। इस प्रत्यय के लगने के कारण कई स्थितियों में अर्थ-परिवर्तन का बोध होता है। एक उदाहरण देखिए, 'उनकी साहबी, अमीरी, नवाबी से परिवार का नाश हो गया।' इस उदाहरण में ये शब्द व्यंग्य तथा कटुता का बोध करा रहे हैं। आजकल 'ई' प्रत्यय लगाने से शब्दों का प्रायः ऐसा ही अर्थबोध होता है।

हिंदी का एक दूसरा 'हा' प्रत्यय है, यह भी संबंधसूचक ही है और प्रायः बोलियों में प्रचलित है, जैसे, 'पुरबिहा' (पूरब का), 'उतरहा' (उत्तर का), 'जुतहा' (जूते का), आदि। इस प्रत्यय के लगाने से भी आजकल अर्थपरिवर्तन देखा जाता है। यथा, 'मोटरहा

बाबू, रुपयहा आदमी, स्कूलिहा लड़का'। शब्दों में इस प्रत्यय के लगने से व्यंग्य, मिथ्या बड़प्पन, के भाव आ जाते हैं। इस प्रत्यय द्वारा आजकल ये ही भाव व्यक्त होते हैं।

§ ६५ नव्य भारतीय आर्यभाषा हिंदी-जैसी भाषाओं पर दृष्टि रखकर विचार किया जाय, तो ज्ञात होता है कि लिंग के द्वारा भी अर्थ-परिवर्तन होता है। तात्पर्य यह कि लिंगपरिवर्तन के कारण भी अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। हम जानते हैं कि स्त्रीलिंग छोटेपन का और पुंलिंग बड़प्पन का बोध कराता है। ऐसे ही स्त्रीलिंग द्वारा निर्बलता का और पुंलिंग द्वारा सबलता का बोध होता है। उदाहरणों से यह बात और स्पष्ट होगी :

स्त्रीलिंग	पुंलिंग
१ पोथी	१ पोथा
२ रस्सी	२ रस्सा
३ घंटी	३ घंटा
४ कुर्ती	४ कुर्ता
५ ओढ़नी	५ ओढ़ना

ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। हम देखते हैं कि स्त्रीलिंग शब्द पुंलिंग होकर अपने आकार-प्रकार, रूप-रंग, आदि बदल देते हैं, लघुता, निर्बलताबोधक से महत्ता, सबलता, बड़ेपन के बोधक हो जाते हैं।

ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं उनमें लिंगपरिवर्तन के कारण अर्थपरिवर्तन तो हुआ है, लेकिन दोनों लिंगों के शब्दों द्वारा यह स्पष्ट है कि शब्दाभिव्यक्त वस्तुओं की निर्माणसामग्री में मूलतः भेद नहीं है। कभी-कभी लिंगपरिवर्तन द्वारा अर्थपरिवर्तन के साथ ही वस्तुओं की निर्माण सामग्री में भी भेद हो जाता है। स्त्रीलिंग 'गगरी'

की निर्माणसामग्री 'मिट्टी' है और इसके पुंलिंग 'गगरा' की निर्माण-सामग्री 'धातु' है। अर्थात् 'गगरी' मिट्टी की होती है और 'गगरा' धातु का होता है।

विरलतः ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि जिनमें स्त्रीलिंगरूप बड़प्पन का और पुंलिंगरूप लघुता का द्योतन करता है। 'डोरा' पुंलिंग शब्द है, यह बोध कराता है 'सूत, धागा, तागा' का। किंतु इसका स्त्रीलिंगरूप 'डोरी' का अर्थ है 'रस्सी'। 'सूत' पतला, 'रस्सी' मोटी होती है।

लिंगपरिवर्तन के कारण अर्थपरिवर्तन तो हो जाता है, किंतु दोनों लिंगों में अर्थगत, सामग्रीगत, संबंधगत कुछ न कुछ संबंध जरूर रहता है, सामान्यतः हम यही देखते हैं। लिंगपरिवर्तन द्वारा अर्थ-परिवर्तन के कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें मूल अर्थगत कोई संबंध ही नहीं रहता। उदाहरणों से हमारी बात और स्पष्ट होगी। हिंदी के 'मौसी' शब्द का मूल है—सं० मातृष्वसा (मां की बहिन) 'मौसी' का पति पुंलिंग होकर संबंध से 'मौसा' कहलाता है। किंतु 'मातृष्वसा' या 'माँ की बहिन' अर्थ से इसका कोई संबंध नहीं है। मात्र 'मौसी' के आधार पर 'मौसा' बन जाते हैं। ऐसे ही 'दुलहा' शब्द का मूल है सं० 'दुर्लभ'। इसका स्त्रीलिंगरूप 'दुलहिन' है। मगर 'दुलहिन' से 'दुर्लभ' शब्द के अर्थ का कोई संबंध नहीं है, संबंध है केवल 'दुलहा' के स्त्रीलिंगरूप से, क्योंकि प्राचीन काल में (और आज भी) कन्या के लिए वर की खोज-ढूंढ़ की कठिनाई के कारण वर को 'दुर्लभ' कहा गया था, कुछ कन्या या वधू के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था।

§ ६६ संयुक्तक्रिया नव्य भारतीय आर्यभाषा की अपनी विशेषता है। यह भारतीय आर्यभाषा की इसी स्थिति या अवस्था में पूर्णतः

विकसित हुई। वैसे 'कीर्तिलता' जैसे ग्रंथों में इसके विकास का आरंभ हुआ मिलता है। संयुक्तक्रिया के कारण भी अर्थपरिवर्तन होता है। एक क्रिया से विभिन्न क्रियाएँ जुड़कर अर्थ में परिवर्तन उपस्थित करती हैं। 'मारना' तथा 'मार डालना, मार बैठना, मार उठना, मार चुकना, मार लाना, मार जाना,' आदि प्रयोगों के अर्थ में भेद है। वस्तुतः ऐसी ही संयुक्तक्रियाएं विशेष-विशेष स्थितियों अथवा अवसरों पर मुहावरे अथवा प्रयोग का रूप ग्रहण कर लेती हैं, और विशेष अर्थ धारण करती हैं।

§ ६७ समास द्वारा भी अर्थपरिवर्तन होता है। इसका अर्थ है संक्षिप्त, लघु; यह 'व्यास' से विरोधी अर्थ का बोध कराता है। इसी कारण समास में अभीप्सित के कथन का आयाम-विस्तार न कर, कारक-परसर्ग, वाक्यखंड, वाक्य, आदि का व्यवहार न कर संक्षेप में अपना अभीष्ट कह दिया जाता है। समासों में हम प्रायः यह देखते हैं कि उनमें पद कई हो सकते हैं, किंतु उनका भाव एक ही होता है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने इस संबंध में प्रभूत रूप से विचार किया है। आधुनिक विदेशी भाषाशास्त्रियों ने भी इसकी मीमांसा की है। ऊपर हमने अति संक्षेप में समास के स्वरूप की चर्चा की है। विदेशी भाषाशास्त्रियों का मत है कि समास के लिए पहली शर्त है कि उसमें दो पदों के रहते हुए भी वह मन पर एक भाव या विचार की छाप छोड़े :

It is a primordial condition that, in spite of the presence of two terms, the compound should make the impression of a single idea on the mind.[1]

१. Michel Breal : Semantics, p. 156.

इसके संबंध में यह भी कहा गया है कि अर्थ ही समास की रचना करता है, अर्थ ही उसके रूप को स्थिर करता है :

······"It is meaning, and nothing else, which makes the compound, and which finally determines its forms.[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्याकरण के क्षेत्र में समास अर्थतत्व के प्रधान विषयों में से एक है। हमें यहाँ मात्र यह निवेदन करना है कि समास से भी अर्थ का परिवर्तन होता है। 'कृष्णसर्प' का अभिधेयार्थ है 'काला साँप', किंतु समास के कारण यह सभी 'काले साँपों' के लिए प्रयोग में नहीं आता, यह परम विषाक्त एक साँप के लिए प्रयुक्त होता है, अँगरेजी में जिसे 'कोब्रा' (Cobra) कहते हैं। 'पेट पोछना लड़का' का सीधा मतलब तो है 'पेट पोछनेवाला लड़का', किंतु इसका वास्तविक प्रचलित अर्थ है 'जननी का अंतिम पुत्र, जिसके पश्चात् उसे कोई संतान न हो'। अँगरेजी के 'फादर-इन ला', 'ग्रैंड फादर' (Father-in-law, Grand father) का अर्थ 'ससुर', 'प्रपिता' भी इसी कारण हुआ है।

समासों में कुछ समान शब्दों के रहने पर भी समस्तपद के अर्थ में भेद रहता है। जैसे, 'मुँहमाँगा, मुँहफट, मुँहदेखा' में 'मुँह' तीनों समस्तपदों में है, किंतु तीनों के अर्थ में अंतर है, पहले का अर्थ 'अभीप्सित' दूसरे का अर्थ 'स्पष्ट वक्ता', तीसरे का अर्थ 'किसी व्यक्ति के सामने उसके मनोनुकूल करना, कहना', आदि है। ऐसे ही 'राजकन्या, राजपुरुष, राजमार्ग, राजाज्ञा, राजप्रासाद' के अर्थों में भेद है।

§६८ समास के ही प्रसंग से संबद्ध 'एकोच्चरित शब्दसमूह' की मीमांसा भी की जा सकती है, जिसे ब्रेअल (Michel Breal) ने 'आर्टिकुलेटेड ग्रुप्स' (Articulated Groups) कहा है।

---

१. वही।

भाषा में कुछ ऐसे शब्दसमूह होते हैं जिनमें शब्द व्यवहार द्वारा इतने दिनों से एक दूसरे से जड़ित हो जाते हैं कि हमारी बुद्धि उनका अस्तित्व अलग मान ही नहीं पाती। इसी को ब्रेअल एकोच्चरित शब्द-समूह कहते हैं :

Language contains words which have been so long united by usage, that, for our intelligence, they no longer exist separately. These I call Articulated Groups.[1]

ऊपर हमने देखा है कि एकोच्चरित शब्दसमूह में शब्द व्यवहार द्वारा बहुत दिनों से एक दूसरे से जड़ित हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि इसका संबंध परंपरा से होता है। एकोच्चरित शब्दसमूह हमारे पूर्वजों के हाथों द्वारा व्यवस्थितरूप से रचित होते हैं और ये मानों मान अथवा मानदंड के रूप में भविष्यत् युगों के लिए दिए जाते हैं :

They were thus adjusted by the hand of our ancestors, and provided for posterior ages as prop or lever.[1]

कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जिसमें एकोच्चरित शब्दसमूह न हों। इनमें अर्थपरिवर्तन का तत्व यह होता है कि समास की भाँति ही इनके प्रत्येक पद का अर्थ करने पर इनका प्रयोगप्रचलित अर्थ नहीं मिलता, अर्थात् अपने पदार्थ से भिन्न कुछ अर्थ प्रचलन अथवा व्यवहार के आधार पर ये अपने में निहित कर लेते हैं। समाज इनको कुछ अर्थ दे देता है, जो अर्थ इनके पदार्थ में नहीं रहता। हम एक उदाहरण लेते हैं। अब तो विद्या अथवा शिक्षा यंत्रवत् हो गई है, उसमें धार्मिक

---

१. वही, पृ० १६६ ।

अथवा आध्यात्मिक भावना रही ही नहीं। किंतु इसी आधुनिक युग में पहले (मेरे बचपन में भी !) गुरु विद्यार्थी को विद्यारंभ कराने के पूर्व उससे कहलाता था 'ओनामासीधम्'। यह एक एकोच्चरित शब्दसमूह है, जिसका मूल अर्थ है 'ॐ नमः सिद्धम्'। समाज को इस एकोच्चरित शब्दसमूह के पदार्थ से कोई मतलब नहीं है। प्राचीन काल से चला आ रहा है कि विद्यारंभ के पूर्व विद्यार्थी से गुरु 'ओनामासीधम्' कहलाता है। समाज ने यही अर्थ इस एकोच्चरित शब्दसमूह को दे रखा है कि यह विद्यारंभ के पूर्व विद्यार्थी से कहलवाया जानेवाला एक शब्द-समूह है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एकोच्चरित शब्दसमूह में, समास की भाँति ही, पदार्थ का महत्व नहीं, वरन् उसे लोकव्यवहार द्वारा दिए गए विशेष अर्थ, विशेष भाव का महत्व है, जो अर्थ या भाव परंपरा से उसमें निहित है। अपनी विवेचना के साक्ष्यस्वरूप हम ब्रेअल (Michel Breal) का कथन उपस्थित कर सकते हैं। उनका कहना है कि ये एकोच्चरित शब्दसमूह जिन तत्वों से रचित होते हैं उन तत्वों के केवल समस्त अर्थ को अपने में निहित नहीं रखते, वरन् वे कुछ ऐसे मूल्य भर प्राप्त कर लेते हैं जो ठीक-ठीक उनमें नहीं होते। ये मूल्य व्यवहार के अभ्यास की अवस्था के परिणामस्वरूप आते हैं :

Not only these Articulated Groups preserve the entire signification of the elements of which they are composed, they also acpuire a certain value which does not properly belong to them, but which results from the position which they habitually accupy in the phrase.[1]

---

1. वही, पृ० १६८ ।

पत्रों में 'यहाँ सब कुशल है। आपका कुशल श्री विश्वनाथ जी से चाहता हूँ' (पत्रों में इसे लिखने की एक प्रथा बन गई है), 'श्री पत्री लिखी शांतिनिकेतन से काशी', 'अत्र कुशलं तत्रास्तु', 'शेष शुभ', आदि एकोच्चरित शब्दसमूह ही हैं। विवाह के पत्रों में 'श्रीगणेशाय नमः', 'श्रीप्रजापतये नमः', आदि भी एकोच्चरित शब्दसमूह हैं। प्रशस्तियों में भी इनका स्वरूप प्राप्त है; जैसे, 'सिद्ध श्री सर्वोपरि विराजमान राजराजेश्वर', आदि-आदि भी एकोच्चरित शब्दसमूह हैं। अदालती तथा आफिस, आदि के कागज-पत्रों में भी ऐसे बँधे-बँधाये एकोच्चरित शब्दसमूह बहुत मिलेंगे। अदालती कागज-पत्रों में तो शतियों, अथवा युगों से कुछ एकोच्चरित शब्दसमूह व्यवहृत हो रहे हैं।

हमने आरंभ में ही निवेदन किया है कि अर्थपरिवर्तन के कारणों का निर्धारण बड़ा कठिन है; यह कहना बड़ा ही मुश्किल है कि अमुक-अमुक कारणों से ही अर्थपरिवर्तन होते हैं, क्योंकि अर्थपरिवर्तन के बहु-बहु कारण हो सकते हैं। हमने अर्थपरिवर्तन के प्रमुख-प्रमुख कारणों की विवेचना की है।

———

१४

अर्थपरिवर्तन के प्रकार

§ ६६ अर्थपरिवर्तन के कारणों की विवेचना की गई है। इन तथा इनके ही समान अन्य कारणों द्वारा घटित अर्थपरिवर्तन के कुछ प्रकार भी निर्धारित किए जा सकते हैं। किंतु, जैसे अर्थपरिवर्तन के कारणों का निश्चितरूपेण निर्धारण कठिन है वैसे ही अर्थपरिवर्तन के प्रकारों का ठीक-ठीक स्थिरीकरण भी मुश्किल है। इस कठिनाई का भी कारण है। अर्थपरिवर्तन में प्रधान रूप से हाथ होता है मन का, जो बड़ा अगम्य है। अतः एक शब्द का अर्थ स्थितिविशेष में किस दिशा को जायगा, अथवा परिवर्तित होगा, यह हम पहले से नहीं बता सकते। दूसरे शब्दों में हम यों कहें कि अर्थपरिवर्तन के नियम हम निश्चित रूप से निर्धारित नहीं कर सकते हैं। हाँ, अर्थपरिवर्तन हो जाने के बाद हम सदैव उस (अर्थपरिवर्तन) की विवेचना करते हैं। इसके बाद ही हम अर्थपरिवर्तन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण और परिवर्तन के कारणों का भी वर्गीकरण कर सकते हैं :

It is obvious that in meaning-change also the principal factor is the human mind. Hence we cannot predict the direction in which the meaning of a word may change under a given set of circumstances. In other word we cannot lay down any definite 'laws of semantics'. But 'after' the change has occurred we can always

explain it; and we can classify the various types of change of meaning and also tabulate the underlying reasons.'[1]

अर्थपरिवर्तन के प्रकारनिर्धारण में कठिनाई रहते हुए भी भाषा-तात्विकों ने विवेचन की सुविधा के लिए इसके तीन प्रधान प्रकार निर्धारित किए हैं : अर्थविस्तार, अर्थसंकोच; अर्थारोप अथवा अर्थादेश। अर्थविस्तार को अंगरेजी में विभिन्न नाम दिए गए हैं, यथा : 'जनरलाइजेशन,—वाइडेनिंग,—एक्स्पैंसन,—एक्सटेंशन आव् मीनिंग' (Generalization,-Widening,-Expansion,-Extention of Meaning)। अर्थसंकोच को अंगरेजी में 'स्पेशियलाइजेशन,—नैरोइंग,—रेस्ट्रिक्शन,—कांट्रैक्शन,—आव् मीनिंग' (Specialisation,—Narrowing, — Restriction, — Contraction of Meaning) कहा गया है। अर्थारोप अथवा अर्थादेश को 'ट्रांस्फार्मेशन,—ट्रांस्फरेंस आव् मीनिंग' (Transformation,—Transference of Meaning) कहते हैं।

§ १०० **अर्थविस्तार :** किसी शब्द के अर्थ का विस्तार हो जाता है। किंतु कब? जब वह एक ही प्रसंग में प्रयुक्त न होकर विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त होता है। एक शब्द के विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त होने के कारण प्रसंगाग्रह से उसके विभिन्न अर्थ भी होते जाते हैं। स्थूलतः अर्थविस्तार का स्वरूप यही है। अंगरेजी के 'क्लिएंट' (Client) शब्द का लैटिन में अर्थ था 'आज्ञाकारी, दास, सेवक, नौकर'। बाद में इसका अर्थ हुआ 'न्यायालय में उपस्थित किए जाने पर अपने रक्षक से रक्षा के लिए निवेदन करनेवाला'। आजकल डाक्टर, व्यापारी, वकील, आदि

१. I. J. S. Taraporewala : Elements of the Science of Language, p. 85.

के 'क्लिएंट' होते हैं। इन लोगों के 'क्लिएंट' का अर्थ इस (क्लिएंट) शब्द के मूल लैटिन के अर्थ 'आज्ञाकारी' से एकदम भिन्न है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस शब्द का प्रसंगाग्रह से विभिन्न अर्थ हुआ है। इस उदाहरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहले कोई शब्द अल्पसंख्यक द्वारा प्रयुक्त होता है, किंतु जब उसके सामान्यीकरण की ओर झुकाव होता है, अधिक प्रसंगों में उसके प्रयोग की प्रवृत्ति जब होती है तब प्रसंगाग्रह से उसके अर्थ में विस्तार हो जाता है। यहाँ एक और तथ्य की ओर भी दृष्टि जाती है। वह यह कि अर्थविस्तार होकर किसी शब्द के अर्थ में प्रथम-प्रथम कुछ उलटपलट का अनुभव किसी श्रोता और पाठक को हो सकता है :

The propensity to generalise what at first was made use of by the minority alone, accounts for some facts that are disconcerting at first sight.[1]

ऊपर हमने प्रसंगाग्रह से अर्थविस्तार का होना कहा है। तात्पर्य यह कि अर्थविस्तार बाह्य कारणों से होता है। इसके मूल में ऐतिहासिक घटनाएँ होती हैं :

Expansion has an exterior cause, results from the events of history.[2]

अर्थविस्तार का महत्व स्थापित करते हुए कहा गया है कि शतियों के दौरान में मानवता ने जो सामान्य भाव, विचार संग्रह किए हैं उनका नामकरण इस अर्थविस्तार के बिना नहीं किया जा सकता। काल तथा वायुमंडल को नाम कैसे दिया जाता :

The general ideas which humanity has

---

१. Michel Breal : Semantics, p. 104.

२. वही, पृ० ११५।

acquired in the course of centuries could not have been given names without this Expansion of meaning. How could time and space have been designated.[1]

इस प्रसंग का एक उदाहरण देखिए। आरंभ में 'टाइम' (time=काल – temp) का अर्थ 'ताप' (temperature, heat) था। इस प्रकार 'टाइम' तथा 'टेपोर' (tepor=सं० नपुंसक 'तपस्') का मूल एक ही है।

§ १०१ इसकी विवेचना भी की जा सकती है कि अर्थविस्तार किन-किन अवस्थाओं में होता है; अर्थात् इसकी भी मीमांसा संभव है कि अर्थविस्तार कहाँ-कहाँ और कब होता है। अर्थविस्तार की समस्त अवस्थाओं का निश्चितरूप से निर्धारण कठिन है। हम किन्हीं प्रमुख अवस्थाओं पर विचार कर रहे हैं। अर्थविस्तार केवल तब होता है जब किसी शब्द के साथ और शब्द उपस्थित रहते हैं :

Often, the widened meaning is recognized in the structure of the language, and appears only when certain accopanying forms are present.[2]

इस कथन के उदाहरणस्वरूप अँगरेजी 'मीट' (Meat=मांस) शब्द को लिया जाय, जिसका अर्थ है 'खाद्य मांस'। किंतु जब 'मीट एंड ड्रिंक' (Meat and drink=खाद्य और पेय) अथवा 'स्वीट मीट' (Sweet meat=मिठाई) का प्रयोग किया जाता है तब 'मीट'

१. वही, पृ० ११०।
२. Leonard Bloomfield : Language, p. 151

(मांस) का अर्थ हो जाता है 'सामान्य खाद्य'। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मीट' का अर्थ 'मांस' है, किंतु अन्य शब्दों के संयोग से इसका अर्थ 'खाद्य' भी हो गया है।

इसी प्रसंग में हम सामासिक शब्दों में अर्थविस्तार की विवेचना भी कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में अर्थविस्तार की ओर सभी की दृष्टि जाती है, यह प्रसंग बहुत ही स्पष्ट है। किंतु इसकी चर्चा यहाँ इसलिए की जा रही है कि विदेशी भाषाशास्त्रियों की दृष्टि भी इस ओर गई है :

Expansion of meaning is specially frequent in the case of compound word.[1]

'अश्व-गोष्ठ' का अर्थ है 'अस्तबल, घोड़े के रहने का स्थान'। किंतु 'गोष्ठ' का मतलब होता है 'गोशाला, गाय के रहने की जगह'। इस प्रकार 'गोष्ठ' का अर्थ 'गोशाला' तो है ही, सामासिक पद 'अश्व-गोष्ठ' में इस (गोष्ठ) का अर्थ 'स्थान' भी हो गया।

भाषा का एक अंग 'क्रिया' अर्थविस्तार के बहुत से उदाहरण उपस्थित करती है। एक भाषा किसी प्रकार जब एक बार किसी अभि-व्यक्ति को किसी कार्य का नामकरण करने के लिए चुनती है तब कोई विशेष परिस्थिति—कभी-कभी तटस्थ अथवा अचानक आई परिस्थिति—जो ऐसा नाम देती है, स्पष्ट रूप से भुला दी जाती है :

The verb is the part of speech which presents the most numerous examples of Expansion. When once Language has, in one way or another, made choice of an expression to designate an act, the circumstance—sometimes indifferent

१. Michel Breal : Semantics, p. 119.

or fortuitous—which caused it to be thus named, is promptly forgotten.[1]

इस तथ्य के उदाहरण उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इसमें संदेह नहीं कि क्रिया के क्षेत्र में अर्थविस्तार प्रभूतरूप से देखा जाता है। एक क्रिया के विभिन्न अर्थ प्राप्त हैं। इसकी यह स्थिति सभी भाषाओं में मिलती है।

किसी शब्द का सामान्यीकरण किसी विशेष अलंकार के कारण हो सकता है :

The generalisation of a word may be due in the first instance to some special figure of speech.[2]

उदाहरण अँगरेजी 'बॉडी' (Body) शब्द का लिया जा सकता है। इसका अर्थ है 'शरीर', किंतु जब 'ए बॉडी ऑव् मेन' (a body of men) का प्रयोग किया जाता है तब इस (बॉडी) का अर्थ होता है 'समूह'।

अर्थविस्तार में एक ही शब्द विभिन्न प्रसंगों में व्यवहृत होता है और उसका अर्थ बदलता जाता है, साथ ही उसका मूल अथवा प्रचलित अर्थ भी बना रहता है। 'बॉडी' का प्रचलित अर्थ 'शरीर' बना हुआ है और इसका एक अर्थ 'समूह' भी हो गया। यहाँ इस पर ध्यान रखना आवश्यक है कि मूल अथवा प्रचलित अर्थ से निकले अन्य अर्थों में किसी न किसी प्रकार की समानता अवश्य होनी चाहिए। इसे दूसरे प्रकार से और स्पष्टरूप में समझा जा सकता है कि मूल अथवा प्रचलित अर्थ द्वारा बोध हुई वस्तु में तथा मूल अथवा प्रचलित अर्थ से विकसित वा विस्तृत

---

१. वही, पृ० ११८।

२. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 246.

अर्थ द्वारा बोध हुई वस्तु में किसी न किसी रूपमें समानता अवश्य होनी चाहिए। 'शरीर' के अर्थ में प्रयुक्त 'बॉडी' जैसे विभिन्न अवयवों से समन्वित होता है वैसे ही विभिन्न व्यक्तियों के समन्वय को 'बॉडी=समूह' कहा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थविस्तार होने में साम्य का तत्व किसी न किसी रूप में बोधव्य में अवश्य रहना चाहिए।

§ १०२ हमने ऊपर विदेशी भाषाशास्त्रियों की मान्यताओं को दृष्टिपथ में रखकर अर्थविस्तार की मीमांसा की है। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी इसके संबंध में अपनी दृष्टि से विचार किया है। इनकी मान्यताओं तथा विदेशी भाषाशास्त्रियों की एतत्संबंधी मान्यताओं में अनेक अंशों में साम्य दृष्टिगत होता है। अर्थविस्तार पर हम यास्क, पाणिनि, पतंजलि, भर्तृहरि की मीमांसा की ओर दृष्टिपात कर रहे हैं।

यास्क ने शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके विभिन्न अर्थों की विवेचना 'निरुक्त'में विभिन्न स्थलों पर की है। उनकी इस विवेचना के आधार पर हम अर्थविस्तारसंबंधी मीमांसा कर सकते हैं। यास्क[1] ने 'गो' शब्द के विभिन्न अर्थों का उल्लेख कर उनकी विवेचना भी की है। उन्होंने एक ही 'गो' शब्द के पृथ्वी, पशुविशेष (गो), आदित्य, रश्मि, चंद्र, आदि अर्थ बताए हैं। इसके ये अर्थ होने के संबंध में निर्वचन कर उन्होंने विश्लेषण भी की है। 'गो' के इतने अर्थ होने का कारण स्पष्ट है। बात यह है कि इनमें गमनशीलता है। इन सभी में एक ही गुण, एक ही धर्म है, अतः इन सभी को 'गो' नाम दिया गया। इस प्रकार यहाँ 'गो' के अर्थविस्तार का कारण गुणसाम्य है। इनमें समान गुण, समान धर्म है गमनशीलता। इसे यों भी कह सकते हैं कि समान धर्म के कारण यहाँ अर्थविस्तार हुआ है :

---

1. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्त, २—५-६।

यथमन्येषामपि सत्त्वानां संदेहा विद्यंते, तानि चेत्समान कर्मांणि समान निर्वचनानि, नाना कर्मांणि चेन्नानानिर्वचनानि यथार्थं निर्वक्तव्यानीति ।[१]

यास्क की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थविस्तार का मूल कारण होता है सादृश्य । एक उदाहरण देखिए । गति के अर्थ में 'पाद' शब्द का प्रयोग होता है :

'पादः—पद्यते' र्गत्यर्थस्य ।[१]

'पाद' शब्द का प्रधान अर्थ है 'पाँव, पैर' । पशु के चार पैर होते हैं । पशु का एक पैर उसके चार पैरों का चतुर्थांश है, अतः 'चतुर्थांश' के लिए भी 'पाद' का प्रयोग प्रचलित हुआ । इसी प्रकार श्लोक के चतुर्भाग को भी 'पाद' कहा गया है । ऐसे अन्य उदाहरण भी यास्क ने दिए हैं । यहाँ हम देखते हैं कि सादृश्य के कारण ही 'पाद' के इतने अर्थ हुए हैं ।[१] यास्क ने 'कक्ष' (काँख) शब्द की विवेचना की है । कहा है, यह पहले 'अश्व' के 'कक्ष' के लिए प्रयुक्त था, बाद में मनुष्य के 'कक्ष' के लिए भी प्रयुक्त होने लगा । यहाँ वस्तु की समता, सादृश्य के कारण अर्थविस्तार हुआ है[२] । 'सोम' के लिए 'मधु' शब्द प्रयुक्त था । 'सुरा, शहद', आदि में 'सोम' की भाँति ही मादक गुण है, इसलिए इनके लिए भी 'मधु' का प्रयोग प्रचलित हो गया । साहचर्य अथवा रसहरण के कारण 'सूर्य' को उषा का 'वत्स' कहते हैं ।[३]

यास्क ने अर्थविस्तार की जो मीमांसा की है उसे संक्षेप में हमने यहाँ उपस्थित किया है । यास्क के मत के अनुसार अर्थविस्तार के

१. वही, २-७ ।
२. वही, २-२ ।
३. वही, २-२० ।

लिए सादृश्य की आवश्यकता होती है। यह सादृश्य वस्तु, गुण, कर्म, आदि संबंधी हो सकता है। उनके मत के अनुसार अर्थविस्तार के लिए साहचर्य की भी आवश्यकता है।

§ १०३ पाणिनि ने सादृश्य द्वारा अर्थविस्तार का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि किसी की मूर्ति, किसी के चित्र को भी उसी के नाम से पुकारते हैं। यथा, रवींद्रनाथ की मूर्ति और उनके चित्र को भी रवींद्रनाथ ही कहते हैं :

इवे प्रतिकृतौ। ५-३-९६[1]

§ १०४ अर्थविस्तार के संबंध में पतंजलि का मत भी द्रष्टव्य है। इन्होंने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि अर्थविस्तार कैसे होता है? कहते हैं कि अर्थविस्तार तब होता है जब विशेष की अविवक्षा और सामान्य की विवक्षा होती है। इसका तात्पर्य यह कि जब विशेष के संबंध में कहने की हमारी अनिच्छा और सामान्य के संबंध में कहने की इच्छा होती है :

असरूपाणां युवस्थविरस्त्रीपुंसानां विशेषश्चाविवक्षितः सामान्यं च विवक्षितम्। विशेषस्याविवक्षितत्वात्सामान्यस्य च विवक्षितत्वात्सरूपाणामेकशेष एकविभक्तावित्येव सिद्धम्। १-२-३[2]

विचार कर देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि अर्थविस्तार की स्थिति में अर्थ की प्रवृत्ति विशेष से सामान्य की ओर होती ही है।

साहचर्य के कारण अर्थविस्तार संबंधित मीमांसा की चर्चा हमने ऊपर की है। इस संबंध में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के मंतव्य

---

१. अष्टाध्यायी।

२. महाभाष्य।

का उल्लेख किया गया है। पतंजलि ने साहचर्य द्वारा अर्थविस्तार के संबंध में अनेक स्थलों पर विचार किया है। पतंजलि जब यह कहते हैं कि शब्द जिस-जिस विशेष के साथ संबद्ध होता है उस-उस (विशेष) का विशेषक हो जाता है तब अर्थविस्तार की ही विवेचना करते हुए देखे जाते हैं :

शब्दस्तु खलु येनयेन विशेषेणाभिसंबध्यते तस्यतस्य विशेषको भवति। १-१-५[1]

इस तत्व की मीमांसा अन्यत्र वे और गंभीरतापूर्वक करते हैं :

विशेषण विशेष्ययोरुभय विशेषणत्वादुभययोश्च विशेष्यत्वादुपसर्जनत्वस्याप्रसिद्धिः। कृष्णतिला इति कृष्णशब्दोयं तिलशब्देनाभिसंबध्यमानो विशेषणवचनः संपद्यते, तथा तिल शब्दः कृष्णशब्देनाभिसंबध्यमानो विशेषणवचनः संपद्यते, तदुभयं विशेषणं भवत्युभयं च विशेष्यम्। विशेषण-विशेष्ययोरुभयविशेषणत्वादुभयोश्च विशेष्यत्वादुप-सर्जनत्वस्याप्रसिद्धिः। २-१-१[2]

यहाँ पतंजलि का कथन यही है कि विशेषण तथा विशेष्य दोनों में से विशेषण कभी विशेष्य भी हो सकता है और विशेष्य कभी विशेषण भी हो सकता है। 'कृष्ण तिल' भी कहा जायगा और 'तिल कृष्ण' भी कहा जायगा। ऐसी स्थिति में प्रसंग, परिस्थिति के अनुसार अर्थ-विस्तार देखा जा सकता है। इस प्रकार पतंजलि ने इसे स्पष्टतर रूप से मीमांसित किया है कि शब्द जिस-जिस विशेष से संबद्ध होगा उस-उसका विशेषक होगा। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत करना अनावश्यक

---

१. वही।

२. वही।

न होगा। जब हम कहते हैं कि 'काली गाय, काला आदमी, काला सूत' तब गाय, आदमी, सूत के कालेपन में जो सूक्ष्म अंतर होगा उस अंतर को विभिन्न विशेष्य के साथ यह एक 'काला' विशेषण बोध कराएगा। इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि यहाँ एक 'काला' का भी अर्थविस्तार हुआ है, क्योंकि वह विभिन्न प्रकार के 'कालेपन' का बोध प्रसंगाग्रह से कराता है।

पतंजलि ने एक स्थान पर कहा है कि साहचर्य से तत्शब्दता आ जाती है :

साहचर्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति। ४-२-१[1]

इसे पतंजलि के एक उदाहरण द्वारा ही स्पष्ट किया जाय। वे कहते हैं : 'वसंत सहचरितमध्ययनम्—वसंतोऽध्ययनमिति'। यहाँ वसंत ऋतु में अध्ययन के कारण 'वसंत अध्ययन' कहा गया है। इस पर 'प्रदीप' की टीका यों है : 'यत्र वसंतो वर्ण्यते, यद्वा वसंतेऽधीयते तत्साहचर्यात्ताच्छब्द्यं लभते'। यहाँ हम देखते हैं कि 'वसंत' द्वारा 'वसंत ऋतु' तथा 'वसंत काल' दोनों का बोध हो रहा है।

एकदेश साहचर्य से भी अर्थविस्तार होता है। एक वस्तु में संनिहित अन्य वस्तुएँ भी उसी वस्तु के नाम से अभिहित होती हैं। गंगा-यमुना में अनेक नदियाँ आकर मिलती हैं, तो वे भी गंगा-यमुना ही कहाती हैं :

तदेकदेश विज्ञानाद्वा पुनः सिद्धमेतत्। तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते। तद्यथा—गंगायमुना...। अनेका नदी गंगां यमुनां च प्रविष्टा गंगायमुना ग्रहणेन गृह्यते। १-१-६[2]

---

१. वही।

२. वही।

जब यह प्रश्न किया गया कि गुणवाचक शब्द होते हुए भी वह (शब्द) द्रव्यवाचक कैसे हो जाता है तब पतंजलि ने जो उत्तर दिया है वह अर्थविस्तार संबंधी ही उत्तर है। कहते हैं कि शुक्ल गुणयुक्त वस्तु को शुक्ल तथा कृष्ण गुणयुक्त वस्तु को कृष्ण कहते हैं। स्पष्ट है कि शुक्ल तथा कृष्ण गुण द्वारा शुक्ल तथा कृष्ण गुण से युक्त वस्तु या द्रव्य का बोध कराया जाता है। इस प्रकार गुण के साहचर्य द्वारा गुणी वस्तु, द्रव्य का बोध होता है :

कथं पुनरयं गुणवचनः सन् द्रव्यवचनः संपद्यते ?
आरभ्यते तत्र मतुब्लोपः-गुण वचनेभ्यो मतुपो लुग् इति।
तद्यथा—शुक्लगुणः शुक्लः, कृष्ण गुणः कृष्णः। एवं
खंडगुणः खंडः। २-१-२[1]

'मोहन स्त्री है' और 'मालती पुरुष है;' ऐसे प्रसंगों में हम देखते हैं कि पुरुष में स्त्री के अर्थ का और स्त्री में पुरुष के अर्थ का संनिधान किया गया है। पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बना दिया गया है। इस प्रकार यहाँ पुरुषबोधक 'मोहन' तथा स्त्रीबोधक 'मालती' शब्दों का अर्थविस्तार हुआ है, अन्य लिंग के शब्द का व्यवहार अन्य लिंग में हुआ है। पतंजलि का कथन है कि ऐसा विशेष की अविवक्षा तथा सामान्य की विवक्षा के कारण हुआ है (१–२–१)।[2] इस प्रकार के व्यवहार अथवा प्रयोग लक्षणा की शक्ति द्वारा घटित होते हैं।

पतंजलि के आधार पर की गई लक्षणा की विश्लेषणा हमने यथास्थान देखी है। इसके द्वारा भी अर्थविस्तार होता हुआ देखा जाता है। पतंजलि के मतानुसार यह चार प्रकार से संपन्न होता है, अर्थात् तात्स्थ्य, ताद्धर्म्य, तत्सामीप्य और तत्साहचर्य प्रकारों से :

---

१. वही।
२. वही।

चतुर्भिः प्रकारैरेतस्मिन् 'सः' इत्येतद्भवति—तात्स्थ्यात्, ताद्धर्म्यात्, तत्सामीप्यात्, तत्साहचर्यादिति । १-२-३[1]

इन सभी के उदाहरण भी यथास्थान प्रस्तुत किए गए हैं। उन उदाहरणों के आधार पर निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अवस्थाओं में अर्थविस्तार संभवपर होता है।

हमने देखा है कि पतंजलि ने अर्थविस्तारसंबंधी जो विवेचना की है वह यास्क तथा पाणिनि की विवेचना से व्यापक है। अर्थविस्तार के विभिन्न पक्षों को दृष्टिपथ में रखकर पतंजलि यह विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए देखे जाते हैं।

§ १०५ अर्थविस्तारसंबंधी भर्तृहरि के मत की मीमांसा के लिए हम उनका दो श्लोक उद्धृत कर रहे हैं। इनसे ज्ञात होगा कि अर्थ-विस्तार होता है किन स्थितियों में :

क्वचिद्गुणप्रधानत्वमर्थानामविवक्षितम् ।
क्वचित्साक्षिध्यमप्येषां प्रतिपत्तावकारणम् ।
यथानुपात्तं शब्देन तत्कस्मिंश्चित्प्रतीयते ।
क्वचित्प्रधानमेवार्थो भवत्यन्यस्य लक्षणम् ॥ २-३०६-७[2]

कहने का तात्पर्य यह कि कहीं अर्थ का गुणप्रधानत्व अविवक्षित रहता है। कहीं अर्थों का सान्निध्य भी प्रतीति अथवा बोध का कारण नहीं होता। शब्द से जो अप्राप्त अर्थ है उसका कहीं बोध होता है। कहीं प्रधान अर्थ ही अन्य अर्थ का लक्षण होता है। पुण्यराज ने इन श्लोकों की टीका करते हुए कहा है कि अर्थ के चार प्रकार अभिव्यक्त करना इनका उद्देश्य है : १. गुणप्रधानता का विपर्यय; २. पदार्थ के एक देश की अविवक्षा; ३. सभी पदार्थों की अविवक्षा; ४. उपात्त

१. वही।
२. वाक्यपदीयम्।

अथवा प्राप्त अर्थ के अपरित्याग से ही अन्य अर्थ का उपलक्षण अथवा उसकी प्राप्ति :

अत्र च गुणप्रधानता विपर्ययः पदार्थैक देशाविवक्षा, सकल पदार्थाविवक्षा, उपात्तपदार्थापरित्यागेनैवान्यार्थोपलक्षणमित्येवमनेन श्लोक द्वयेन प्रकार चतुष्टयस्योद्देशः कृतः ॥[1]

उल्लिखित अर्थ के चार प्रकारों की अभिव्यक्ति में से द्वितीय तथा चतुर्थ अर्थविस्तार की विवेचना के विषय हैं, अर्थात् पदार्थ के एक देश की अविवक्षा तथा उपात्त अथवा प्राप्त अर्थ के अपरित्याग से ही अन्य अर्थ का उपलक्षण अथवा उसकी प्राप्ति। पदार्थ के एक देश अथवा अंश का अविवक्षा के उदाहरण सप्तपर्ण, तैल, गोष्ठ, आदि हैं। उपात्त अथवा प्राप्त अर्थ के अपरित्याग से ही अन्य अर्थ का उपलक्षण अथवा उसकी प्राप्ति का उदाहरण भर्तृहरि यों देते हैं :

काकेभ्यो रक्ष्यतां सर्पिरिति बालोपि चोदितः।
उपघातपरे वाक्ये न श्वादिभ्यो न रक्षति ॥ २-३१४[1]

इस श्लोक की टीका करते हुए पुण्यराज कहते हैं :

सर्पिषः काकेभ्यो रक्षणमत्र विशिष्टमेव विहितमप्युपघातमात्रनिवारणफलं पर्यवस्यतीति तदेव तत्र प्रयोजकं बोद्धव्यम्।[1]

यहाँ 'कौओं से घी की रक्षा' का अर्थ है 'काक' से अतिरिक्त अन्य पशु-पक्षियों से भी इसकी रक्षा। इस प्रकार 'काक' अन्य पशु-पक्षियों का अर्थ भी यहाँ बोध कराता है। यों यह भी अर्थविस्तार के स्वरूप को उपस्थित करता है।

साहचर्य द्वारा अर्थविस्तार की मीमांसा प्राचीन भारतीय भाषातात्विकों ने की है, उनकी विवेचना भी हमने ऊपर देखी है। इस

---

१. वही।

प्रसंग के संबंध में भर्तृहरि ने भी विचार किया है; इनके कथन का तात्पर्य यह है कि शब्द विवक्षित अर्थ तो प्रकट करता ही है, साथ ही संसर्ग, सान्निध्य वा साहचर्य से अविवक्षित अर्थ का भी बोध कराता है। इस विचार द्वारा हम देखते हैं कि साहचर्य द्वारा शब्द का अर्थविस्तार होता है। भर्तृहरि का कथन देखिए :

घटादिषु यथा दीपो येनार्थेन प्रयुज्यते।
ततोऽन्यस्यापि साम्निध्यात्स करोति प्रकाशनम्॥
संसर्गिषु तथाऽर्थेषु शब्दो येन प्रयुज्यते।
तस्मात् प्रयोजकादन्यानपि प्रत्याययत्यसौ॥
निर्मन्थनं यथाऽरण्योरग्न्यर्थमुपपादितम्।
धूममप्यनभिप्रेतं जनयत्येकसाधनम्॥
यथा शब्दोऽपि कस्मिंश्चित्प्रत्याय्यार्थो विवक्षिते।
अविवक्षितमप्यर्थं प्रकाशयति सन्निधेः॥ २-३००-३[1]

समानता के आधार पर अर्थविस्तार का होना भी भर्तृहरि ने लिखा है। उनका कथन है कि किसी सामान्य अथवा समानता का आधार लेकर अर्थ समान के अनुरूप अभिव्यक्त होता है, अर्थात् समानता के कारण एक शब्द अपने मूल अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी देता है :

यथानिर्देशमर्थाः स्युर्येषां शास्त्रं विधायकम्।
किंचित् सामान्यमाश्रित्य स्थिते तु प्रतिपादनम्॥
३-(पुरुषसमुद्देशः) ८[2]

इस समानता अर्थात् गुण की समानता के कारण पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष कहा जाता है, ऐसा विवेचन भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय'

---

१. वही।
२. वही (त्रिवेंद्रम्)।

के तृतीय कांड में किया है। इसके द्वारा भी अर्थविस्तार होता है। ऐसी मीमांसा पतंजलि ने भी की है, जिसे हम देख चुके हैं।

हमने अर्थविस्तारसंबंधी विदेशी तथा प्राचीन भारतीय भाषा-तात्त्विकों के मत के आधार पर यहाँ विवेचना प्रस्तुत की है। इसे देखने से ज्ञात होता है कि विदेशी तथा भारतीय भाषाशास्त्रियों के मतों तथा विभिन्न प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के भी मतों में अनेक प्रसंगों में साम्य है।

§ १०६ **अर्थसंकोच :** हमने ऊपर अर्थविस्तार की विवेचना की है। अर्थतत्व की विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि शब्द का अर्थ अनेक अंशों में पहले विस्तार की ओर जाता है, और संभवतः अस्पष्ट रहता है; और बाद में उसकी प्रवृत्ति अधिकतर निश्चयता, संकोच की ओर जाती है :

For the most part, the meaning of the words, at first general, and perhaps vague, tend to become more and more specific.[1]

इस तथ्य के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। संस्कृत में 'मृग' पहले 'पशु' मात्र के लिए प्रयुक्त होता था, बाद में यह पशुविशेष 'हिरण' के लिए प्रयुक्त होने लगा। नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में भी यह 'हिरण' के लिए ही प्रचलित है। अँगरेजी का 'डीयर' (Deer) शब्द भी पहले 'पशु' मात्र का अर्थ देता था, बाद में पशुविशेष 'हिरण' का अर्थ देने लगा। इसके पर्यायवाची जर्मन (Tier) शब्द का भी यही इतिहास है। बाइबिल में यह (डीयर) 'पशु' अर्थ में ही व्यवहृत है। शेक्सपीयर ने भी इसका प्रयोग इस अर्थ में किया है : 'माइस एंड रैट्स एंड सच स्माल डीयर' (Mice and rats

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 252.

and such small deer) ।[1] इसी प्रकार अँगरेजी 'फाउल' (Fowl) का मूल अर्थ था 'पक्षी' मात्र, आजकल इसका अर्थ है 'मुर्गा या मुर्गी' (Cock or hen), जो एक पक्षीविशेष है। फारसी 'मुर्ग़' का भी अर्थ 'पक्षी' मात्र था नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में इसका अर्थ एक 'पक्षी' विशेष 'मुर्गा या मुर्गी' हो गया है।

ऊपर हमने अर्थसंकोच के कुछ उदाहरण देखे हैं। इनसे यह स्पष्ट हुआ है कि शब्द का अर्थ विस्तार से संकोच की ओर जाता है। इस प्रकार अर्थ अपने विस्तार की प्रक्रिया पार कर संकोच के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। ऊपर के उदाहरणों से यह बात निश्चित हो गई है। संभवतः इसी कारण भाषातात्विकों का मत है कि अर्थविस्तार और अर्थसंकोच पारस्परिक रूप से इतनी घनिष्ठतापूर्वक संबद्ध हैं कि इनकी विवेचना पृथक् रूप से नहीं की जा सकती। भाषा में शायद ही कोई ऐसा शब्द हो जो इन दोनों क्रियाओं का फल प्रदर्शित न करे :

Generalization and specialization of words are so closely associated that they can hardly be treated separately, for there is scarcely a word in the language which does not show the results of both processes.[2]

शब्दों के अर्थ के विस्तार और संकोच की विवेचना और गंभीरतापूर्वक की जा सकती है। बहुत से शब्दों में अर्थ के विस्तार और संकोच क उलझे हुए अथवा संकुल इतिहास को यदि ढूँढ़ें और इस (इतिहास)

---

१. King Lear, Act III, Scene, 4.

२. J. B Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 241.

की संपूर्णतः विवेचना करें तो यह जाति (Race) के बौद्धिक जीवन के निश्चित रूपों के चित्र दे सकता है :

...we shall expect to discover in many words a complicated history of generalization and specialization which, if we could analyse it completely, would depict the intellectual life of the race in not uncertain colors.[1]

एक उदाहरण लें। अंगरेजी के 'मिनिस्टर' (Minister) शब्द का मूल लैटिन है, जिसमें इसका अर्थ था 'सेवक' (Attendant, servant)। आज अँगरेजी में इसका अर्थ 'मंत्री' है। इसके इस अर्थसंकोच द्वारा हम यह जान सकते हैं कि अँगरेजों में कैसे 'राजा अथवा बादशाह के नौकर' की भावना को पार कर 'Minister' (मंत्री) एक महत्वपूर्ण पद का अधिकारी माना जाने लगा और उसका कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत समझा गया। हमने तो अपनी तुच्छ बुद्धि द्वारा अँगरेजी में 'मिनिस्टर' (Minister) शब्द के अर्थसंकोच द्वारा इसकी विवेचना यों उपर्युक्त प्रकार से कर दी। परंतु अर्थसंकोच की व्याख्या करना बड़ा कठिन है; क्योंकि, अंततः एक रूप की प्रत्येक गढ़न किसी एक व्यावहारिक परिस्थिति में घटित होती है, जो (रूप) अर्थ की सभी संभावनाएँ अपने में धारण नहीं भी कर सकता है :

Narrowed meanings are hard to define, because after all, every occurrence of a form is prompted by some one practical situation which need not contain all the possibilities of meaning.[2]

---

१. वही।

२. Leonard Bloomfield : Language, p. 151.

एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है। 'आम' शब्द कहने से विभिन्न व्यक्तियों की दृष्टि से इसका विभिन्न रूप हो सकता है—यह 'कच्चा, पका, हरा, पीला, सिंदूरी', अनेक रूपों-रंगों का हो सकता है।

अर्थसंकोच के क्षेत्र में परिस्थिति का काफी महत्त्व है। इसका निर्णय संदर्भ अथवा उपस्थित परिस्थिति के आधार पर ही होना चाहिए :

......these special meanings......must be determined by the context or by attendant circumstances.[1]

अब तक हम तुलनात्मक दृष्टि से अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच की विवेचना करते रहे हैं। विचारपूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि अर्थसंकोच के तथ्य अर्थविस्तार के तथ्य से किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अर्थसंकोच के तथ्य अपने प्रभाव की दृष्टि से संभवतः अधिक आकर्षक अथवा महत्त्वपूर्ण हैं :

The phenomena of 'specialization' are no less important than those of generalization, and they are perhaps even more striking in their effects.[2]

अब विचारणीय यह है कि अर्थसंकोच किस अवस्था में होता है। जब किसी शब्द का अर्थ विभिन्न प्रसंगों में प्रचलित रहता है और कालांतर में किसी एक अथवा कुछ प्रसंगों में व्यवहृत होने लगता है

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 256.
२. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, pp. 247-8

तब अर्थसंकोच का स्वरूप संमुख आता है। अर्थात्, जैसा कि हमने पहले देखा है, अर्थविस्तार के पश्चात् अर्थसंकोच की अवस्था आती है। हम देखते हैं कि अर्थविस्तार की स्थिति में एक शब्द के अनेक अथवा विभिन्न अर्थ होते हैं; इसे यों कहें कि एक शब्द का प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में होता है। अर्थसंकोच में शब्द के अर्थ के प्रयोग का प्रसंग सीमित हो जाता है। वह एक प्रसंग में अथवा कुछ ही प्रसंगों में चलता है। इस प्रकार अर्थसंकोच का प्रधान कारण है एक शब्द में विभिन्न अर्थों के बोध कराने की शक्ति, जिसके कारण उसका प्रयोग उलझा हुआ हो जाता है, उसका अर्थ अनिश्चित हो जाता है। ऐसी स्थिति में उस शब्द के अर्थ को एक प्रसंग में सीमित कर देते हैं। अँगरेजी शब्द 'मीट' (Meat) का अर्थ था 'किसी भी प्रकार का खाद्य' (Food)। इससे इसका अर्थ अनिश्चित, अस्पष्ट था। आजकल इसका अर्थ है 'मांस खाद्य' (Flesh food)। इस प्रकार अब इसका अर्थ स्पष्ट तथा निश्चित हो गया है। एक भाषा-तात्विक ने इस तथ्य को दूसरे प्रकार से कहा है। उनका कथन है, कि जब एक शब्द अनेक ऐसी विभिन्न वस्तुओं के लिए समानरूप से प्रयुक्त होता है, जो पारस्परिक रूप से कुछ अंशों मे समान होती हैं, अथवा यह (शब्द) अस्पष्ट या सामान्य कोटि की भावनाओं के लिए प्रयुक्त होता है, तब किसी समय उन वस्तुओं में से 'एक' के लिए प्रयुक्त होकर अथवा उन भावनाओं में से 'एक' को अभिव्यक्त कर शब्द संकुचित अर्थवाला हो सकता है। और, यह विशेष प्रयोग यदि भाषा में प्रचलित हो जाता है तो इसका फल होता है एक नवीन और विशिष्ट या संकुचित अर्थ :

When a word is equally applicable to a number of different objects which resemble each other in some respects, or to a vague or

general category of ideas, it may at any moment become specialized by being used to name 'one' of those objects or to express 'one' of those ideas. And if this particular application gains currency in the language, a new and specialized sense is the result.[1]

इस प्रसंग में एक उदाहरण देखा जा सकता है। लैटिन 'लिक्वोर' (Liquor) का अर्थ था 'द्रव'। अँगरेजी 'लिकर' (Liqueur) का अर्थ हुआ 'तेज शराब' (Ardent spirits)। फरासीसी भाषा में 'लिक्येर' (Liquear) के अर्थ में और संकोच आया, इसका अर्थ किया गया 'सुगंध मद' (Aromatic cordial)।

अर्थसंकोच की प्रक्रिया की विवेचना एक अन्य प्रकार से भी की गई है। अगर विचार का कुछ परिवर्तन पहले प्रयुक्त सभी शब्दों द्वारा किया जाय, और वह (परिवर्तन) धीरे-धीरे कुछ शब्दों द्वारा अभिव्यक्त हो अथवा एक ही शब्द द्वारा अभिव्यक्त हो, जो एक शब्द परिवर्तन की समस्त क्रिया को अपने में निहित कर ले, तब हम कहते हैं कि इन परिवर्तनों के मूल में अर्थसंकोच का 'नियम' स्थित है :

......if certain modifications of thought, expressed primarily by all words, are little by little restricted to a small number of words, or even to a single word, which takes upon itself along the whole function, we say

---

1. वही, पृ० २४८।

that specialization is the 'law' that has presided over these changes.[1]

कभी-कभी अर्थसंकोच अति सूक्ष्म, किंतु अति ही महत्वपूर्ण होता है। ऐसी स्थिति में अर्थ में परिवर्तन प्राचीन रचयिता के आधुनिक पाठक को उलझन में डाल देता है :

Sometimes the specialization is very slight but extremely significant, and in such cases the change in sense is baffling to the modern reader of our older authors.[2]

इस तथ्य के उदाहरणस्वरूप अँगरेजी 'लिकर' (Liqueur) और फरासीसी 'लिक्वेर' (Liqueuar) शब्दों के अर्थों को ही लिया जा सकता है।

जब कोई व्यक्ति किसी शब्द को वाक्य से अलग कर केवल उसके अर्थों को लेकर विचार करता है और देखता है कि किस प्रकार वह अपने विस्तृत अर्थों के साथ विभिन्न संकुचित अथवा विशिष्ट अर्थ भी धारण करता है, तथा ऐसा होते हुए भी उसके अर्थों में कोई उलझन नहीं पैदा होती, तब उसे आश्चर्य-सा लगता है। किंतु शब्द तो स्वयं प्रयुक्त होते नहीं। विभिन्न प्रसंगों अथवा परिस्थितियों में उनका वाक्य में विभिन्न नियोजन एक ही शब्द को अनेक भिन्न-भिन्न वस्तुओं को अपने में निहित कर अभिव्यक्त करने के योग्य बनाता है :

The manner in which a word may carry numerous specialized senses along with its

१. Michel Breal : Semantics, pp. 11–2.

२. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 250.

more general meanings and yet no confusion arises among them all, appears almost miraculous when one takes the word by itself, as an isolated phenomenon. But words are not used by themselves. It is their different combination in different contexts or circumstances that enables the same term to symbolise so many different things.[1]

हम देखते हैं कि ऐसी अवस्था में प्रसंग अथवा परिस्थिति का ही महत्व प्रधान है, इसी के द्वारा ऐसा संभव होता है।

§ १०७ व्याकरण पर भी थोड़ी दृष्टि रखकर अर्थसंकोच की मीमांसा की जा सकती है। हम देखते हैं कि विशेषण अथवा ऐसे ही अन्य गुणबोधक शब्दों के लोप से प्रायः अर्थसंकोच घटित होता है :

Specialization frequently results from the omission of some adjective or other modifier.[2]

हम लोग प्रायः 'अखबार, समाचारपत्र' को 'न्यूज पेपर' (News Paper) न कह कर मात्र 'पेपर' (Paper) कह देते हैं, यथाप्रसंग जिसका अर्थ लिया जाता है 'अखबार, समाचारपत्र'। वैसे 'पेपर' (Paper) का सामान्य अर्थ है 'कागज'। 'न्यूज पेपर' के लिए मात्र 'पेपर' कह कर 'न्यूज' का लोप कर हम देखते हैं कि 'न्यूज पेपर' अर्थ को 'पेपर' में ही संकुचित अथवा सीमित कर दिया गया है। बंगला में भी 'खबर कागज' के लिए मात्र 'कागज' का प्रयोग देखा जाता है। ऐसी स्थिति में हम देखते हैं कि प्रसंग के अनुसार 'न्यूज' शब्द श्रोता

१. वही।
२. वही, पृ० २५१।

तथा वक्ता दोनों के मन में रहता है। तभी तो वे केवल 'पेपर' कहने से 'न्यूज पेपर' का अर्थ ग्रहण कर लेते हैं।

यह भी देखा जाता है कि जब किसी वाक्यखंड (Phrase) का अर्थ अभिव्यक्त करना रहता है और उस (वाक्यखंड) में स्थित संज्ञा शब्द का लोप कर दिया जाता है तथा विशेषण शब्द को रहने दिया जाता है तब भी अर्थसंकोच प्रायः घटित होता है :

...specialization frequently results from the omission of the noun and the retention of the adjective word in the sense which the whole phrase was intended to express.[1]

'संपादकीय लेख' (Editorial article) अथवा 'अग्रलेख' (Leader article) के अर्थ को बोध कराने के लिए प्रायः 'संपादकीय' कह दिया जाता है। यहाँ संज्ञा का लोप तथा विशेषण का ग्रहण है। इस प्रकार 'संपादकीय लेख' अथवा 'अग्रलेख' का अर्थ 'संपादकीय' में संकुचित—सीमित हो गया है।

§ १०८ अर्थतत्व के क्षेत्र में इस अर्थसंकोच का बड़ा महत्व है। अर्थतत्व का यह अत्यंत ज्ञानवर्धक अंग है। अर्थसंकोच के क्षेत्र में जीवन का प्रत्येक पेशा, प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग अपना अवदान करता है :

Each profession, each state, each class of life contributes to this contraction of words,

---

१. वही, पृ० २५३–४।

which is one of the most instructive sides of semantics.[1]

अर्थसंकोच का महत्व इसलिए भी है कि किसी देश की जन-संख्या का प्रत्येक वर्ग भाषा के सामान्य शब्दों का व्यवहार अपने उपयोग के लिए करने के हेतु आकृष्ट होता है, इसके बाद यह (वर्ग) अपने विचारों तथा अपने खास पेशे की छाप लगाकर इन सामान्य शब्दों को बनाए रखता है :

......each class of the population is tempted to employ for its own use the general terms of the language, it then restores them with the impress of its ideas, of its particular occupation.[2]

अर्थसंकोच के संबंध में यह भी कहा गया है कि किसी देश की सभ्यता ज्यों-ज्यों विकसित होती जाती है त्यों-त्यों ये अर्थसंकोच और अधिक वैभिन्य धारण करते जाते हैं :

The more advanced the civilization of a nation, the more varied are these Restriction of meaning.[2]

हमारे जीवन के आचारसंबंधी शब्दों में जब अर्थसंकोच होता है तब वह विचित्र मनोरंजकता धारण करता है :

Restriction of Meaning has a peculiar

---

१. Michel Breal : Semantics, pp. 108-9.
और देखिए Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 257.

२. वही, पृ० १०६ ।

interest when applied to 'words which bear on moral life.'[1]

बहुत से शब्द गाली के रूप में व्यवहृत होते हैं। उनमें गाली का भाव अर्थसंकोच के कारण ही आता है।

§ १०६ अर्थसंकोच तथा परिस्थिति की मीमांसा हमने यथाप्रसंग कई स्थलों पर की है। अर्थसंकोच तथा इतिहास की भी विवेचना की जा सकती है। इतिहास की घटनाएँ भी अर्थसंकोच उपस्थित करती हैं। एक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जाय। रोम के एक 'टावर' (Tower) का नाम 'अर्ब्स' (Urbs) था। यह लैटियम (Latium) तथा सैबिना (Sabina) के किसानों के लिए था। इस (अर्ब्स) शब्द को रोम के अफसर अपने साथ ले जाकर समस्त पुरानी दुनिया को इससे परिचित कराने में सफल हुए। किंतु फ्रांस, स्पेन, अफरीका, सीरिया के निवासियों के लिए 'अर्ब्स' सात पहाड़ियों (Seven hills) पर स्थित नगर का नाम बना रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक कारणों से इसका अर्थ एक विशेष क्षेत्र में सीमित हो गया।

अर्थसंकोच के संबंध में हमने यथासंभव संक्षेप में विदेशी भाषा-तात्त्विकों के मतों को दृष्टिपथ में रखकर प्रधान-प्रधान तथ्यों की विवेचना की है। इससे ज्ञात हुआ होगा कि अर्थतत्व के क्षेत्र में अर्थसंकोच का क्या महत्व है। हमने अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने का भी प्रयास किया है। इससे विदित होता है कि अर्थविस्तार की अपेक्षा अर्थसंकोच का महत्व अधिक है। इस विवेचना द्वारा इसकी जानकारी होती है कि अर्थसंकोच का विषय इतना उलझा हुआ है कि

---

१. वही, पृ० ११२।

इसकी विवेचना तथा इस विवेचना द्वारा सहज ही किसी निर्णय पर पहुँचना सरल कार्य नहीं है।

§ ११० प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी अर्थसंकोच की मीमांसा की है। उनकी मीमांसा भी हम उपस्थित कर रहे हैं। इससे स्पष्ट होगा कि अर्थ के इस तत्व की ओर भी उनकी दृष्टि गई थी। प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने शब्द के चार वर्ग माने हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। यास्क ने शाकटायन के इस मत का उल्लेख किया है कि नाम आख्यात के आधार पर बनते हैं। इसके बाद ही उन्होंने यह भी कहा है कि गार्ग्य तथा कुछ अन्य वैयाकरण यह मानते हैं कि सभी नाम आख्यात के आधार पर नहीं बनते। वे (नाम) ही आख्यात के आधार पर बनते हैं जिनका स्वर और व्याकरणिक रूप नियमित रहता है और जो प्रादेशिक विकार से युक्त होते हैं। इसका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि गौ, अश्व, पुरुष, हस्ति, आदि, पारंपरिक (Conventional) हैं, अतः इन्हें आख्यात के आधार पर व्युत्पन्न नहीं करना चाहिए।

अन्य भाषाशास्त्रियों के मत का उल्लेख कर यास्क अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि सभी नाम आख्यात से व्युत्पन्न किए जायें—सभी नामों को आख्यात के आधार पर बना माना जाय—तो किसी विशेष कार्य के करनेवाले व्यक्ति का नाम उस कार्य के नाम के अनुसार होना चाहिए। जैसे, जो कोई भी सड़क पर दौड़े उसे अश्व, जो भी चीज चुभे उसे 'तृण' कहना चाहिए :

> **अथ चेत् सर्वाण्याख्यातजानि नामानि स्युर्यः**
> **कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथाचक्षीरन्।**

अ० भू० १४ (१६००–६१)

यः कश्चाध्वानमश्नुवीताश्वः स वचनीयः स्यात् ।
यत् किंचित् तृन्द्यात् तृणं तत् । १-१२[1]

इस विवेचना का आशय यह है कि सभी 'दौड़नेवाले' को 'अश्व' तथा सभी 'चुभनेवाले' को 'तृण' नहीं कहा जाता। यह तो सत्य है कि 'दौड़नेवाले' अनेक जीव हैं और 'चुभनेवाली' भी बहुत सी वस्तुएं हैं, किंतु 'अश्व' तथा 'तृण' में ही उक्त दोनों क्रियाओं का अर्थ संकुचित होकर बैठ गया है। इस मीमांसा द्वारा हम देखते हैं कि यास्क ने अर्थ-संकोच के संबंध में विचार इस रूप में किया है। यास्क ने अनेक स्थलों पर इस प्रकार की विवेचना की है।

यास्क ने जहाँ निपात को लेकर विचार किया है वहाँ भी अर्थसंकोच की मीमांसा प्रस्तुत हुई है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि 'न' वैदिक संस्कृत में प्रतिषेधार्थक तथा उपमार्थक दोनों था, किंतु लौकिक संस्कृत में यह निषेधार्थक ही रह गया :

नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्। उभयमन्वध्यायम्। १-४[2]

तात्पर्य यह कि लौकिक संस्कृत में 'न' प्रतिषेध के अर्थ में ही संकुचित हो गया।

§ १११ अर्थसंकोच की ओर दृष्टि ले जाते हुए पतंजलि कहते हैं कि क्या यह उचित है कि नाम (संज्ञा) शब्द नियतविषय हों? तात्पर्य यह कि संज्ञा शब्दों के अर्थ का संकुचित होना क्या युक्तिसंगत है? पतंजलि ने अपना मत प्रकट किया है कि संज्ञा शब्द के भिन्न रूप तथा उसकी भिन्न शक्ति के कारण ऐसा होना उचित ही है। रूप से तात्पर्य नाम शब्द के सविभक्तिक तथा समास में निर्विभक्तिक रूप से है। और, शक्ति का आशय भिन्नोपस्थितिजनिका शक्ति तथा समास में

---

१. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्त।
२. वही।

र्थकोपस्थितिजनिका शक्ति है। इसी प्रसंग में पतंजलि कहते हैं कि अन्यत्र भी शब्द नियतविषय अर्थात् संकुचित अर्थवाले देखे जाते हैं। उन्होंने कई उदाहरण भी दिए हैं। जैसे, समान रक्त वर्ण रहने पर भी गाय को लोहित तथा अश्व को शोण कहते हैं। समान काला रंग होने पर भी गाय को कृष्ण तथा अश्व को हेम कहते हैं। समान शुक्ल वर्ण रहने पर भी गाय को श्वेत तथा अश्व को कर्क कहते हैं :

युक्तं पुनर्यन्नियतविषया नाम शब्दाः स्युः ?
बाढं युक्तम् ।
अन्यत्रापि हि नियतविषयाः शब्दा दृश्यंते । तद्यथा—समाने रक्ते वर्णे गौर्लोहित इति भवति, अश्वः शोण इति । समाने च काले वर्णे गौः कृष्ण इति भवति, अश्वो हेम इति । समाने च शुक्ले वर्णे गौः श्वेत इति भवति, अश्वः कर्क इति । २-२-२[1]

उक्त उदाहरणों द्वारा अर्थसंकोच का तत्व पूर्णतः स्पष्ट होता है। समान रंग होने पर भी गाय को लोहित, कृष्ण, शुक्ल और अश्व को शोण, हेम, कर्क कहा जाता है। तात्पर्य यह कि गाय तथा अश्व के प्रसंगों से ये शब्द संपृक्त होकर अपने अर्थ संकुचित कर बैठते हैं। इन्हीं के प्रसंग में ये रूढ़ हो गए हैं। यह रूढ़ि आई कैसे ? लोक-प्रयोग के कारण।

पतंजलि ने इसका भी उल्लेख किया है कि सभी शब्द अन्य शब्द से संबद्ध होकर विशेष वचन—विशेष अर्थ—का संपादन करते हैं, विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं :

सर्वश्च शब्दोऽन्येन शब्देनाभिसंबंध्यमानो विशेष-वचनः संपद्यते । २-१-१[2]

---

१. महाभाष्य ।

२. वही ।

यहाँ 'अन्य शब्द' का तात्पर्य है विशेषण से। इसका एक उदाहरण लिया जाय। 'गाय' शब्द के साथ जब हम 'श्वेत' विशेषण शब्द जोड़ते हैं तब 'श्वेत गाय' का अर्थ बदल जाता है, अन्य गायों से वह विशेष कोटि की गाय हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उसका अर्थ संकुचित हो जाता है। 'गाय' का अर्थ था 'सामान्य', 'श्वेत' शब्द के संयोग से वह 'श्वेत गाय'—विशेष गाय हो गई। उसका अर्थ विशेष हो गया, उसका अर्थ संकुचित हो गया।

§ ११२ पतंजलि ने यह भी कहा है कि धातुओं में कुछ प्रत्ययों के लगने से उनके द्वारा बने शब्द विशेष अर्थ—संकुचित अर्थ—में व्यवहृत होने लगते हैं। ऐसे प्रत्यय प्रधानतः कृत् तथा तद्धित हैं। पतंजलि ने इस तथ्य के अनेक उदाहरण संगृहीत किए हैं। हम एक उदाहरण लेते हैं। 'घृ' धातु का प्रयोग 'सेचन' अर्थ में होता है। छंदस् की भाषा में इसका 'दीप्ति' के अर्थ में बहुल प्रयोग प्राप्त है। किंतु इसी धातु में प्रत्यय लगने से बने शब्दों घृत, घृणा, घर्म के अर्थ नियत, संकुचित, रूढ़ होकर अन्य अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं :

> '''अन्यत्राप्यविशेषविहिताः शब्दा नियतविषया दृश्यंते। क्वान्यत्र तद्यथा। घरतिरस्मायविशेषेणो-पदिष्टः स घृतं घृणा घर्म इत्येवं विषयः।''''''७-१-२[1]

§ ११३ 'महाभाष्य' के 'कृत्रिमाऽकृत्रिमयोः' आदि की टीका करते हुए कैयट ने 'प्रदीप' में लिखा है कि शब्द सर्वार्थाभिधानशक्तियुक्त होता है, किंतु जब व्यवहारद्वारा विशिष्ट अर्थ में संकुचित कर दिया जाता है तब उसी (संकुचित) अर्थ—विशिष्ट अर्थ—को बोध कराता है, अन्य अर्थ का नहीं :

1. महाभाष्य (देवीदत्त पराशुली संपादित)।

'''सर्वार्थाभिधानशक्तियुक्तः शब्दो यदा विशिष्टेर्थे संव्यवहाराय नियम्यते, तदा तत्रैव प्रतीतिं जनयति नान्यत्र । १-१-५[1]

'महाभाष्य' के 'रूढ़ि शब्दप्रकाराः' आदि की टीका करते हुए कैयट ने लिखा है कि रूढ़ि शब्द में क्रिया केवल व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ का आश्रय लेती है, बस। जैसे, 'गच्छतीति गौः'—'जो गमन करता है वह गौ है।' किंतु, गमनक्रियारहित होने पर भी वह 'गौ' ही कही जाती है। गोपिंड (गो-शरीर) के अतिरिक्त अन्य वस्तु गमनविशिष्ट होने पर भी 'गौ' नहीं कही जाती। तात्पर्य यह कि रूढ़ शब्द, ऐसा शब्द जिसका अर्थ संकुचित हो गया है, व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से प्रायः संबंध नहीं रखता। उसका जो अर्थ संकुचित होकर चल पड़ता है वह चलता रहता है। कैयट का वचन है :

'''रूढ़ि शब्देषु क्रिया केवलं व्युपत्त्यर्थमाश्रीयते गच्छतीति गौरिति। तेन गमनक्रिया रहितोपि गौर्भवति। गोपिंडाद्यान्योर्थो गमनविशिष्टोपि गौर्न भवति। ३-२-१[2]

§ ११४ नागेशभट्ट ने अर्थसंकोच की मीमांसा की है और कहा है कि अवयवप्रसिद्धि की अपेक्षा समुदायप्रसिद्धि बलीयसी होती है। उदाहरणद्वारा अपनी मीमांसा को उन्होंने स्पष्ट किया है। कहते हैं कि 'मातृ' शब्द के अर्थ 'जननी' तथा 'परिच्छेत्ता' अथवा 'धान्य माता' (धान्य तौलनेवाला) दोनों हैं। किंतु लोकव्यवहार में इसका अर्थ 'जननी, माता' ही अधिकतः गृहीत है, अतः इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है, 'परिच्छेत्ता, धान्य माता' का अर्थ नहीं :

---

१. महाभाष्य।

२. वही।

ननु स्वस्त्रादिस्थ प्रयुक्तो मातृ शब्दस्य ङीब्निषेधः
परिच्छेत्तृवाचक मातृ शब्देऽपि स्यादत आह—
अवयव प्रसिद्धेः समुदाय प्रसिद्धिर्बलीयसी ॥ १०६॥
तेन शुद्ध रूढस्य जननीवाचकस्यैव ग्रहणं न
परिच्छेत्तृवाचकस्य ।[1]

§ ११५ प्राचीन भारतीय अन्य भाषाशास्त्रियों ने भी अर्थसंकोच के संबंध में विचार किया है। पुण्यराज ने कहा है कि 'धेनु' शब्द का अर्थ तो है 'दूध देनेवाला पशु' परंतु अर्थसंकोच द्वारा इसका प्रयोग 'गौ' के लिए ही होने लगा। रूढ़ि द्वारा 'गौ' को ही 'धेनु' कहते हैं :

रूढ्या गौरेव धेनुरुच्यते इति तु येषां दर्शनं ।
तेषामत्र संसर्गो विशेष संप्रत्यये नोपयुज्यत इति बोद्धव्यम् । २-२१७[2]

§ ११६ विभिन्न प्रकारों अथवा अवस्थाओं में अर्थसंकोच होता है, इस ओर भी प्राचीन भारतीय भाषातात्विकों की दृष्टि गई है। यथा, समासद्वारा अर्थसंकोच होता है। इसीलिए 'पश्यतोहर' (देखते-देखते हरण करनेवाला) का अर्थ रह गया 'स्वर्णकार', 'कर्णेजप' (कान में कहनेवाला) का अर्थ हुआ 'पिशुन', 'कंठेकाल' (गले में विष है जिसके) का अर्थ किया गया 'शिव'। इस प्रसंग के अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं।

उन्होंने इस पर भी विचार किया है कि उपसर्ग के संयोग से अर्थसंकोच होता है। 'कृष्' धातु का सामान्य अर्थ है 'खींचना', किंतु उपसर्ग के लगने से इसी से बने शब्दों के अर्थ में विभेद आ जाता

---

१. परिभाषेंदुशेखर।
२. वाक्यपदीयम्।

है। जैसे, निष्कर्ष, प्रकर्ष, संकर्ष, विकर्ष, आदि। उपसर्ग द्वारा अर्थ-संकोच के संबंध में निम्नलिखित श्लोक तो सर्वविदित है—

उपसर्गेण धात्वर्थोबलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

हमने संक्षेप में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों के विचारों के आधार पर अर्थसंकोच की विवेचना की है। एतत्संबंधी और विचार भी संगृहीत किए जा सकते हैं, किंतु मूल-मूल तत्वों को ही उपस्थित करने का प्रयत्न हमने किया है। उक्त विवेचना द्वारा यह देखा जा सकता है कि सामान्य भेद के रहते हुए भी इस संबंध में सभी भाषा-शास्त्रियों के मत समान हैं।

§ ११७ **अर्थारोप** : हमने अर्थपरिवर्तन के दो प्रकारों अर्थ-विस्तार तथा अर्थसंकोच की विवेचना की है। अर्थारोप के स्वरूप की विवेचनाद्वारा ज्ञात होगा कि इसके अंतर्गत अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच दोनों समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार अर्थारोप की परिमिति बड़ी व्यापक जान पड़ती है।

विचारणीय है कि अर्थारोप अथवा अर्थ का आरोप घटित होता कैसे है? 'अर्थारोप' शब्द द्वारा सामान्यतः तो यही ज्ञात होता है कि इस तत्व में एक अर्थ का आरोप दूसरे अर्थ पर होता है। इसे दूसरे ढंग से यों कहा जाय कि भावों अथवा विचारों के संपर्क से प्रायः किसी शब्द का गौण अर्थ मूलतः अनजाने में उस शब्द से संयुक्त हो जाता है और क्रमशः यह गौण अर्थ प्रधान अर्थ बन जाता है। इस प्रकार शब्द पर एक अर्थ से अन्य अर्थ का आरोप होता है :

Owing to association of ideas it often happens that a secondary sense attaches itself (originally unconsciously) to a word and

gradually that secondary sense comes to be itself regarded as primary. Thus there is a transfer of meaning from one sense to another.'[1]

अर्थारोप के इस स्वरूप के कारण किसी शब्द के प्रधान अथवा प्रचलित अर्थ का अग्रहण और गौण अथवा अप्रचलित अर्थ का ग्रहण संभव है। 'वसिष्ठ' एक ऋषि का नाम है, जिन्होंने राम तथा सीता के विवाह में दूत का काम किया था। 'वसिष्ठ' के तद्भव रूप 'बसीठ' का अर्थ मध्यकालीन हिंदी में 'दूत' है। ऐसा अर्थ इस कारण हुआ कि इस तद्भव शब्द पर 'वसिष्ठ' मुनि के कार्य 'दूतत्व' का आरोप कर दिया गया। इस प्रकार 'वसिष्ठ' के प्रधान अर्थ का अग्रहण तथा इसके गौण अर्थ का ग्रहण किया गया। यों प्रधान अर्थ गौण और गौण अर्थ प्रधान होकर प्रचलित हो गया। अर्थपरिवर्तन की इसी प्रक्रिया के द्वारा कितने ही अवसरों पर अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच के तत्व अर्थारोप की सीमा में समाहित हो जाते हैं।

§ ११८ अब विचारणीय यह है कि अर्थारोप किन-किन अवस्थाओं में प्राप्त होता है, कैसे शब्दप्रकारों में प्राप्त होता है, और उक्त अवस्थाओं तथा शब्दप्रकारों में अर्थारोप की प्रक्रिया कैसी होती है। इसमें संदेह नहीं कि अर्थारोप विभिन्न अवस्थाओं में होता है, यह भी सत्य है कि विभिन्न शब्दप्रकारों में होता है। किंतु यह निर्णय करना कठिन है कि कौन-सी अवस्था और कौन-से शब्दप्रकार प्रधान हैं और कौन-सी अवस्था तथा कौन-से शब्दप्रकार गौण। कोई किन्हीं अवस्थाओं और शब्दप्रकारों को महत्व दे सकता है और कोई किन्हीं को। अच्छा तो यह है कि सभी अवस्थाओं तथा शब्दप्रकारों का

१. I. J. S. Taraporewala : Elements of the Science of Language, p. 88.

महत्व समझा जाय, क्योंकि अर्थारोप तो उन सब में होता ही है। अस्तु।

कुछ भाषातात्विकों का मत है कि भाषा में अर्थारोपों में सबसे सामान्य है अर्थ की अमूर्त से मूर्त की ओर प्रवृत्ति का होना। ऐसे भाषा-तात्विकों का यह भी मत है कि प्रत्येक भाषा में शब्दों द्वारा गुणों तथा कर्मों के बोध अमूर्त रूप में कराने की विधि है। लेकिन ज्यों ही अमूर्त का आरोप मूर्त अर्थ पर होता है त्यों ही ऐसी प्रत्येक स्थिति को अलग करके देखने की धारणा उत्पन्न होती है और इसके नाम को मूर्त संज्ञा के रूप में व्यवहार करने की प्रवृत्ति मिलती है :

One of the commonest transformations in language is from an abstract meaning to a concrete. Every language has machinery to make words signifying qualities or actions in the abstract; but no sooner are these formed than thought tends to consider each case of the occurrence of the quality or action in the abstract as a separate entity, and to use its name as a concrete noun.[1]

यहाँ प्रधान तत्व केवल यह कहा गया है कि अमूर्त अर्थ का आरोप जब मूर्त अर्थ पर होता है तब ऐसे आरोप का एक अलग रूप हो जाता है और इसी रूप की ओर विचार जाता है। तात्पर्य यह कि ऐसे रूप की एक सत्ता हो जाती है। साथ ही यह भी कहा गया है कि भाषा में अमूर्त अर्थ पर मूर्त अर्थ का आरोप बहुत सामान्य है, इसके उदाहरण बहुत

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 256.

मिलते हैं। 'सर्दी, गर्मी, बड़ाई, आतंक, दया, कृपा, सुअवसर, उपयुक्तता, आदि गुणों अथवा कर्मों के मात्र अमूर्त नाम जान पड़ेंगे। परिणामतः ये न एक ही कारक की स्थिति में सीमित रहते हैं और न बहुवचन का रूप लेते हैं; किंतु बहुत-सी भाषाओं में ये बहुवचन का रूप ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं :

Thus, heat, cold, magnitude, terror, mercy, kindness, opportunity, propriety, and the like, would seem to be only abstract names of qualities or actions, and consequently, not limitable to a given case or admitting a plural.......'

इनके बहुवचन रूप लेने के दो एक उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे, 'the heats of summer, the colds of winter' (ग्रीष्म काल की गर्मियाँ, शीतकाल की सर्दियाँ), आदि। किंतु ये प्राचीन अँगरेजी भाषा के उदाहरण हैं, आधुनिक अँगरेजी भाषा के नहीं, ऐसा कहा जा सकता है। हिंदी में भी 'शुभकामनाएँ, बधाइयाँ', आदि का प्रयोग यत्रतत्र मिलता है, किंतु ये सुधियों की दृष्टि में साधु प्रयोग नहीं माने जाते।

मूर्त अर्थ के लिए अमूर्त अर्थ के व्यवहार का एक मनोरंजक प्रयोग है किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के लिए किसी गुण के नाम का व्यवहार। इसे मानवीकरण की उलटी विधि मानी जा सकती है, क्योंकि मानवीकरण में गुण को व्यक्ति के रूप में व्यवहार किया जाता है, किंतु जिस विषय की चर्चा हम कर रहे हैं उसमें व्यक्ति को गुण के रूप में कहा जाता है :

---

१. वही।

One striking use of the abstract for the concrete is the application of the name of a quality to a person or thing. This may be regarded as the reverse of personification. In personification a quality is spoken of as a person; in the use, which we are now discussing a person is designated as if he were the quality incarnate.[1]

अँगरेजी भाषा के ही दो-एक उदाहरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं : My father was goodness itself; she is perfection (मेरे पिता स्वयं अच्छाई थे, वह पूर्णता है)। नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं में भी ऐसे प्रयोग विशेषतः काव्य में मिलते हैं। इसे अँगरेजी भाषा का प्रभाव कहा जा सकता है। अँगरेजी के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनके भावों को साधु हिंदी में इस प्रकार अभिव्यक्त करेंगे : 'मेरे पिता अच्छाई के अवतार थे, वह पूर्णता की मूर्ति है।'

हम मूर्त अर्थ पर अमूर्त अर्थ के आरोप की मीमांसा कर रहे हैं। इसी प्रसंग में हम यह भी कहें कि भाषातात्त्विकों की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक मूर्त अर्थों से अधिकतर अमूर्त अर्थों का आविर्भाव होता है :

The surface study of semantic change indicates that refined and abstract meanings largely grow out of more concrete meanings.[2]

मूर्त अर्थ पर अमूर्त अर्थ के आरोप की सूक्ष्म विवेचना हमने ऊपर देखी है। ऐसे अर्थारोप का यहाँ एक सामान्य उदाहरण मैं प्रस्तुत कर

१. वही, पृ० २५६-७।

२. Leonard Bloomfield : Language, p. 429.

रहा हूँ। प्रायः समस्त नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में मूर्त अर्थ 'ललाट, कपाल' पर अमूर्त अर्थ 'भाग्य' का आरोप मिलता है। इसे यों कहें कि मूर्त के लिए अमूर्त का प्रयोग प्राप्त है। 'ललाट, कपाल' मूर्त हैं और 'भाग्य' अमूर्त।

कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें प्रसंग के अनुसार मूर्त तथा अमूर्त दोनों अर्थ विद्यमान रहते हैं। मैं बँगला का एक उदाहरण ले रहा हूँ। बँगला का 'निमंत्रण' शब्द प्रसंग के अनुसार मूर्त तथा अमूर्त दोनों अर्थों का बोध कराता हुआ देखा जाता है। 'निमंत्रण रखा' में अमूर्त अर्थ का बोध तथा 'निमंत्रण खाओया' में मूर्त अर्थ का बोध होता है।

ऐसे प्रयोग भी प्राप्त हैं जो अमूर्त अर्थ का बोध पहले कराते थे, किंतु नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में उनका यह अर्थ नहीं रह गया है; वे अब मूर्त अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। 'जनता' (जन+ता=आद-मियत, मनुष्यत्व) शब्द आजकल 'जनसमूह, भीड़' का अर्थ देता है। 'देवता' (देव+ता) शब्द की भी यही स्थिति है। 'जाति' (=जन्म), 'संतति' (=विस्तार) शब्दों में भी अब मूर्त अर्थ का भाव आ गया है, जैसे—'क्षत्रिय जाति, पाँच संतति।'

§ ११६ हमने ऊपर मूर्त अर्थ पर अमूर्त अर्थ के आरोप की मीमांसा देखी है, हमने देखा है कि मूर्त अर्थ के लिए अमूर्त अर्थ का व्यवहार होता है। इस विधि के ठीक विपरीत वह विधि भी है जिसमें अमूर्त अर्थ पर मूर्त अर्थ का आरोप अथवा अमूर्त अर्थ के लिए मूर्त अर्थ का व्यवहार होता है। अमूर्त अर्थ का बोधक एक शब्द अपने अमूर्त अर्थ को धारण न कर, किसी कर्म, गुण अथवा परिस्थिति का प्रतिनिधि न रह कर किसी भौतिक वस्तु अथवा द्रव्य का नाम हो जाता है। यह तत्व उतना ही प्राचीन है जितना हमारी भाषाओं का

इतिहास। और, यह तत्व हमारी आँखों के सामने अथवा वर्तमान में भी घटित होता रहता है :

......an abstract word, instead of keeping its abstract sense, instead of remaining the exponent of an action, a quality, or a state, becomes the name of a material object...... This phenomenon goes as far back as the history of our languages, and continues under our eyes[१].

इस तत्व के संबंध में यह भी समझ रखने की बात है कि भाषा पारस्परिक सहकारिता का काम है, इसलिए अमूर्त अर्थबोधक प्रत्येक शब्द अपने अर्थ को परिवर्तित कर देने के खतरे में रहता है, विशेषतः उस समय जब यह कंठानुकंठ चलता है। यह अपने आविष्कर्ता को त्याग कर जनता में चला जाता है :

...as language is a work of collaboration, every abstract word is in danger of changing its sense, when, passing from mouth to mouth, it goes forth form the inventor to the mass[२].

ईसा की सत्रहवीं शती में Economies (इकोनोमिज्), Alms (आम्स्), Charity, (चैरिटी) अमूर्त अर्थ का बोध कराते थे। वर्तमान काल में ये मूर्त अर्थ का बोध कराते हैं। जर्मन Kind (काइंड) का अर्थ था Race (रेस)। अँगरेजी Mankind में

---

१. Michel Breal : Semantics, p. 134.

२. वही, पृ० ११७।

इसका यह अर्थ अब भी विद्यमान है, जिसका अर्थ है Child। किंतु आज जर्मन Kind (काइंड) का अर्थ है, Child (चाइल्ड)। संस्कृत में अनट् प्रत्यय से बने शब्द अमूर्त अर्थ का, भाव का बोध कराते थे। जैसे, 'भवन, वसन' आदि। किंतु आज नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं में 'भवन' का अर्थ 'गृह', 'वसन' का अर्थ 'वस्त्र' है। हिंदी के 'मिठाई, खटाई' भाववाचक शब्द हैं; किंतु इनके द्वारा आज 'खाने की मिठाई और खटाई' का बोध होता है। संस्कृत में 'आहार, उपहार' भाववाचक थे, हिंदी में ये द्रव्यवाचक हैं।

इसी प्रकार इंद्रियों के लिए अमूर्त अबोधगम्य भावों के लिए इंद्रियबोधगम्य अर्थबोधक शब्दों के व्यवहार की खूब प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है :

There is a strong tendency to use concerete sensuous terms for abstract suprasensuous ideas.[1]

धर्म तथा दर्शन के क्षेत्रों से इस प्रकार के अर्थारोप के अनेक उदाहरण संग्रह किए जा सकते हैं। इंद्रियों के लिए अमूर्त अबोधगम्य निर्गुण, निराकार ब्रह्म को ईश्वर, भगवान् मानकर उसे इंद्रियबोधगम्य नाना रूप दिये गये हैं। शरीर के नाड़ीचक्रों–संस्थानों–को हठयोग तथा संतसाहित्य में नाना दलयुक्त कमलों का रूप दिया गया है। ऐसे ही अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

§ १२० हमने अर्थारोप की कई अवस्थाओं का उल्लेख किया। ऐसी और भी अनेक अवस्थाएँ हो सकती हैं, जिनमें अर्थारोप घटित होता हुआ दिखाई पड़ता है। कुछ ऐसी ही और अवस्थाओं की ओर हम संकेत कर रहे हैं।

---

१. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 91

क. व्यक्तिवाचक अर्थ पर जातिवाचक अर्थ का आरोप : व्यक्तिवाचक अर्थ पर उस (व्यक्तिवाचक अर्थ अथवा नाम) के गुण, अथवा उसमें वैशिष्ट्य के कारण जातिवाचक अर्थ का आरोप देखा जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस व्यक्तिवाचक अर्थ पर जातिवाचक अर्थ के आरोप का कारण व्यक्तिवाचक अर्थ में अपने गुण के कारण लोक में, जनता में उसका अत्यधिक प्रचार होता है। 'गंगा' एक पवित्र नदी है, अतः इसकी पवित्रता के कारण भारत की अन्य पवित्र नदियों को भी 'गंगा' कहा जाता है। इस प्रकार व्यक्तिवाचक नाम जातिवाचक हो गया। आधुनिक काल में हा 'गांधी' भी जातिवाचक नाम बन गया है। यथा, सरहदी गांधी, केरल के गांधी, दो-चार गांधी और जन्म लें, तो हमारे देश का उद्धार हो।

ख. अंग के अर्थ पर अंगी के अर्थ का आरोप : 'शीघ्र ही चोटी-दाढ़ी संमेलन होनेवाला है'। इसमें 'चोटी' के अर्थ पर चोटी-धारण करनेवाले 'हिंदू' अर्थ का आरोप हुआ है। इसी प्रकार 'दाढ़ी' के अर्थ पर दाढ़ी रखनेवाले 'मुसलमान' अर्थ का आरोप हुआ है।

ग. बाह्य लक्षण के अर्थ पर संपूर्ण वस्तु अथवा व्यक्ति के अर्थ का आरोप : लाल पगड़ी=पुलिस, सिपाही। (गुजराती) सफेद पाघड़ी=पारसी पुरोहित। लाल कुर्ती=खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ संस्थापित एक राजनीतिक दल।

घ. समुदायवाचक अर्थ पर अवयववाचक अर्थ का आरोप : पतंजलि ने कहा है कि समुदाय (समस्त) के लिए प्रयुक्त शब्द अवयव का भी बोध कराते हैं। उन्होंने उदाहरण दिया है : 'पूर्व पंचाल-वाले, उत्तर पंचाल वाले'। यहाँ हम देखते हैं कि 'पंचालवाले' से ही पूर्व, उत्तर का भी बोध होता है, केवल 'पूर्व, उत्तर' शब्द आगे लगा दिए गए हैं। इसी प्रकार 'तैल, घृत, शुक्ल, नील, कपिल, कृष्ण' समुदाय के लिए प्रयुक्त होते हैं और अवयव के लिए भी :

समुदायेषु हि शब्दाः प्रवृत्ता अवयवेष्वपि वर्तंते । तद्यथा पूर्वं पंचालाः, उत्तर पंचालाः तैलं भुक्तम्, घृतं भुक्तम्, शुक्लो नीलः कपिलः कृष्ण इति ॥ एवमयं समुदाये व्याकरण शब्दः प्रवृत्तोऽवयवेष्वपि वर्तंते । १-१-१[1]

ङ. साधन के अर्थ पर साध्य के अर्थ का आरोप : 'समाचार' पठाने का साधन 'तार' होता है, अतः 'तार' साधन पर साध्य 'समाचार' के अर्थ का आरोप कर 'तार' का अर्थ 'समाचार' किया जाता है।

च. एक इंद्रिय के गुणबोधक शब्द के अर्थ पर अन्य इंद्रियों के गुणबोधक शब्दों के अर्थों का आरोप : 'सुंदर' शब्द चक्षुरिंद्रिय के विषय 'दृश्य' के क्षेत्र में व्यवहृत होता है। किंतु आजकल 'सुंदर आस्वाद, सुंदर स्वर, सुंदर सुगंध', आदि उदाहरणों में यह अन्य इंद्रियों के विषय के गुणबोध के प्रसंग में भी व्यवहृत होता देखा जाता है। इसी प्रकार 'मधुर' का व्यवहार भी अन्य इंद्रियों के विषय के गुणबोध के प्रसंगों में होता है। इस तत्व पर सभी भाषा-तात्विकों की दृष्टि गई है :

Terms belonging to the sphere of one sense are often made to apply to the objects of another.[2]

छ. कर्ता के अर्थ पर कृति के अर्थ का आरोप : यह प्रवृत्ति अँगरेजी भाषा से आई है। उसमें ऐसे प्रयोग चलते हैं : 'Have you read Shakespeare' (क्या आपने शेक्सपीयर पढ़ा

१. महाभाष्य ।
२. E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 91.

है ?)। इसका तात्पर्य है : 'क्या आपने शेक्सपीयर की रचनाएँ पढ़ी हैं' ? इस प्रकार यहाँ 'कर्ता' द्वारा कर्ता की 'कृति' का अर्थबोध होता है। हिंदी में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं : 'मैंने रवींद्रनाथ पढ़ा है।'

ज. अवयव के अर्थ पर समुदाय अथवा संपूर्ण के अर्थ का आरोप : हमने समुदाय के अर्थ पर अवयव के अर्थ के आरोप की चर्चा की है। यहाँ अवयव के अर्थ पर समुदाय अथवा संपूर्ण के अर्थ के आरोप की चर्चा की जा रही है। 'मुख' शरीर का एक अवयव है, किंतु इसका प्रयोग मुँह, आँख, कान, नाक, होंठ, आदि सबके लिए भी किया जाता है, अर्थात् 'मुखमंडल' के लिए भी किया जाता है।

झ. आधार के अर्थ पर आधेय के अर्थ का आरोप : हिंदी में 'सवारी' (वाहन) के अर्थ पर वाहन पर बैठनेवाले व्यक्ति के अर्थ का भी बोध होता है। सभी भाषाओं में इस तत्व के प्रभूत उदाहरण मिलते हैं।

ञ. स्थान के अर्थ पर स्थानीय के अर्थ का आरोप : 'कृषक संमेलन में बनारस, कानपुर और दिल्ली नहीं संमिलित हुआ'। इस उदाहरण में 'बनारस, कानपुर और दिल्ली' का अर्थ है तत्तत् स्थान के निवासी। किसी स्थान की वस्तु जब प्रसिद्ध हो जाती है तब प्रसिद्ध वस्तु के लिए वस्तु का नाम न लेकर स्थान का ही नाम ले लेते हैं : 'मैंने चंदौसी खरीदा है।' यहाँ 'चंदौसी' का अर्थ है 'चंदौसी नामक स्थान का घी।'

ट. विशेषण के अर्थ पर विशेष्य के अर्थ का आरोप : 'गोरा' का अर्थ है 'गौर वर्णवाला', किंतु इसका प्रयोग 'यूरोप, अमेरिका, आदि देशों के निवासी' के अर्थ में भी हिंदी में चलता है। इसी प्रकार

'गोरी' का अर्थ है 'गौर वर्णवाली स्त्री', किंतु यह प्रधानतः बोलियों में 'रूपवती युवती' के अर्थ में प्रचलित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ विशेषण के अर्थ पर विशेष्य के अर्थ का आरोप किया गया है।

हमने अर्थारोप घटित होने की किन्हीं परिस्थितियों अथवा अवस्थाओं का उल्लेख किया है। प्रधानतः इन्हीं परिस्थितियों में अर्थारोप घटित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इसके घटित होने की छोटी-मोटी अन्य परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं।

§ १२१ भाषा अथवा व्याकरण की दृष्टि से भी अर्थारोप पर विचार करने की आवश्यकता है। एक भाषाशास्त्री ने कहा है कि किन्हीं अवसरों पर भाषा अथवा व्याकरण की दृष्टि से शब्द के साथ कोई (व्याकरणिक) रूप रहने से आरोपित अर्थ का निश्चय किया जाता है:

In some cases a transferred meaning is linguistically determined by an accompanying form.[1]

भारतीय आर्यभाषा की दृष्टि से इस तथ्य के संबंध में विचार करना अधिक समीचीन होगा। हमने इस श्लोक को यथावसर कई स्थलों पर उद्धृत किया है:

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

यहाँ हम देखते हैं कि 'हार' में उपसर्ग लगने से बने शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। प्रश्न यह है कि यह परिवर्तन कैसे हो

१. Leonard Bloomfield : Language, P. 150.

जाता है। मीमांसा करने से विदित होगा कि ऐसा होता है अर्थारोप के तत्व के कारण। उपसर्ग लगने से अथवा उपसर्ग के कारण मूल शब्द के अर्थ की प्रधान प्रकृति पर अन्य अर्थ आरोपित हो जाता है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि अर्थ की प्रधान प्रकृति किसी न किसी रूप में स्थित रहती है, फिर भी अन्य अर्थ के आरोपित होने से उसके प्रकृत अर्थ में कुछ अंतर आ जाता है।

इसी तत्व की मीमांसा के लिए हम अन्य प्रकार का उदाहरण लेते हैं। 'मिट्टी, कली, झोंटा' शब्दों द्वारा प्रायः बोलियों में नामधातु की क्रिया बनती है—'मटिआना, कलिआना, झोंटिआना'। बोलियों में इस प्रकार की नामधातु की क्रियाएँ बहुत मिलती हैं। 'मटिआना' का अर्थ है 'मिट्टी से माँजना', 'कलिआना' का अर्थ है 'पौधों, वृक्षों, लताओं का कली लेना', 'झोंटिआना' का अर्थ है 'झोंटा पकड़कर झकझोरना'। इन अर्थों को देखने से विदित होता है कि 'मिट्टी, कली, झोंटा' के अर्थों का आरोप इनसे बने नामधातु की क्रिया के अर्थ पर किसी न किसी रूप में हुआ है।

इस विवेचना द्वारा यही स्पष्ट करना हमारा लक्ष्य है कि व्याकरणिक रूपों के योग से भी अर्थारोप का तत्व हमारे संमुख उपस्थित होता है।

§ १२२ कुछ विचित्र अथवा विशिष्ट अर्थारोप के उदाहरण हम संगृहीत कर रहे हैं। इनका संबंध शरीरावयव से है। इनकी विशेषता यह है कि इनका मूल एक ही है, किंतु ये मूल विभिन्न स्वरूप ग्रहण कर अर्थारोप द्वारा विभिन्न अर्थ धारण करते हैं। संस्कृत 'कक्ष' का अर्थ है 'बाहुमूल के नीचे का गड्ढा, काँख।' लैटिन में इसका ही रूप 'Coxa' (कोक्ष) है और इसका अर्थ है 'अधर, होंठ।' ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत 'कक्ष' तथा लैटिन 'कोक्ष' दोनों के अर्थों से

'गड्ढा', 'विवर' का संपर्क है, अतः ऐसे अर्थ का आरोप संभव हुआ है। बाद में इसी लैटिन 'कोक्ष' का अर्थ हुआ 'जाँघ'। शायद यह 'जाँघ' का अर्थ जाँघ के पास के सामान्य गर्त के कारण अर्थारोप के माध्यम से घटित हुआ हो। इसी प्रकार प्राचीन आयरिश में 'Coss' (कॉस्) का अर्थ 'पैर का पंजा' '(Foot =फुट)' है और नव्य आयरिश में 'Coss (कॉस्)' का अर्थ अर्थारोप के माध्यम से हुआ है 'पैर' '(Leg = लेग्)'। यहाँ 'पैर का पंजा' के अर्थ का आरोप 'पैर' के अर्थ पर किया गया है।

§ १२३ आधुनिक भाषाओं के अर्थारोप के कुछ ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो अर्थारोप की संकुल अथवा जटिल प्रक्रिया से होकर आए हैं, जो अर्थारोप के विभिन्न स्तरों को पाकर अपना आधुनिक अर्थ अभिव्यक्त करते हैं। वैसे, ये रूप अथवा क्रिया की समता के कारण किसी वस्तु को कोई नाम देने की अर्थारोपगत सरल तथा स्वाभाविक प्रक्रियावश ही ऐसे अर्थ ग्रहण कर पाते हैं :

Strange transformation of meaning may come by the simple and natural process of applying the name of an object to something else which resembles it or is used for the same purpose.[1]

इस तथ्य की मीमांसा के लिए हम अँगरेजी के एक शब्द Chimney (चिमनी) का उदाहरण लेते हैं। यह फरासीसी भाषा के माध्यम से अँगरेजी में लैटिन के Caminus (चैमिनस्) शब्द से व्युत्पन्न होकर आया है। लैटिन में Caminus का अर्थ था 'धातु को

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 269.

गलाने अथवा साफ करने की भट्टी'। Chimney के मूल लैटिन Caminus के अर्थ के आधार पर Chimney पर प्राचीनतम अँगरेजी में 'कमरे का चूल्हा' (Fire place) का अर्थ आरोपित हुआ। अँगरेजी के इस प्राचीनतम अर्थ के आधार पर बाद में इस पर 'धुआँ निकलने का चोंगा या भोंपा' के अर्थ का आरोप किया गया, इसका यह अर्थ आज भी प्रचलित है। किंतु अब यह 'लैंप की चिमनी' के अर्थ में भी व्यवहृत होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह अर्था-रोप के कितने स्तरों को पार कर आधुनिक अर्थ ग्रहण कर पाया है।

§ १२४ अर्थारोप के संबंध में विचार करते हुए हमने निवेदन किया है कि इस तत्व के अंतर्गत अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच के तत्व भी देखे जाते हैं। आगे अर्थपरिवर्तनसंबंधी एक ऐसे तत्व की विवेचना हम करना चाहते हैं जिसके अंतर्गत अर्थारोप भी आ सकता है। इस तत्व को अर्थप्रस्फोट (Radiation of meaning) कहा गया है। अर्थप्रस्फोट में शब्द का अति सीधा-सादा अर्थ केंद्र में स्थित रहता है और उससे गौण अर्थ किरण की भाँति विभिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित अथवा विकीर्ण होते हैं। प्रस्फुटित अथवा विकीर्ण अर्थ शब्द से प्रस्फुटित अन्य अर्थों से स्वतंत्र होते हैं, किंतु इसका संबंध केंद्रीय अर्थ से स्थापित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में विकीर्ण अर्थ का स्वरूप ऐसा होता है कि मानों अन्य व्युत्पन्न अर्थ का अस्तित्व है ही नहीं :

The simplest meaning stands at the centre, and the secondary meanings proceed out of it in every direction like rays. Each of them is independent of all the rest, and may be traced back to the central signification as if there

were no other derivative meaning in existence.[1]

इस संबंध में यह भी ध्यान रखने की बात है कि किसी शब्द के अर्थ से प्रस्फुटित अर्थ स्वयं किसी एक अथवा एकाधिक अर्थ का मूल स्रोत—विकिरण अथवा प्रस्फुटन केंद्र—हो सकता है, ऐसी स्थिति में प्रस्फुटित अर्थ ही मानों शब्द का प्रधान अर्थ हो जाता है :

...any derived meaning may itself become the source of one or more further derivatives. It may even act as a centre whence such derivatives radiate in considerable numbers, precisely as if it were the primary sense of the word.[2]

इस प्रकार एक के पश्चात् एक अर्थ के प्रस्फुटन से अर्थों का विकास लगभग बहुत अधिक जटिल अथवा संकुल हो सकता है :

By a succession of radiations the development of meanings may become almost infinitely complex.[3]

एक के पश्चात् एक अर्थ के प्रस्फुटन से जटिलता आने के अतिरिक्त ऐसी स्थिति में स्वयं शब्दों के अर्थों में पारस्परिक रूप से प्रभाव का आदान-प्रदान अनवरत चलता रहता है :

Besides the complexity that comes from successive radiation, there is a perpetual

---

१. वही, पृ० २६० ।

२. वही, पृ० २६१ ।

३. वही, पृ० २६१ ।

exchange of influences among the meaning themselves.[1]

यहाँ अँगरेजी भाषा से एक उदाहरण लिया जा रहा है। 'Intellectual head of a movement' (इंटेलेक्चुअल हेड आव् ए मूवमेंट) इसमें 'head' का अर्थ 'leader' (नेता) है, किंतु इसका अर्थ 'mind' (=बुद्धि) भी यहाँ ध्वनित होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'head' के दो अर्थ हैं और ये एक दूसरे से संबद्ध हैं, एक अर्थ दूसरे अर्थ को प्रभावित करता है।

§ १२५. इसके ठीक विपरीत अर्थप्रस्फोट की एक दूसरी प्रक्रिया है जिसमें शब्द के अर्थ एक के पश्चात् एक अर्थसंकोच तथा अर्थविस्तार द्वारा अपने प्रथम अर्थ से धीरे-धीरे हटते जाते हैं। और, अंततः अनेक परिस्थितियों में, शब्द के विकसित अंतिम अर्थ तथा प्रथम अर्थ के बीच किसी प्रकार के संबंध का चिह्न तक नहीं रह जाता :

Quite different is the next process that we have to study, in which a word moves gradually away from its first meaning by successive steps of alternate specialization and generalization until, in many case; there is not a shadow of connection between the sense that is finally developed and that which the term bore at the outset.[2]

---

१. वही, पृ० २६४।

२. वही, पृ० २६५।

अँगरेजी के 'Congregation' (कांग्रिगेशन) शब्द का वास्तविक अर्थ है (किसी प्रकार की) Assembly (एसंबली=सभा)। बाद में इसने एक विशेष अर्थ ग्रहण किया : 'Assembly gathered for worship' (पूजा के लिए एकत्र सभा)। इस प्रकार हम देखते हैं कि इसके विकसित अर्थ में भी 'सभा' का अर्थ है, किंतु 'पूजा' का अर्थ इसमें स्वतंत्ररूप से आया है, इसके पहले अर्थ से इस अर्थ का कोई संबंध नहीं है।

इससे भी जटिल एक और उदाहरण लें। अँगरेजी के Candidate (कैंडिडेट=उम्मीदवार) शब्द का मूल लैटिन भाषा का 'Candidatus' (कैंडिडेटस्) शब्द है, जिसका अर्थ है 'A person dressed in white' (सफेद पोशाकयुक्त व्यक्ति)। लैटिन भाषा में इसका बाद में अर्थ हुआ 'A white robed seeker for office' (किसी पद का चाहनेवाला सफेद पोशाकयुक्त व्यक्ति)। रोम में यह प्रथा थी कि जब कोई व्यक्ति जनता से वोट माँगता था तब नवीनतम पोशाक धारण करता था। इसी आधार पर यह दूसरा अर्थ हुआ है। अँगरेजी के 'Candidate' शब्द के अर्थ में 'सफेद पोशाक' की बात एकदम नहीं है। इसमें मात्र 'किसी पद के लिए आवेदक' का अर्थ रह गया है। और इसका यह अंतिम अर्थ अपने मूल लैटिन शब्द के प्रथम अर्थ से कोई संबंध नहीं रखता।

अँगरेजी के 'Treacle' (ट्रीकल—शीरा (फारसी : शीर), चीनी को गला कर गाढ़ा किया हुआ रस) शब्द का अर्थ विकास, देखिए, कितना जटिल है : जंगली जंतु से संबद्ध>जंगली हिंस्र पशुओं के काटने पर लगाई जानेवाली औषध> औषध> शीरे के रूप में औषध> शीरा।

§ १२६ प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी अर्थारोप की विश्लेषणा की है। शब्द और उसके अर्थ को लेकर उनके द्वारा की गई

विवेचना में एतत्संबंधी विवेचना भी प्राप्त है। अर्थारोप के संबंध में विचार करते हुए यह तथ्य हम पर स्पष्टतः प्रकट होता है कि भारतीय दृष्टि से इसमें लक्षणा का व्यापार काम करता है। अर्थारोप में हम देखते हैं कि रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, आदि के सादृश्य के कारण एक वस्तु अथवा व्यक्ति के अर्थ पर हम दूसरी वस्तु अथवा दूसरे व्यक्ति के अर्थ का आरोप करते हैं। हम पर यह भी विदित है कि इस प्रक्रिया के कारण प्रधान अर्थ से विकीर्ण गौण अर्थ प्रयोगातिशय अथवा लोक-व्यवहार के कारण क्रमशः या कालांतर में प्रधान अर्थ का स्थान ग्रहण कर लेता है। तब गौण अर्थ ही प्रधान अर्थ हो जाता है और किसी शब्द का प्रधान अर्थ लुप्त हो जाता है। इन सभी प्रक्रियाओं के मूल में लक्षणा का व्यापार कार्य करता हुआ दिखाई पड़ता है।

यास्क[1] द्वारा की गई विवेचना के आधार पर हमें विदित होता है कि गमनशीलता के कर्मसादृश्य द्वारा 'गो' शब्द के अर्थ 'पृथ्वी, पशु विशेष (गो), आदित्य, रश्मि, चंद्र', आदि हुए हैं। यास्क ने 'गो' शब्द के अर्थों का उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम 'पृथ्वी' अर्थ रखा है। इससे जान पड़ता है कि इसका प्रधान अर्थ था 'पृथ्वी' ही। 'पृथ्वी' के पश्चात् इसका एक गौण अर्थ हुआ 'पशुविशेष'। किंतु प्रयोगातिशय या लोकव्यवहार के कारण इसी अर्थ—'पशुविशेष' अर्थ—ने प्रधान अर्थ के रूप में स्थान ग्रहण कर लिया। आधुनिक काल में भी इसका यही अर्थ प्रधानरूप से गृहीत है, लोक में इसके अन्य अर्थ लुप्त हो गए हैं। इसके अन्य अर्थ कोशीय ही रह गए हैं। यास्क की विवेचना के आधार पर अर्थारोप का यह स्वरूप हम ग्रहण कर सकते हैं।

§ १२७ पाणिनि ने 'पात्रेसमितादयश्च' (२. १–४८)[2] के गण-

---

१. लक्षणास्वरूप : निरुक्त, २–५–६।

२. अष्टाध्यायी।

पाठ से हम कुछ शब्दों को उद्धृत कर रहे हैं : 'उदुंबरमशकः, उदुंबरकृमिः, कूपकच्छपः, अवटकच्छपः, कूपमंडूकः, कुंभमंडूकः, उदपानमंडूकः, नगरकाकः, नगरवायसः, आरवनिकबकः'। इन सभी शब्दों का प्रयोग नाना प्रकार के पुरुषों के लिए होता है। पाणिनि की विवेचना का उल्लेख हम यही दिखाने के लिए कर रहे हैं कि पुरुष तथा जीव-जंतु के रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, आदि में सादृश्य के कारण जीव-जंतुओं के रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, आदि का आरोप पुरुषों पर किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रक्रिया भी लक्षणा के द्वारा ही संभव हुई है। इस प्रकार जीव-जंतुओं के रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, आदि के वाची शब्दों के अर्थों का आरोप पुरुष के रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, आदि पर किया गया है।

§ १२८ भर्तृहरि का वचन है :

कश्चिद्गुणप्रधानत्वमर्थानामविवक्षितम्।
कश्चित्सान्निध्यमप्येषां प्रतिपत्तावकारणम्॥
यथानुपात्तं शब्देन तत्कस्मिंश्चित्प्रतीयते।
कश्चित्प्रधानमेवार्थो भवत्यन्यस्य लक्षणम्॥ २-३०६-७[1]

यहाँ भर्तृहरि यही कहना चाहते हैं कि कहीं अर्थों का गुण प्रधानत्व अविवक्षित होता है। अर्थों का सान्निध्य भी कहीं प्रतीति अथवा बोध का कारण नहीं बनता। कहीं शब्द से जो अप्राप्त अर्थ है उसका बोध होता है। और, कहीं प्रधान अर्थ ही अन्य अर्थ का लक्षण हो जाता है। इन श्लोकों की टीका में पुण्यराज ने कहा है कि चार प्रकार के अर्थ का निर्धारण इनका लक्ष्य है : (१) गुणप्रधानता का विपर्यय, (२) पदार्थ के एक देश की अविवक्षा, (३) सभी पदार्थों

---

१. वाक्यपदीयम्।

की अविवक्षा, (४) उपात्त अथवा प्राप्त अर्थ के अपरित्याग से ही अन्य अर्थ का उपलक्षण अथवा उसकी प्राप्ति :

अत्र च गुणप्रधानताविपर्ययः पदार्थैकदेशाविवक्षा, सकल पदार्थाविवक्षा. उपात्तपदार्थापरित्यागेनैवान्यार्थोपलक्षण-मित्येवमनेन श्लोकद्वयेन प्रकार चतुष्टयस्योद्देश्यः कृतः।[1]

इनमें से प्रथम तथा तृतीय का संबंध स्पष्टतः अर्थारोप से है, अर्थात् गुण-प्रधानता का विपर्यय तथा सभी पदार्थों की अविवक्षा अर्थारोप की ओर हमारी दृष्टि आकृष्ट करते हैं। 'गुणप्रधानता का विपर्यय' का तात्पर्य है शब्द के प्रधानार्थ का प्रधान न रहकर गौणार्थ रह जाना और गौणार्थ का गौणार्थ न रहकर प्रधानार्थ हो जाना। इस प्रकार हम देखते हैं कि इसका मतलब है प्रधान अर्थ पर गौण अर्थ का तथा गौण अर्थ का प्रधान अर्थ पर आरोप का होना। 'सभी पदार्थों की अविवक्षा' का तात्पर्य है शब्द के सभी अर्थों की अविवक्षा, अर्थात् शब्द के जितने अर्थ हैं उनका अग्रहण तथा जो अर्थ हैं उन्हीं के आधार पर ऐसे अर्थों का उदित होना जो शब्द के प्रधान अर्थों से संबंध नहीं रखते। अर्थारोप से मिलते-जुलते तत्व अर्थप्रस्फोट की विश्लेषणा हमने की है। इसका संबंध इसी अर्थप्रस्फोट से स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

§ १२६. भर्तृहरि ने कहा है कि व्योम में तल का होना माना जाता है और खद्योत (जुगनू) में अग्नि का होना। किंतु आकाश में न तल है और न खद्योत में अग्नि :

तलवद्दृश्यते व्योम खद्योतो हव्यवाडिव।
न चेवास्ति तलं व्योम्नि न खद्योते हुताशनः ॥ २-४२॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन वस्तुओं में जो तत्व नहीं है, उनमें हम अपने प्रत्यक्षानुभव के आधार पर-वस्तु को स्पष्टरूप से दूसरों के संमुख

---

१. वही।

उपस्थित करने के लिए सादृश्य को दृष्टिपथ में रखकर प्रायः स्थूल-वाची शब्दों का व्यवहार करते हैं। यथा, भर्तृहरि के अनुसार गगन में तल मान लेना और खद्योत में अग्नि मान लेना। ऐसे बहुत से प्रयोग नित्य हमारे सामने आते हैं। जैसे, 'कल्पना की उड़ान, कुशाग्रबुद्धि, ज्ञानगौरव, ज्ञानगंभीरता, ज्ञानप्रकाश, उच्चाशय, विशालहृदय', आदि। इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि इनके साथ स्थूल वस्तुओं का योग किया गया है—अर्थ को स्पष्ट रूप से इंद्रियबोधगम्य बनाने के लिए। स्पष्टता के लिए प्रायः सूक्ष्म वस्तु के अर्थ के साथ स्थूल वस्तु के अर्थ का योग किया गया है—सूक्ष्म अर्थ पर स्थूल अर्थ का आरोप किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रक्रिया लक्षणा-व्यापार द्वारा ही संभव हुई है। ऐसे प्रयोगों पर दृष्टि रहने के कारण ही भर्तृहरि ने कहा है कि लोक के द्वारा असमाख्येय (सूक्ष्म) तत्वों के लिए समाख्येय (स्थूल) वस्तु का व्यवहार होता है। विज्ञ इस लोकव्यवहार पर ही दृष्टि रखें। इसमें विकल्प न करें :

असमाख्येय तत्त्वानामर्थानां लौकिकैर्यथा।
व्यवहारे समाख्यानं तत्प्राज्ञो न विकल्पयेत् ॥२-१४४॥'

§ १३० अर्थपरिवर्तन के प्रधान प्रकारों की मीमांसा हमने देखी है। इन प्रकारों द्वारा अर्थपरिवर्तन की प्रक्रिया के माध्यम से अर्थ-परिवर्तन के अन्य प्रकारों के स्वरूप भी सामने आते हैं। ऐसे अन्य प्रकारों के स्वरूप की मीमांसा भी यहाँ अपेक्षित है। ऐसे अन्य प्रकारों में से हम पहले अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष की विवेचना की ओर लगते हैं।

अर्थोत्कर्ष : इसे अँगरेजी में 'एलिवेशन ऑर मेलिओरेशन ऑव् मीनिंग' (Elevation or Melioration of Meaning) कहते हैं। हम देखते हैं कि अनेक सांस्कृतिक तत्वों के कारण किन्हीं शब्दों का अर्थ

१. वही।

बुरा से भला हो जाता है, उसका अपकृष्ट अर्थ उत्कृष्ट अर्थ हो जाता है। सामान्यतः यही अर्थोत्कर्ष का स्वरूप है। भाषातात्विकों ने अर्थोत्कर्ष के मनोवैज्ञानिक कारणों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। विनम्रता में एक विचित्र अदूषण, संस्कार-सुधार होता है और स्नेह में एक अद्भुत बंधन। इनके कारण कुछ शब्द अपने अप्रिय अर्थ की अप्रियता त्याग देते हैं। मैत्री समुचित विशेषणों के अभाव में दोष को गुण में, अपशब्द को अत्यधिक प्रिय प्रशंसा में परिवर्तित कर देती है :

Politeness has singular refinements, and affection curious windings which causes certain terms with an unfavourable meaning to lose their disagreeable element. Friendship, as though in want of appropriate adjectives, changes blame into praise, and turns reproach to more highly-favoured eulogy.[1]

'साहस' शब्द का अर्थोत्कर्ष देखने योग्य है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा संस्कृत में इसका अर्थ कुछ दूसरा था और नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में इसका कुछ दूसरा अर्थ हो गया है। इसका उल्लेख मिलता है कि 'साहस' के अंतर्गत प्राचीन काल में पाँच काम आते थे :

मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिमर्षणम्।
पारुष्यमनृतञ्चैव साहसं पंचधा स्मृतम् ॥

'साहसिक' शब्द का प्रयोग आज भी बुरे अर्थ में ही प्रचलित है, अर्थात् 'डाकू' के अर्थ में। नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में इसका प्रयोग 'धैर्यपूर्वक आपदाओं, आदि का सामना करने की शक्ति, हिम्मत' के

१. Michel Breal : Semantics, p. 102.

अर्थ में होता है। 'ऋग्वेद' में भी इसका प्रयोग 'बल' के अर्थ में मिलता है। इसमें 'सत्' तथा 'दुः' उपसर्ग लगाकर भी आजकल इसका प्रयोग किया जाता है। गुजराती में इसका प्रयोग इस अच्छे अर्थ तथा इसके संस्कृत के बुरे अर्थ में मिलता है।

अँगरेजी शब्द के पर्याय के रूप में चलनेवाले कुछ शब्दों के अर्थ में भी उत्कर्ष देखा जाता है। अँगरेजी शब्द 'ओब्लाइज' (Oblige) का पर्याय 'बाधित' शब्द आजकल खूब प्रचलित है। अँगरेजी शब्द के संसर्ग से इसका अर्थ लिया जाता है 'अनुगृहीत', वैसे इसका मूल अर्थ है 'पीड़ित'।

कभी-कभी देखा जाता है कि किसी शब्द के अर्थ का अपकर्ष अनेक क्षेत्रों में तो हो चुका है, परंतु वह अपने मूल उत्कृष्ट अर्थ का धारण पारिभाषिक भाषा अथवा रूढ़ पदों में करता चलता है। अँगरेजी के 'नेव' (Knave) शब्द का मूल अर्थ है 'ब्वाय' (Boy=[बालक], चाकर)। आजकल इसका प्रचलित अर्थ है 'मूर्ख'। किंतु ताश के खेल में 'नेव' का मूल अर्थ 'बादशाह' (King) और 'बेगम' (Queen) के 'चाकर' (Servant) के अर्थ में ही चलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कभी-कभी अर्थापकर्ष के बावजूद भी कुछ शब्द अपने उत्कृष्ट अर्थ को पारिभाषिक भाषा अथवा रूढ़ पदों में धारण किए रहते हैं।

बहुप्रचलित 'सीक्रेटरी' (Secretary) शब्द का अर्थोत्कर्ष बड़ा मनोरंजक है। इसका एक समय अर्थ था 'वियुक्त करनेवाला' (Separator) और 'सीक्रेट' (Secret) शब्द का अर्थ था 'वियुक्त'। लैटिन शब्द 'सीसर्नो (Secerno=to separate=वियुक्त करना) के एक रूप 'सीक्रेटस्' (Secretus) से इन दोनों

शब्दों का संबंध है। हम जानते हैं कि आज 'सीक्रेटरी' का अर्थ 'सचिव', 'मंत्री' है।

अर्थोत्कर्ष के संबंध में किसी सामान्य प्रवृत्ति अथवा नियम का निर्धारण नहीं किया जा सकता। कभी-कभी यह विचित्र कारणोंवश घटित होता है। कुछ उदाहरण देखे जायं। 'मार्शल' (Marshal) का पहले अर्थ था 'साईस, घोड़े के लिए रखा गया चाकर' (Horse-boy)। राजा राजा होता ही है, ऐसी स्थिति में उसके पारिवारिक चाकरों (House-hold servant) का भी महत्व बढ़ा। अतः प्राचीन सीधे-सादे शब्दों ने संमानित उपाधियों का रूप धारण किया और ऐसे शब्दों के मूल अर्थों को लोग भूल गए। आजकल 'मार्शल' बहुत बड़ा अफसर होता है; यथा, 'फील्डमार्शल, एयरमार्शल', आदि। 'मार्शल' ट्यूटानिक शब्द है, जो प्राचीन उच्च जर्मन भाषा से फरासीसी भाषा में गृहीत हुआ। इसके अर्थोत्कर्ष से यह स्पष्ट है कि बाद में लोग भूल गए कि 'शाल' (Shal) का अर्थ था 'चाकर' (Servant) और 'मार' (Mar) का अर्थ था 'घोड़ा' (Horse)।

आजकल 'पिओनियर' (Pioneer) का प्रधान अर्थ 'आरंभकर्ता' है। किंतु प्राचीन समय में 'पिओनियर' उस सैनिक को कहते थे जो मार्ग के वृक्षों को काटकर, रास्ता बनाकर, और ऐसे ही कठिन तथा छोटे से छोटा कार्य कर सेना का मार्ग साफ करता था। यह सेना के निम्नतम भाग का सैनिक समझा जाता था। अभी बहुत दिन नहीं हुए किसी नए देश अथवा जंगल के किनारों पर बसनेवालों को सभ्यता के विकास का 'पिओनियर्स' (आरंभकर्ता) समझा जाने लगा। इस प्रकार इसका प्रयोग रूपक (Metaphor) के रूप में हुआ। आजकल इसका प्रयोग अन्य रूपकों के रूप में भी होता है, जैसे—'वैज्ञानिक गवेषणा के आरंभकर्ता' (Pioneers of scientific

discovery)। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थोत्कर्ष में अलंकारों का तत्व भी कार्य करता है।

§ १३१ **अर्थापकर्ष** : इसे अँगरेजी में 'डिटेरिओरेशन, डिजेनेरेशन, पेजोरेशन' (Deterioration, Degeneration, Pejoration) कहते हैं। अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष की प्रवृत्ति के संबंध में विचार करते हुए भाषातात्विक श्रीजुएन ने कहा है कि आचारशास्त्रीय धारणाओं के कारण अर्थापकर्ष होता है। सामाजिक परिवर्तनों के आधार पर घटित अर्थों में परिवर्तनों में अर्थापकर्ष तथा अर्थोत्कर्ष की संख्या प्रायः समान होती है :

...we may agree with the Dutch Linguist, Mgr. Schrijuen, that ethical concepts tend towards pejoration; whereas in modifications of meaning based upon social transformations, pejoration and melioration show approximately equal frequency.[१]

शब्दों का प्रयोग मानव करता है। हम देखते हैं कि मानवजीवन में उत्कर्ष की ओर भी जाता है और अपकर्ष की ओर भी। अपने प्रयोक्ता के जीवन की भाँति ही शब्दों का भी जीवन है। शब्द भी अर्थ की दृष्टि से उत्कर्ष और अपकर्ष की ओर जाते हैं अपने प्रयोक्ता मानव की भाँति शब्द प्रायः 'बुरे की ओर जाने' की अप्रिय प्रवृत्ति दिखाते हैं :

Words, like the human beings who use them, often manifest an unhappy tendency to 'go to the bad.'[२]

---

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 261.

२. वही, पृ० २६१।

§ २३२ विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि अर्थोत्कर्ष की अपेक्षा अर्थापकर्ष के कारण अधिक स्पष्ट हैं, साथ ही ये (कारण) अधिक संख्या में भी होते हैं। अर्थापकर्ष की प्रक्रिया अथवा इसके कारणों का अवलोकन यहाँ अतिप्रसंग न होगा।

जहाँ तक शब्दों का संबंध है, उनका अर्थापकर्ष प्रायः चुनाव और उनको दिए जा सकनेवाले आचार की दृष्टि से कुछ निम्नतर विशेष अथवा संकुचित अर्थ के कारण होता है :

So far as words are concerned, their degeneration ... is often due to a selection and specialization of some ethically lower connotation which may be implied in them.[1]

दोषदर्शन की किसी क्रिया तथा सांसारिकता के प्रति किसी प्रकार की सजगता के कारण अकसर अर्थ का अपकर्ष होता देखा जाता है :

A certain cynicism and worldly wisdom often lead words to degenerate in meaning.[1]

शब्द की विभिन्न अर्थों में परिवर्तित होने अथवा विभिन्न अर्थों के लिए प्रयुक्त होने की एक प्रकार की क्रिया के प्रायः साथ-साथ अर्थापकर्ष चलता है। यह इसलिए होता है कि शब्द सभी प्रकार के प्रसंगों में व्यवहृत होता है :

Deterioration is often accompanied by a kind of discoloration, which arises from the fact that word is used in all kinds of associations.[2]

---

१. वही।

२. Michel Breal: Semantics, p. 103.

सभी के लिए प्रयुक्त होने के कारण सभी नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं में 'श्रीयुत, श्रीमान्' शब्दों का अर्थापकर्ष हुआ है। यह अँगरेजी के 'मिस्टर' शब्द का पर्याय बन गया है। 'बाबू' शब्द में जो वैभव की गरिमा थी वह भी सभी के लिए प्रयोग में आने के कारण नहीं रह गई है। यह भी 'मिस्टर' का पर्यायवाची रह गया है। इससे बना 'बाबूगिरी' शब्द का भी अर्थापकर्ष हुआ है।

नव्य भारतीय आर्यभाषा बँगला में 'दारुण, भयंकर, सांघातिक' शब्दों का प्रयोग सभी प्रसंगों में होने के कारण अर्थ की दृष्टि से वे अपकृष्ट हो गए हैं : 'तिनि दारुण,—भयंकर,—सांघातिक भाल मानुष'।

अतिशयोक्तिवश भी अर्थापकर्ष होता है। 'सर्वनाश; सत्यानाश', 'विराट् सभा' में 'विराट्', 'प्रलयकारी दृश्य' में 'प्रलयंकारी' शब्दों का वास्तविक अर्थ नहीं रह गया है। इनका सामान्य अर्थ ही लिया जाता है। जैसे, बंगला में 'सर्वनाश' का अर्थ रह गया है 'चोट, क्षति।'

काम (Sex) से संबद्ध शब्दों के अर्थों में भी अपकर्ष की प्रवृत्ति देखी जाती है। 'सहवास, प्रसंग, समागम' आदि शब्दों का संबंध काम से है, अतः इनका अर्थ अपकृष्ट हो गया है।

कुछ ऐसे पेशे हैं जिन्हें समाज छोटा समझता है, अतः उनसे संबद्ध शब्दों में अर्थापकर्ष आ गया है। रुपए की देनलेन करने का पेशा समाज छोटा समझता है, इसीलिए 'महाजन' शब्द, जिसका मूल अर्थ है 'महत् व्यक्ति, बड़ा आदमी', बुरे अर्थ का बोध कराता है, अर्थात् 'रुपए की देनलेन करनेवाला धनी व्यक्ति' का बोध कराता है। इसी प्रकार रसोई बनाने का काम छोटा समझा गया, यह कार्य प्रायः ब्राह्मण करते हैं, अतः ब्राह्मणों के लिए (तथा राजाओं के लिए भी) प्रयुक्त 'महाराज' शब्द 'रसोइया' का अर्थ व्यक्त करने लगा। इस पेशे से संबद्ध अन्य शब्दों की भी यही अवस्था हुई। बंगाल में

'ठाकुर', उड़ीसा में 'पुजारी', बिहार में 'बाबा जी', उत्तर प्रदेश में 'महाराज' से 'रसोइया' का अर्थबोध होता है। ऐसे ही गुजरात तथा महाराष्ट्र में 'भैया' (=भाई) का अर्थ है 'पुष्ट उत्तर प्रदेशीय चाकर।' इसका भी अर्थापकर्ष पेशे के कारण ही हुआ है।

§ १३३ ऊपर हमने अर्थापकर्ष के प्रमुख-प्रमुख कारणों पर दृष्टि रखकर विवेचना की है, अर्थात् हमने इसकी विवेचना की कि अर्थापकर्ष प्रधानतः किन स्थितियों में घटित होता है। इसके कारणों के साथ-साथ इसकी प्रक्रिया की विवेचना भी की जा सकती है। अर्थापकर्ष कभी-कभी विशेष कारणवश घटित होता है। अस्तु, शब्द पहले प्रायः निम्न अर्थ में प्रयोग में आने लगता है, संभवतः हास्य, अप्रशंसा, आदि के प्रसंगों में। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है, यह क्रमशः निम्नतर अर्थ का स्वरूप ग्रहण करता जाता है। और, अन्त में यह अत्यंत घृणासूचक अथवा तिरस्कृत शब्द हो जा सकता है :

The degeneration is sometimes due to special causes. Usually, however, the word takes its first step in the downward path when it is used in slight, perhaps in jocose, disparagement. As time goes on, it gets into worse and worse odor, until at last it may become a term of extreme contempt or reprobation.[1]

ऐसे सभी शब्द ज्यों ही घृणित अर्थ को प्राप्त होते हैं त्यों ही अपने अभिधेयार्थ में इनका प्रयोग रुक जाता है :

All such words, as soon as they sacquire a

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge, Words and their Ways in English Speech, p. 284.

reproachful or contemptuous connotation, tend to go out of use in their descriptive meaning.[1]

कभी-कभी किसी शब्द में किन्हीं क्षेत्रों के व्यवहार में अर्थापकर्ष तो आ जाता है, किंतु किन्हीं क्षेत्रों के व्यवहार में यह अपने भले अर्थों को धारण किए रहता है :

Sometimes a word shows deterioration in some of its uses, but maintains itself in others.[2]

जब किसी शब्द का अर्थापकर्ष हो जाता है तब सामान्य अथवा चलित भाषा में उसका पर्यायवाची कोई शब्द उसका स्थान ग्रहण करने लगता है। यह पर्यायवाची शब्द अभिव्यक्ति के लिए उधार लिया गया नया शब्द हो सकता है, लेकिन प्रायः यह चलित भाषा में पहले से ही स्थित अथवा व्यवहृत रहता है। यह शब्द संभवतः अपने अर्थ में अधिकतर विस्तृत होने के कारण अर्थ की दृष्टि से परिवर्तित होकर किसी दूसरे शब्द के बदले में प्रयुक्त हो थोड़ा अपकृष्ट भी हो सकता है :

Whenever a word comes to have a disagreeable sense, some synonym begins to take its place in ordinary language. The synonym may be a new word borrowed for the express purpose, but it is more commonly a word already established, which may suffer a slight

१. वही, पृ० २८६।
२. वही पृ० २६६।

change of meaning, perhaps by being more generalized.'[1]

इस तथ्य का एक उदाहरण देखा जाय। अँगरेजी के 'नेव' (Knave) शब्द का अर्थ जब 'चाकर' (=Boy) से 'मूर्ख' होना आरंभ हुआ तब फरासीसी भाषा से उधार लिया गया और अँगरेजी में आगे से ही प्रचलित 'सरवेंट' (Servant=चाकर) शब्द ने इसका स्थान ग्रहण किया। 'सरवेंट' शब्द निश्चय ही भाषा में 'नेव' की अपेक्षा उत्कृष्ट अर्थ का बोधक था।

§ १३४ अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष की मीमांसा करते हुए हमने देखा है कि इन तत्वों के क्षेत्र में अर्थ की दृष्टि से किसी शब्द का ग्रहण और किसी शब्द का त्याग किया जाता है। एक शब्द को किसी शब्द के स्थान पर बैठाया जाता है और ऐसा करके एक शब्द प्रयोगच्युत कर दिया जाता है। भाषातात्विकों की दृष्टि अर्थ की दृष्टि से शब्दग्रहण तथा शब्दत्याग की इस प्रक्रिया पर गई है। कुछ लोगों ने इसे 'रिप्लेसमेंट एंड डिस्प्लेसमेंट ऑव् वर्ड्स' (Replacement and Displacement of words) का तत्व कहकर इसकी मीमांसा की है।[2] इस तत्व को अभी तक हमने अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष के क्षेत्र में ही देखा है। किंतु, इसका विस्तार अन्य क्षेत्रों तक भी जाता है तथा इसके घटित होने के अन्य कारण भी दृष्टिगत होते हैं।

शब्दग्रहण तथा शब्दत्याग : जैसा कि हमने ऊपर निवेदन किया है, जब-जब अर्थ की दृष्टि से एक शब्द दूसरे शब्द का स्थान ग्रहण करता है तब जो शब्द पदच्युत होता है वह या तो प्रयोग से दूर हो जाता है अथवा यदि प्रयुक्त होता भी है तो अति संकुचित

---

1. वही पृ० २६६।
2. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 263–5.

अर्थ में। पदच्युत शब्द बोलियों में भी चला जा सकता है। शब्द की ऐसी पदच्युति के कई कारण हो सकते हैं। उसका अर्थ अस्पष्ट होने अथवा अति संकुचित हो जाने के कारण समाज उसके स्थान पर दूसरे शब्द के प्रयोग का अनुभव कर सकता है। ऐसी स्थिति में ऐसे शब्द के स्थान पर नया शब्द लिया अथवा गढ़ा जाता है। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है। अँगरेजी के 'डीयर' (Deer), संस्कृत के 'मृग' शब्द का अर्थ पहले 'पशु' था। किंतु, जब ये 'हिरण' के अर्थ में संकुचित हो गए तब 'पशु' के लिए 'एनिमल, बीस्ट' (Animal, Beast = पशु) शब्द गृहीत हुए।

विभक्ति, परसर्ग, आदि के घिसघिस जाने से जब शब्द का रूप इतना छोटा हो जाता है कि वह (रूप) एकदम परिवर्तित होकर अस्पष्ट हो पड़ता है तब वह प्रचलित प्रयोग से प्रायः लुप्त हो जाता है और उसके स्थान पर दूसरा शब्द प्रयोग में आने लगता है। ऐसी स्थिति में यह भी संभव है कि उसकी जगह पर उसका अर्थ व्यक्त करने के लिए उससे असंबद्ध एकदम दूसरा शब्द आ जाय। नव्य भारतीय आर्यभाषा हिंदी में कारक परसर्गों का विकास इसका अच्छा उदाहरण है।

कभी-कभी समाज के निम्न वर्ग में प्रयुक्त शब्दों के स्थान पर अन्य शब्दों का ग्रहण होता है। ऐसे शब्द मूलतः इस वर्ग में प्रयुक्त प्रायः हास्य के प्रसंगों के हो सकते हैं। ऐसे शब्दों के स्थान पर पहले शिष्ट अर्थयुक्त समझे जानेवाले शब्दों का ग्रहण हो सकता है।

देशी (Native) शब्दों के स्थान पर ऐसे शब्दों का ग्रहण देखा जाता है जो सभ्यता के उच्चतर स्तर की भाषाओं से संबद्ध समझे जाते हैं। ऐसी स्थिति में पदच्युत शब्द का या तो लोप हो जाता है या वह संकुचित अर्थ में बना रहता है।

अनेक प्रसंगों में दिखाई पड़नेवाली शब्दच्युति का एक कारण यह है कि कुछ शब्द प्रायः ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेते हैं कि वे (अर्थ) सामान्य भाषा द्वारा अभिव्यक्त किए जाने से कहीं अधिक पवित्र समझे जाते हैं। अथवा भयंकर, बुरे या अशोभन समझे जाते हैं। ऐसी स्थिति में हम भाषा के धार्मिक अथवा आचारसंबंधी स्वरूप या 'भाषानिषेध' (Linguistic tabu) के सिद्धांत के संस्पर्श में आते हैं :

A very frequent reason for the displacement of words is that they often acquire a connotation regarded as too sacred for ordinary speech, or as dangerous sinistes or indecent. Here we come into contact with a religious and ethical aspect of language, and with the principle of linguistic tabu.[1]

अनेक प्रसंगों में हम देखते हैं कि वास्तविक देवता का नाम गुप्त रखा जाता है, हम उसकी उपाधि को ही जानते हैं। परिणामतः वर्णन करनेवाला विशेषण उसका नाम हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसका नाम कालांतर में भूल जाया जा सकता है। इससे देवताओं की कोटियों की संख्या भी जितनी मानी जाती है उससे बढ़ सकती है। देवता के नाम में शक्ति है, ऐसा विश्वास इस प्रकार के विशेषणों के ग्रहण का कारण माना जा सकता है।

इस प्रकार शब्दग्रहण तथा त्याग के संबंध में हमने संक्षिप्त मीमांसा की है। इस क्षेत्र के कुछ प्रमुख कारणों पर भी हमारी दृष्टि रही है। कुछ कारणों का उल्लेख हमने मंगल के लिए अमंगल तथा अमंगल के लिए मंगल शब्दों के ग्रहण-त्याग के प्रसंग में भी किया है।

---

१. वही, पृ० २६३।

१५

अर्थपरिवर्तन के अन्य प्रकार

§ १२५ **शब्दों की अनेकार्थता :** यथाप्रसंग अर्थपरिवर्तन के विभिन्न पक्षों की विवेचना हमने की है और अर्थपरिवर्तन के प्रकारों की मीमांसा भी यथास्थान की गई है। इन विवेचनों में हमने यथावसर देखा है कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मानसिक, आचारसंबंधी, आदि सांस्कृतिक विभिन्न कारणों तथा परिस्थितियोंवश शब्दों के अर्थ परिवर्तित होते हैं। कुछ ऐसे भाषातात्विक कारण भी हैं जो अर्थ-परिवर्तन में सहायक होते हैं, यथा, व्याकरण, मुहावरा, अलंकार, आदि, इनकी वजह से भी शब्द अन्य अर्थ ग्रहण करते हैं। ऐसी विश्लेषणाओं द्वारा हम सहज ही यह बोध करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, और अनेक अर्थधारी शब्दों की संख्या विभिन्न देशों तथा कालों में कम नहीं है। यहीं इस पर भी दृष्टि रखनी आवश्यक है कि शब्दों की अनेकार्थता-संबंधी विचार पौर्वात्य तथा पाश्चात्य सभी भाषामनीषियों ने की है। शब्दों की अनेकार्थता के तत्व को अँगरेजी में 'पोलिसेमिया' (Polysemia) कह कर विचार किया गया है।

एतत्संबंधी कुछ विचार पहले हम प्राचीन भाषाशास्त्रियों की दृष्टि से कर रहे हैं :

वृद्धिरादैच। १-१-१[1]

---

1. अष्टाध्यायी।

पाणिनि के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए नागेशभट्ट ने 'उद्योत' में लिखा है :

नित्ये शब्दार्थसंबंधे पुरुषव्यापारात् प्रागवाचकस्य न पुरुषव्यापारेण वाचकताशक्या कर्त्तुं मतः सर्वेसर्वार्थवाचका इत्यभ्युपगमादनेकशक्तिव्यवसायः ।[1]

कहा गया है कि सभी शब्द सभी अर्थों का बोध कराते हैं। यहाँ 'सभी अर्थों' से तात्पर्य उन 'अर्थों' से है जिन्हें शब्द विभिन्न देश, काल और व्यक्ति के माध्यम से ग्रहण करते हैं।

पाणिनि का एक सूत्र है :

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १-२-४५[2]

इस सूत्र के संबंध में विश्लेषण करते हुए पतंजलि ने कहा है :

एकश्च शब्दो बह्वर्थः । तद्यथा—अक्षाः पादा माषा इति ।

१-२-२[3]

एक शब्द बहु अर्थों का धारण करनेवाला होता है, जैसे, अक्ष, पाद, माष। कैयट 'प्रदीप' में पतंजलि के इस मत को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं :

यद्येकः शब्द एकस्मिन्नर्थे नियतः स्यात् तत एतदुच्यते वक्तुम् यतस्त्वनियमः ततः प्रकृतेरेव सर्वे अर्थाः स्युः । यथा दधि मध्वग्निचिदिति । प्रत्ययस्तु क्वचिद् द्योतकः । प्रत्ययस्यैव वा सर्वे अर्थाः स्यु इयानघुनेति यथा । प्रकृतिस्त्वर्थाभिधाने सहायक मात्रं कुर्यात् ।[3]

---

१. महाभाष्य ।

२. अष्टाध्यायी ।

३. महाभाष्य ।

कैयट के इस उद्धरणद्वारा हमारा प्रसंगप्राप्त निष्कर्ष यह है कि एक शब्द में एक ही अर्थ सीमित नहीं रहता। ऐसा होना अनियम है। इस संबंध में नागेशभट्ट ने भी 'उद्योत' में लिखा है :

प्रकृति प्रत्यययोरर्थवत्ताया अनैयत्यं दर्शयति[1]।

इस संबंध में भर्तृहरि ने भी पतंजलि, कैयट, नागेश का-सा ही मत व्यक्त किया है :

एकस्यापि च शब्दस्य निमित्तैरव्यवस्थितैः।
एकेन बहुभिश्चार्थो बहुधा परिकल्पते॥ २-१३८[2]

पुण्यराज इसकी टीका लिखते हुए कहते हैं कि अनियत—अनेक—शास्त्र की वासना के कारण एक ही व्यक्ति द्वारा एक घट शब्द का अव्यवस्थित शास्त्रसंस्कारवश—विभिन्न शास्त्रसंस्कारवश—क्रम से बहुधा बहु प्रकार का—अर्थ परिकल्पित होता है। स्पष्ट है कि इस एक व्यक्ति की बुद्धि नाना शास्त्रों के प्रभाव से प्रभावित है, अतः एक ही संग अपने प्रत्यय के अनुसार वह एक ही शब्द के बहुत प्रकार के अर्थ सोचता है : **एकस्य घट शब्दस्य निमित्तैः शास्त्र संस्कारैरव्यवस्थितैरेकेन पुरुषेणानियत शास्त्र वासनावशात् क्रमेण बहुधार्थः प्रकल्प्यते बहुभिश्च नाना शास्त्रसंस्कृत बुद्धिभिर्युगपत् स्वप्रत्ययानुसारेण बहुधापि परिकल्प्यते।**[2]

प्राचीन भारतीय भाषातात्त्विकों की एतत्संबंधी मीमांसा का निष्कर्ष स्पष्ट है। वह यह कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं।

§ १३६ अनेकार्थता (Polysemia) संबंधी पाश्चात्य भाषा-मनीषियों के विचारों का अवलोकन भी अब हम करें। कहा गया है कि सभी सभ्य देशों की भाषाएँ अनेकार्थता के क्षेत्र में अपना अवदान

१. वही।
२. वाक्यपदीयम्।

करती है। जो शब्द जितना अधिक अर्थ धारण करता है वह उतना ही अधिक बौद्धिक तथा सामाजिक कार्यों के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करता हुआ माना जा सकता है :

All the languages of civilised nations have their part in it. The more meanings a term has accumulated, the more it may be supposed to represent the various sides of intellectual and social activities.[1]

अनेकार्थता क्यों और कैसे होती है, उसके कारण क्या हैं, उसके घटित होने की प्रक्रिया क्या है? ये सब प्रश्न सामने आते हैं। हम देखते हैं कि अनेकार्थता की स्थिति में जब शब्द कोई नवीन अर्थ ग्रहण करता है तब उसके नवीन अर्थ के साथ उसका प्राचीन अर्थ भी बना रहता है, प्रचलित रहता है। एक 'चाबी' शब्द लीजिए। यह विभिन्न प्रसंगों तथा वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है। 'घड़ी की चाबी', 'बुद्धि की चाबी', 'प्रेम की चाबी', 'पियानो की चाबी', आदि विभिन्न प्रसंगों तथा वस्तुओं के लिए यह शब्द व्यवहार में आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही शब्द का प्रयोग अनेकार्थता की स्थिति में अर्थ के संकोच, विस्तार, मूर्त, अमूर्त, औपचारिक, आदि रूपों में कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में शब्द का रूप वही रहता है, किंतु, उसका अर्थ, मूल्य बदल जाता है।

एक दूसरा प्रश्न हमारे सामने यह है कि एक शब्द नए अर्थ तो ग्रहण करता जाता है, किंतु उसके विभिन्न अर्थों के व्यवहार अथवा बोध में भ्रम की संभावना क्यों नहीं होती? इसका उत्तर सरल है।

---

१. Michel Breal : Semantics, p. 140.

यह यह कि प्रसंग तथा परिस्थिति के अनुसार हम उसका समुचित अर्थ ले लेते हैं, अतः उसकी अनेकार्थता के बावजूद भी हमें भ्रम नहीं होता। प्रसंग के अनुसार हम मरीजों के 'डाक्टर' और साहित्य तथा विज्ञान के 'डाक्टर' का अर्थ समझ लेते हैं। ऐसे प्रसंग में 'सैंधवमानय' का उदाहरण बड़ा प्रसिद्ध है ही। यहाँ इस पर भी दृष्टि जाती है कि एक ही शब्द जब विभिन्न अर्थ धारण करता है तब मानों वह विभिन्न शब्द हो जाता है, जो विभिन्न अर्थों से युक्त होता है। 'सैंधव' एक शब्द है, मगर अपने में विभिन्न अर्थ धारण करने के कारण मानों विभिन्न शब्द ही हो गया है। ऐसे स्थलों पर हम बड़ी विशेषता यह देखते हैं कि एक ही शब्द के अर्थ एक दूसरे से एकदम भिन्न होते हैं। दूसरी विशेषता ऐसे प्रसंगों में यह देखी जाती है कि चाहे किसी शब्द का कोई अर्थ प्रचलन से उठ गया हो अथवा कम प्रचलित हो गया हो, किंतु प्रसंग उपस्थित होने पर उसका वह अर्थ सामने आ जाता है। इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि किसी शब्द का कोई अर्थ भले ही भुला दिया गया हो, मगर प्रसंग प्राप्त होने पर वह प्रयोक्ता, श्रोता अथवा पाठक के मन में आ जाता है। संस्कृत में 'मुग्ध' का एक अर्थ 'मूर्ख' है, जो आज प्रचलित नहीं है, किंतु यथोचित प्रसंग में इस अर्थ में इस शब्द के प्रयोग से इसका यह अर्थ सामने आ ही जाता है।

अनेकार्थता का एक प्रमुख कारण होता है मानवस्वभावगत संक्षेप की प्रवृत्ति। इस प्रवृत्ति के कारण दूरदर्शिता और वर्गीकरण दृष्टि में नहीं आते :

A very frequent cause of polysemia, which evades foresight, and classification, is abridgement.[1]

---

१. वही, पृ० १४६।

अपने-अपने संबंध के अनुसार 'सोसायटी' का अर्थ कोई 'एशियाटिक सोसायटी ऑव् बँगाल', कोई 'रेडक्रास सोसायटी', कोई 'मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी' लेगा। इसके तो अनेक उदाहरण संगृहीत किए जा सकते हैं। इन उदाहरणों में हम यह भी देख रहे हैं कि एक 'सोसायटी' शब्द अपने से संबद्ध अन्य शब्दों (—संस्थाओं) को अपदस्थ कर स्वयं सबका अर्थ बोध करा रहा है।

§ १२७ अनेकार्थी शब्दों के स्वरूप की कुछ चर्चा भी आवश्यक है। हिंदी भाषा को दृष्टि में रखकर यदि विचार किया जाय तो अनेकार्थी शब्द कई विभागों में बँटे दिखाई पड़ेंगे। अनेकार्थी शब्दों का एक विभाग ऐसा है जिसके शब्द विभिन्न प्रसंगों—परिस्थितियों में व्यवहृत होने के कारण विभिन्न अर्थों का ग्रहण करते हैं। 'गोली' 'बंदूक की गोली, औषध की गोली, खेलने की गोली, दर्जी के सूत की गोली', आदि अनेक अर्थों में व्यवहृत होती है। 'गति' का प्रयोग 'चाल', 'अवस्था', आदि अर्थों में होता है। 'जलना' क्रिया का प्रयोग शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रसंगों में होता है। इस विभाग के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

दूसरा विभाग ऐसे शब्दों का है जो ध्वनिविकास अथवा विकार के कारण समान अथवा एक से लगते हैं। एक उदाहरण लेकर इसे स्पष्ट करें। तत्सम 'काम' शब्द का अर्थ है 'इच्छा, संभोग की रुचि, कामदेव', आदि। किंतु एक दूसरा तद्भव 'काम' शब्द है, जो तत्सम संस्कृत 'कर्म' का विकसित रूप है, जिसका अर्थ है 'कार्य'। ध्वनि की दृष्टि से दोनों 'काम' हैं, किंतु एक तत्सम है और दूसरा तद्भव। इन दोनों रूपों के 'काम' में अनेकार्थता की बात यहाँ कही गई है। 'काज' शब्द का एक अर्थ है 'काम' और दूसरा अर्थ है 'बटन का घर, बटन का छेद।' 'काम' अर्थ देनेवाला 'काज' संस्कृत 'कार्य' का विकसित

रूप है, और 'बटन का घर' अर्थ देनेवाला 'काज' अरबी 'काग़ज़' का विकसित रूप है। 'कोट' शब्द हिंदी में चलता है 'दुर्ग' के अर्थ में। संस्कृत 'कोटि' के विकसित रूप 'कोट' का अर्थ है 'समूह, यूथ।' अँगरेज़ी 'कोट' (Coat) का अर्थ है 'एक अँगरेज़ी पोशाक', यह 'कोट' भी हिंदी में प्रचलित है।

तीसरा विभाग ऐसे शब्दों का है जिनके व्याकरणिक रूपों पर यदि ध्यान न दिया जाय तो उनमें अनेकार्थता का बोध होता है। 'गया', 'जा' धातु का भूतकालिक रूप है, किंतु संज्ञारूप में 'गया' का अर्थ होगा 'स्थान विशेष का नाम।' संज्ञा 'पर' का अर्थ 'पंख' है और समुच्चयबोधक 'पर' का अर्थ 'परंतु' है।

चौथे विभाग के अंतर्गत हम कुछ कारक परसर्गों को रख सकते हैं, जिनमें अनेकार्थता है, विशेषतः करण तथा अपादान कारक के परसर्ग में। 'हाथ से खाया' तथा 'हाथ से गिरा' में प्रथम 'से' साधन का तथा द्वितीय 'से' वियोग का बोध कराता है। इसी प्रकार 'इतना, उतना, जितना, कितना', आदि शब्द संख्या तथा परिमाण दोनों का बोध कराते हैं।

§ १३८ **शब्दों की एकार्थता :** जिस तत्व की विवेचना ऊपर की गई है उस तत्व के विपरीत यह तत्व है। अनेकार्थता के तत्व में एक शब्द के अनेक अर्थ की मीमांसा होती है और एकार्थता के तत्व में अनेक शब्दों के एक ही अर्थ की विवेचना की जाती है। पतंजलि ने भी इस तत्व की मीमांसा की है और कहा है कि बहुत से शब्द एकार्थी होते हैं, जैसे, इंद्र, शक्र, पुरुहूत, पुरंदर :

बहवो हि शब्दा एकार्था भवंति।

तद्यथा—इंद्रः शक्रः पुरुहूतः पुरंदरः॥ १-२-२[1]

---

1. महाभाष्य।

ऐसे एकार्थी शब्दों की संख्या कम नहीं है। किसी भी भाषा के सामान्य अभिधान अथवा पर्यायवाची अभिधान इनके उदाहरणों के संग्रह के लिए देखे जा सकते हैं। यहाँ एक प्रश्न यह किया जा सकता है कि क्या शब्द एकार्थी होते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना पड़ता है कि शब्द कभी भी एकार्थी नहीं होते। जिन शब्दों को हम एकार्थी समझते हैं उनमें से प्रत्येक का कोई न कोई विशेष अर्थ होता है। तब शब्द एकार्थी मान कैसे लिए जाते हैं? एकार्थी इसलिए मान लिए जाते हैं कि प्रत्येक शब्द के अर्थ के विशेषत्व अथवा वैभिन्न्य को कालांतर में समाज भुला देता है। इंद्र को 'ऐश्वर्यवान्' होने से 'इंद्र', 'शक्तिमान्' होने से 'शक्र', 'अनेक यज्ञ' करने से 'पुरुहूत', 'दानवों के पुर को नष्ट करनेवाला' होने से 'पुरंदर' कहा गया है। हम देखते हैं कि इंद्र के लिए प्रयुक्त होकर एकार्थी समझे जानेवाले शब्दों में से प्रत्येक का अपना-अपना विशेष अर्थ है, किंतु आज ये सब 'इंद्र' (=ऐश्वर्यमान्) के अर्थ के समान माने जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा में एकार्थी शब्दों के एकत्र होने का कारण है शब्दों के विशेष अर्थों का समाज द्वारा भुला दिया जाना।

जब एक भाषा-भाषी देश अथवा समाज दूसरी भाषा बोलनेवाले देश अथवा समाज के संपर्क में आता है तब भी किसी भाषा में एकार्थी शब्दों का आगमन होता है। उदाहरण सामने आने से हमारी बात और स्पष्ट होगी। 'कार्यालय, दफ्तर, आफिस' में पहला संस्कृत का, दूसरा फारसी का और तीसरा अँगरेजी का शब्द है; और, ये तीनों एकार्थी माने जाते हैं।

हम जानते हैं कि साहित्य की भाषा अथवा काव्य की भाषा को लेकर चलने में साहित्यकार को, विशेषतः कवि को अनेक बंधनों का

सामना करना पड़ता है। उसे गति, तुक, विभिन्न अलंकार, आदि पर दृष्टि रखकर रचना करनी पड़ती है। इन बंधनों के कारण बीच-बीच में अनेक एकार्थी शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में कुछ ऐसे शब्द जो अर्थ की दृष्टि से भेद के आधायक होते हैं (यथा, इंद्र, शक्र, पुरुहूत, पुरंदर, आदि) उन्हें एकार्थी के रूप में ही वह प्रयोग करता चलता है। परिणामतः ऐसा बार-बार होने से समाज ऐसे शब्दों को एकार्थी मान लेता है। इस प्रकार भी एकार्थी शब्दों की संख्या किसी भाषा में बढ़ती रहती है।

§ १३९. भाषाओं में प्रायः हमें एकार्थी शब्दों के युग्म मिलते हैं। इन युग्मों में एक भाषा के ही दोनों शब्द हो सकते हैं और एक शब्द विदेशी भी हो सकता है। ऐसे युग्मों को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि कभी-कभी युग्म के दोनों शब्दों के अर्थों में पूरी समानता होती है, और कभी-कभी इनमें आंशिक समानता होती है। 'पास-निकट, नेरे-नजदीक', 'नियम-कानून', 'शीत-सरदी', 'मेज-टेबुल', 'कुर्सी-चेयर' युग्मों में अर्थ की पूर्ण एकता है। ऐसे अनेक युग्म भाषाओं में मिलते हैं।

एकार्थी माने जानेवाले कुछ ऐसे युग्म भी दिखाई पड़ते हैं जिनमें अर्थ की आंशिक एकता परिलक्षित होती है। 'प्रेम-प्रीति', 'कृपा-दया', 'स्कूल-पाठशाला' में अर्थ की दृष्टि से आंशिक एकता है। ऐसे युग्म भी भाषाओं में अनेक मिलते हैं।

§ १४०. **ध्वनि की एकता तथा अर्थ की भिन्नता :** यथाप्रसंग हमने अर्थ की दृष्टि से शब्दों के एक युग्म की चर्चा की है, वह है 'काज'। 'काज' का एक मूल संस्कृत 'कार्य' है और दूसरा मूल अरबी 'काजः' है। संस्कृत मूल के 'काज' का अर्थ हिंदी में 'काम' है और अरबी मूल के 'काज' का अर्थ हिंदी में 'बटन का छेद' है। इन तथ्यों

का उल्लेख हमने पहले किया है। हम देखते हैं कि ये दो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, इनके दो भिन्न मूल भी हैं, किंतु इनकी ध्वनि अथवा इनके रूप में एकता है, इनके उच्चारण तथा वर्णविन्यास में भी एकता है। इसीलिए हमने इनकी चर्चा 'ध्वनि की एकता तथा अर्थ की भिन्नता' के अंतर्गत की है। अँगरेजी में ऐसे शब्दों को 'होमोनिम्स' (Homonyms) कहते हैं। ऐसे शब्दों के संबंध में प्रायः ये ही बातें कही गई हैं, जिन्हें हमने ऊपर देखा है :

It is a familiar fact that our vocabulary includes many pairs of words, which, though entirely distinct in origin and meaning, are pronounced alike, and sometimes spelled in the same way. Such words are called 'homonyms'.[1]

ऊपर हमने देखा है कि एक 'काज' शब्द संस्कृत मूल से और दूसरा अरबी मूल से आया है। कभी-कभी ऐसे शब्द एक ही मूल से आए भी हो सकते हैं। हमने देखा है कि हिंदी 'काम' संस्कृत 'कर्म' से आया है और दूसरा 'काम' स्वयं संस्कृत है। दोनों का अर्थ भिन्न है। शब्दों में ध्वनि के रंचमात्र साम्य होने पर लोकव्युत्पत्ति (Folk Etymology) भी ऐसे शब्दों की रचना में सहायता करती है, यद्यपि ध्वनिसाम्य के अतिरिक्त इनमें अन्य कोई साम्य नहीं देखा जाता :

Folk-etymology has often assisted in bring-

---

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge, Words and their Ways in English Speech, p. 357.
और देखिए Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 252.

ing into accord two words which have nothing in common except a slight resemblance of sound.[1]

§ १४१ **शब्दों के रूप और अर्थ की भिन्नता :** संस्कृत के 'पर्ण' शब्द के एक तद्भव रूप 'पान' का अर्थ होता है 'खानेयोग्य एक पत्ता' और इसी के एक तद्भव रूप 'पन्ना' का अर्थ होता है 'किताबों का पन्ना'। यहाँ हम देखते हैं कि 'पान' तथा 'पन्ना' शब्दों का मूल एक ही संस्कृत 'पर्ण' शब्द है, किंतु इसी के दो तद्भव रूप हुए और दोनों तद्भव रूपों के अर्थ भिन्न हैं, यद्यपि इनके अर्थों की भिन्नता में भी कुछ समानता है। यहाँ हम देखते हैं कि रूप की भी भिन्नता है और अर्थ की भी, किंतु मूलस्रोत की एकता है। व्युत्पत्ति के जानकारों के अतिरिक्त ऐसे शब्द सामान्य जनें को भिन्न-भिन्न जान पड़ सकते हैं। अँगरेजी में ऐसे शब्दों को 'डब्लेट्स' (Doublets) कहते हैं। इसके बारे में कहा गया है :

...with different words which go back, by diverse courses, to the same original forms··· at different times, have distinct, sense, and are not felt as related words except by the etymologist.[2]

सभी भाषाओं में ऐसे शब्द मिलते हैं और इनसे भाषा का शब्द-भांडार समृद्ध होता है। हिंदी में भी ऐसे बहुत से शब्द हैं। एक उदाहरण और देखें : 'पत्र, पत्ता, पत्तर, पतरी, पत्तल'। इन सभी का मूल संस्कृत 'पत्र' शब्द है। उद्धृत 'पत्र' का अर्थ 'चिट्ठी'; 'पत्ता' का

---

१. वही पृ० ३७५।
२. वही पृ०, ३७५।

अर्थ 'वृक्षपर्ण'; 'पत्तर' का अर्थ 'धातुनिर्मित चादर'; 'पत्तरी' का अर्थ 'पत्तों को जोड़कर बनाया गया ऐसा पात्र जो खाने के समय थाली का-सा काम देता है'—है। 'पत्तल' भी 'पत्तरी' ही है।

§ १४२ **अर्थ का भेदीकरण :** भाषा की परीक्षा करके देखा गया है कि प्रयोक्ता किन्हीं शब्दों में अर्थ का भेद कर उनका व्यवहार करता है। इस प्रकार के व्यवहार को देखकर भाषातात्त्विकों ने भेद के अथवा भेदीकरण के कुछ नियम भी निर्धारित किए हैं; और, किसी भाषा की परीक्षा करके उस (भाषा) की प्रवृत्ति के अनुसार इस संबंध में विभिन्न नियम भी निर्धारित किए जा सकते हैं। ऐसे नियमों को अँगरेजी में 'ला ऑव् डिफरेंशियएशन' (Law of Differentiation) कहा गया है।

यह अर्थ का भेदीकरण है क्या ? इसका स्वरूप क्या है ? अर्थ का भेदीकरण सलक्ष्य और व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा स्पष्टतः एकार्थी और एक समय एकार्थी शब्द भिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं तथा ऐसी स्थिति में बिना अर्थ के भेद के व्यवहृत नहीं किए जा सकते :

We define differentiation as the intentional, ordered process by which words, apparently synonymous, and once synonymous, have nevertheless taken different meanings, and can no longer be used indiscriminately.[1]

भाषातात्त्विकों ने भेदीकरण का बड़ा महत्त्व माना है, क्योंकि भाषा का इतिहास ही भेदीकरण की एक शृंखला है। भाषाओं की उत्पत्ति होने पर यह (भेदीकरण) होता ही है :

The history of Language is a series of

१. Michel Breal : Semantics, p. 27.

differentiations. That, and that alone, took place at the birth of languages.[1]

भेदीकरण शिशु के अधरों की भुनभुनाहट से ही स्वरूप ग्रहण करना आरंभ करता है, क्योंकि इसी के सहारे वह धीरे-धीरे अपने द्वारा स्पष्टतः अनुभूत वस्तुओं को शब्द देता है। इसी के द्वारा वह प्रत्येक देखी वस्तु को तटस्थतापूर्वक पहले-पहले शब्दों से अभिहित करता है :

That, and that alone, takes place at the first lispings of a child; for it is by Differentiation that he applies little by little to distinct objects the syllables which he at first scatters impartially upon every thing that he meets.[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भेदीकरण मानव के लिए एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। शिशुकाल से ही वह इसका आश्रय लेकर चलता है। इसी से शिशु अपनी भाषा आरंभ करता है।

§ १४३ अर्थ के भेदीकरण का एक प्रधान कारण है विभिन्न देशों की जनता का संमिलन। और, जब तक ऐसा होता रहेगा तब तक भेदीकरण के नए-नए उदाहरण मिलते रहेंगे :

So long as populations mix with each other, there will be fresh examples of Differentiation.[1]

इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाय। भारत में संस्कृत का एक 'वैद्य' शब्द था। बंग प्रदेश में इसके पर्याय के रूप में संस्कृत का ही 'कविराज' शब्द भी चलता था। मुसलमानों तथा अँगरेजों के संमिलन से अरबी के 'हकीम' तथा अँगरेजी के 'डाक्टर'

१. वही, पृ० ३०।

शब्द आए, जो 'वैद्य' तथा 'कविराज' के पर्याय ही हैं। किंतु जनता इन एकार्थी शब्दों में अर्थ का भेद करके व्यवहार करती है। वह जानती है कि 'वैद्य' आयुर्वेदिक विधि के अनुसार चिकित्सा करनेवाला होता है; 'कविराज' भी इसी विधि के अनुसार चिकित्सा करता है, किंतु वह बंगाली होता है, 'डाक्टर' एलोपैथिक, होमियोपैथिक, नेचरोपैथिक विधि से चिकित्सा करता है; 'हकीम' यूनानी विधि से चिकित्सा करता है। इस प्रकार विदेशियों के संमिलन से एकार्थी शब्दों में भी जनता अर्थ के भेद को निहित कर उनका व्यवहार करती है। हिंदी में उक्त शब्दों से ये चार अर्थ लिए जाते हैं, वैसे कोई संस्कृतवाला सबको 'वैद्य', कोई बंगाली सबको 'कविराज', कोई उर्दूवाला सबको 'हकीम', कोई अँगरेज सबको 'डाक्टर' कह सकता है।

सभ्यता के अधिक अथवा अल्प विकास द्वारा भेदीकरण के दूसरे सिद्धांत की सीमा निर्धारित होती है। अर्थों का सूक्ष्म भेद संस्कृत व्यक्तियों के मध्य ही उत्पन्न होता है :

Another limit to the principle of Differentiaton is set by the greater or less progress of civilisation. There are shades of meaning which arise only among cultivated peoples.[1]

§ १४४ अर्थ के भेदीकरण की उत्पत्ति की प्रक्रिया भी विचारणीय है। कुछ व्यक्तियों की अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सूक्ष्म बुद्धि द्वारा पहले अर्थ का भेद किया जाता है, बाद में यह भेद सभी की संपत्ति हो जाता है :

Distinctions are first made by a few minds

---

१. वही, पृ० ३८।

that are more subtle than others; then they become the common property of all.'

ऊपर हमने देखा है कि सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के साथ-साथ भेदीकरण की भावना समाज में बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति में अर्थ के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों की ओर दृष्टि जाने लगती है। परिणामतः वस्तु, व्यक्ति, प्रसंग, आदि की दृष्टि से शब्दों के अर्थ के भेद की भावना बढ़ती है और विभिन्न वस्तु, व्यक्ति, प्रसंग, आदि के लिए विभिन्न शब्दों का व्यवहार भी चल पड़ता है। यह अर्थ के भेदीकरण के कारण ही होता है। एक उदाहरण देखिए। सामान्य व्यक्ति किसी वस्तु को 'खाते हैं', पूज्य व्यक्ति किसी वस्तु को 'पाते हैं', देवता किसी वस्तु का 'भोग लगाते हैं'। सामान्य व्यक्ति 'मरता है', मगर बड़े लोग 'स्वर्ग जाते हैं'। ऐसे अनेक प्रयोग संगृहीत किए जा सकते हैं।

सभ्यता बढ़ती है, समाज शिष्ट होता है, तब प्रसंग के अनुसार एकार्थी शब्दों में अर्थ का भेद हो जाता है। इसी कारण नम्रतावश लोग अपने 'घर' को 'गरीबखाना' और जिससे संलाप करते हैं उसके 'घर' को 'दौलतखाना' कहते हैं।

'प्रणाम, नमस्कार, नमस्ते' एकार्थी शब्द हैं, किंतु वयोवृद्ध को 'प्रणाम' तथा समानवयसी को 'नमस्कार, नमस्ते' करते हैं। 'नमस्ते' में आर्यसमाज अथवा सुधारवाद की गंध आ गई है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा के विकास का ही यह परिणाम है कि बोलीवाचक एकार्थी शब्द जीव-जंतुओं की विभिन्न बोलियों के लिए व्यवहृत होते हैं। गाय, बकरी, कुत्ता, गधा, कोकिल, चिड़िया

---

१. वही, पृ० ३८।

के लिए क्रमशः 'रँभाना, मिमियाना, भूकना, रेंकना, कूकना, चह-चहाना' का प्रयोग होता है।

समूहबोधक एकार्थी शब्दों में भी अर्थ का भेद कर व्यवहार करते हैं। सेना की 'टुकड़ी', जनता की 'भीड़', टिड्डियों का 'दल', बगलों की 'पाँत', आदि का प्रयोग होता है।

शरीरावयववाची एकार्थी शब्दों में भी भेदीकरण किया गया है। आदमी का 'नख' होता है और गाय, बैल, बकरी, आदि का 'खुर' होता है। नारी का 'स्तन' होता है और मादा पशुओं का 'थन'। आदमी की 'नाक' होती है और गाय, बैल, आदि का 'थूथन'।

यथाप्रसंग इसका उल्लेख किया गया है कि विभिन्न देशों के लोगों के संमिलन से किसी भाषा में विदेशी भाषा के जो शब्द आते हैं उनमें अर्थगत भेदीकरण किया जाता है। हमने 'वैद्य, कविराज, हकीम, डाक्टर' के उदाहरण भी एतत्प्रसंग में उपस्थित किए हैं। किसी एक ही भाषा के तत्सम शब्दों के विभिन्न तद्भव रूपों में भी यह भेदीकरण देखा जाता है। जैसे संस्कृत 'गर्भिणी' शब्द नारी के प्रसंग में व्यवहृत होता है और इसका तद्भव हिंदी 'गाभिन' पशु के प्रसंग में प्रयुक्त होता है। ऐसे ही देशी शब्द 'बियाना' पशु के प्रसंग में तथा 'प्रसव करना' नारी के प्रसंग में आता है। ये एकार्थी शब्द हैं, किंतु प्रसंग के अनुसार इनमें अर्थगत भेदीकरण कर लिया जाता है।

एक ही धातु से बने विभिन्न यौगिक शब्दों में अर्थगत भेदीकरण की क्रिया का होना देखा जाता है। संस्कृत 'श्रत्+धा' से ही बने 'श्रद्धा' तथा 'श्राद्ध' में अर्थ का भेद है।

§ १४५. अब विचारणीय यह है कि अर्थभेद लाया कैसे जाता है, अर्थ के भेदीकरण की प्रक्रिया क्या है, भाषाओं के शब्दों में अर्थ

का भेदीकरण करने के लिए जो विकार अथवा परिवर्तन किए हुए मिलते हैं उनको देखने से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में विभिन्न प्रक्रियाओं का आश्रय लिया जाता है। शब्दों के ध्वनिसमूह के आदि, मध्य अथवा अंत में विकार अथवा परिवर्तन लाकर यह कार्य सिद्ध किया जाता है। ऐसी स्थिति में कोई शब्द एक दूसरा ही रूप ग्रहण कर लेता है। हमने अभी ऊपर देखा है कि 'श्रद्धा' के अंत्य आकार को 'अ' ध्वनि के पश्चात् लाकर इसे 'श्राद्ध' बनाया गया है। 'पुत्र' को 'पौत्र' करके अर्थभेद लाया गया है। इसी प्रकार अर्थ के भेदीकरण के लिए 'पिता' को 'प्रपिता' रूप में रख दिया जाता है। 'सिर' को 'सिरा' करके अर्थभेद करते हैं। 'बतास' को 'बतासा' बनाकर अर्थभेद सिद्ध किया गया है। कभी-कभी किसी शब्द के साथ छोटा-सा दूसरा शब्द ही जोड़कर अर्थ का भेदीकरण किया जाता है। 'उस्ताद' का प्रयोग अच्छे अर्थ में होता है, किंतु 'उस्ताद जी' का प्रयोग होता है 'वेश्या को तालीम देनेवाला व्यक्ति' के अर्थ में। संस्कृत 'भगिनी' से बने 'बाई' शब्द में, जो गुजराती में 'बहिन' के अर्थ में ही चलता है, 'जी' जोड़ने से वह 'वेश्या' का अर्थ देने लगता है।

लिंगभेद से भी अर्थभेद सिद्ध होता है। 'टोपा', 'टोपी', 'छुरा', 'छुरी', आदि इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। सामान्यतः पुलिंग बड़े तथा स्त्रीलिंग छोटे परिमाण का बोध कराता है। कभी-कभी लिंगभेद से अर्थ एकदम बदला हुआ दिखाई पड़ता है। 'गगरा' लोहे, पीतल, ताँबे, चाँदी, आदि धातुओं का होता है और 'गगरी' मिट्टी की होती है। यहाँ 'अँगूठा' तथा 'अँगूठी' के अर्थभेद पर भी दृष्टि डाली जा सकती है।

§ १४६ **अर्थसरूपता :** यहाँ 'सरूपता' शब्द का व्यवहार हम 'समान रूपता' के अर्थ में कर रहे हैं। अँगरेजी में इसे 'एनालोजी'

(Analogy) कहते हैं। सरूपता प्रधानतः दो प्रकार की होती है, एक शब्द के रूप की और दूसरी शब्द के अर्थ की। इन दोनों सरूपताओं में अन्योन्याश्रय भी है। यहाँ हमारा अभीष्ट अर्थ की सरूपता की विवेचना है। शब्द के रूप अथवा ध्वनि की सरूपता तो स्पष्ट है। जैसे, 'दुःख' शब्द के आधार पर 'सुक्ख' बना लेना, जिसका प्रयोग प्राचीन हिंदीकाव्य में खूब मिलता है।

सरूपता को एक शक्ति कहा गया है, जो सभी भाषाओं, सभी विचारों में व्याप्त है; और, जो हमारी भाषा के ढाँचे के व्यापक परिवर्तन में कारणस्वरूप है :

...a force which pervades all speech as it pervades all thought, and which has caused far-reaching changes in the structure of our language.[1]

ईसा की १८वीं शती के अंत अथवा १९वीं शती के आरंभ से ही भाषातात्विक प्रबंधों में सरूपता सम्यक स्थान ग्रहण करती आ रही है। यह अकारण भी नहीं है, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील है। अगर उसे किसी अभिव्यक्ति का आविष्कार करना पड़ता है तो वह पहले से चले आते नमूने के आधार पर अपेक्षाकृत शीघ्र ही उसे आविष्कृत कर लेता है। मौलिक रचना अथवा आविष्कार में वह अपने को सीमित नहीं करता। सरूपता को कारण मानना भूल कारण है, वह साधन है :

In the philological treatises of the last fifteen or twenty years Analogy occupies a

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their Ways in English Speech, p. 343.

considerable space, and that is not without reason, since man is by nature imitative : if he has to invent an expression, he does it more quickly by modelling it on some existing type, than by limiting himself to original creation. But it is mistake to represent Analogy as a cause. Analogy is nothing more than a means.[1]

निम्नलिखित दृष्टियों से भाषाओं को सरूपता का आश्रय लेना पड़ता है :

१. अभिव्यक्ति की कोई कठिनाई दूर करने के लिए,
२. अधिक स्पष्टता लाने के लिए,
३. किसी वैपरीत्य अथवा सारूप्य पर ज़ोर देने के लिए :

Languages have recourse to Analogy :

(a) To avoid some difficulty of expression,
(b) To secure greater clearness,
(c) To emphasise either an antithesis or similitude.[2]

'किसी वैपरीत्य अथवा सारूप्य पर ज़ोर देने के लिए' भाषाएँ सरूपता का आश्रय ग्रहण करती हैं, इस तथ्य पर थोड़ा विचार किया जाय। इस तथ्य का संबंध मानवमन से है। मानवमन में समता तथा विषमता का युग्म बराबर रहता है। सुख तथा दुःख का स्वरूप समान रूप से उसके मन में विद्यमान है। इस प्रकार सम तथा विषम भाव,

१. Michel Breal : Semantics, p. 60.
२. वही, पृ० ६०, ६५, ६८।

वस्तु, आदि साथ-साथ उसके मन में रहते हैं। उसने एक का बोध किया नहीं कि दूसरा भी उसके बोध के किसी न किसी स्तर में आ जाता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि उक्त दोनों रूपों की जानकारी के कारण ही वह एक का बोध अच्छी तरह कर पाता है, क्योंकि दोनों सापेक्ष हैं। बेन (Bain) ने कहा है कि जब हम किसी गुण पर विचार करते हैं तब हमारा मन उस गुण के विपरीत गुण की स्थिति में जाता है, यह बड़ा स्वाभाविक है :

Nothing is more natural, when we consider a quality, than the disposition to return to the other quality which forms its contrast.[1]

यहाँ हमारे विचार का निष्कर्ष यही है कि सरूपता के तत्व के आधार पर एक भाव से युक्त शब्द की समता पर उससे विपरीत भाव से युक्त शब्द का निर्माण किया जा सकता है। तारापुरवाला (I. J. S. Taraporewala) ने इसका बड़ा अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक बार दो बालक किसी वाद-विवाद में लीन थे। उनमें से एक ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा : 'No, it is not (नहीं, ऐसा नहीं है)। दूसरे ने तुरत जवाब दिया : 'It is sot' (वह ऐसा ही है)[२]। यहाँ पर 'not' की सरूपता पर 'so' को 'sot' कर लिया गया है। इन दोनों शब्दों के अर्थ का वैपरीत्य तो है ही।

आरंभ में ही हमने रूप और अर्थ की सरूपता के अन्योन्याश्रय की ओर संकेत किया था। हम यह देख सकते हैं कि प्रत्येक भाषा में कुछ

१. वही, पृ० ९८–९।

२. Elements of the Science of Langage, p. 75

ऐसे शब्द हैं जो अर्थ की दृष्टि से समान होने पर रूप की दृष्टि से भी कुछ-कुछ समान हैं :

...we may find in every language some words which from being similer in meaning have approximated in form.[1]

इसके उदाहरण के लिए हम संस्कृत 'पति' शब्द लेते हैं। इसके दो अर्थ हैं, एक 'मालिक, स्वामी' और दूसरा 'स्त्री का स्वामी' (Husband)। प्रथम अर्थ में व्यवहृत 'पति' शब्द का षष्ठी का रूप होता है 'पतेः।' द्वितीय अर्थ में प्रयुक्त होने पर इसका षष्ठी का रूप 'पत्युः' होता है। इसका यह रूप 'पितृ', 'मातृ' शब्दों के षष्ठी के रूप 'पितुः', 'मातुः' की सरूपता के आधार पर बना है। यहाँ यही दिखाना अभीष्ट है कि ये तीनों शब्द षष्ठी में हैं, अथवा इनके षष्ठी के अर्थ को व्यक्त करने के लिए इनके रूप की एकता सरूपता के आधार पर आई है। अन्य भाषाओं में भी यही तथ्य दृष्टिगोचर होता है।[2]

§ १४७ लोकनिरुक्ति : इसे 'लोकव्युत्पत्ति' भी कह सकते हैं। अँगरेजी में इसे कई नामों से अभिहित करते हैं। यथा, 'फोक इटिमॉलॉजी' (Folk Etymology), 'पापुलर इटिमॉलॉजी' (Popular Etymology), 'फाल्स इटिमॉलॉजी' (False Etymology)।

अर्थतत्व का संबंध लोकनिरुक्ति से भी है। इसके द्वारा एक विदेशी अथवा अपरिचित ध्वनि (रूप) अथवा अर्थवाले घिसेघिसाए देशी शब्द के स्थान पर परिचित ध्वनि (रूप) अथवा अल्पाधिक

१. Michel Breal : Semantics, p. 71.

२. E. H. Sturtevant : Linguistic Change. pp. 94-6.

रूप से समान ध्वनि (रूप) वाला समस्त पद आता है। जो ऐसे ध्वनिवाले शब्द अथवा पद आते हैं उनके अर्थ सामान्यतः समझे जाने योग्य होते हैं, यद्यपि ऐसे शब्द प्रायः हटाए गए अथवा अपदस्थ हुए शब्दों से काफी भिन्न होते हैं :

Semantics is concerned, further, with 'popular etymology', whereby a foreign word or an obselete native term of unfamiliar sound or meaning is replaced by one which is familiar or by a compound of more or less similar sound and with a signification which is generally intelligible, though usually widely different from that of the word displaced.'[1]

यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि ऐसे दो शब्दों में वास्तविक अथवा काल्पनिक साम्य होता है, किंतु इसके मूल भिन्न होते हैं। और, इनका भ्रामक संबंध शब्द के रूप और अर्थ पर स्पष्ट प्रभाव डालता है। इस प्रकार लोकनिरुक्ति भाषा में एक प्रेरणाशक्ति का काम करती है।[२]

लोकनिरुक्ति द्वारा बने शब्द में कभी-कभी बहुत ही थोड़ा परिवर्तन आ सकता है, केवल ऐसा हो सकता है कि शब्द के वर्णविन्यास में फर्क अथवा अंतर आ जाय। किंतु इस वर्णविन्यास का अंतर प्रायः विद्वान् लोग लाते हैं, जनता नहीं लाती :

The change may by very slight, affecting

---

१. Louis H. Gray : Foundations of Language, p. 270.

२. J. B. Greenough, G. L. Kittredge, Words and their Ways in English Speech, p. 331.

only the orthography......But changes in spelling comes oftener from scholars than from the people.[1]

लोकनिरुक्ति द्वारा शब्द के वर्णविन्यास पर ही प्रभाव नहीं पड़ता। इसके द्वारा जब दो शब्दों का संबंधस्थापन होता है तब यह भ्रमवश जिस शब्द के साथ दूसरे शब्द का संबंध जुड़ा हुआ समझा जाता है उस (दूसरे) शब्द के रूप को सम्यक् रूप से मिलाने के लिए अंशतः अथवा पूर्णतः परिवर्तित कर देता है :

... It transforms the word, in whole or in part, so to bring it nearer to the word or words with which it is ignorantly thought to be connected.[2]

लोकनिरुक्ति द्वारा इस प्रकार जब दो शब्दों के बीच संबंध-स्थापन होता है तब उनमें अर्थ की दृष्टि से या तो केवल अति सामान्य संबंध होता है या एकदम नहीं होता :

Often there is only the slenderest connection in sense, or none at all, between two words that are thus associated by popular etymology.[3]

काशी के अनेक महादेवों में से एक 'ओंकारेश्वर महादेव' है।

---

१. वही, पृ० १३१-२।
२. वही, पृ० १३१।
३. वही, पृ० १३५।

इनका मंदिर राजघाट के पास है। जनता में ये 'हुकालेसर महादेव' के नाम से प्रसिद्ध हैं और इन्हें हुक्के चढ़ाए जाते हैं।

काशी के पास मिर्जापुर में 'लतीफशाह' की कब्र है। जनता इन्हें 'लचाशाह' कहती है और अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए मन्नत मानते समय पास के पेड़ में 'लचा' बाँध आती है।

वंग प्रदेश में एक बार एक गाँव का गाँव ईसाई हो गया। किंतु हिंदुत्व का संस्कार तब भी गया नहीं था, अतः इन्होंने दुर्गापूजा का पूरा विधान किया और पादरियों को भी ये निमंत्रित कर आए। पादरी लोग मूर्तिपूजा देख कर इन पर बहुत बिगड़े। इस पर गाँव के मुखिया ने कहा : 'आमरा रमाई कार्त्तिकेर चेला हयेछि, तबे दुर्गापूजा करब ना ? (रमाई कार्त्तिक के चेले हुए हैं, तो दुर्गापूजा नहीं करेंगे ?)'। यहाँ 'रमाईकार्त्तिक' से तात्पर्य है 'रोमन कैथोलिक' (Roman Catholic) से। इसी प्रकार ऊपर के उदाहरणों में 'ओंकारेश्वर' का 'हुकालेसर' तथा 'लतीफशाह' का 'लचाशाह' हुआ है।

१६

नाम

§ १४८ वस्तु, व्यक्ति, स्थान को नाम देना अथवा इनका नामकरण करना भी अर्थतत्व के प्रधान विषयों में से एक है। और, यह रोचक विषय है। अपनी रोचकता तथा प्रधानता के कारण यह अर्थतात्विक विद्वानों के विचारविषय से छूटा नहीं है। आधुनिक विदेशी भाषाशास्त्रियों तथा प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी इस विषय की सम्यक् विवेचना की है। प्राचीन यूनानी विद्वानों की दृष्टि भी इस विषय की ओर गई है।

पहले हम इस पर विचार करें कि वस्तु, व्यक्ति, स्थान के नामकरण की सामान्य प्रक्रिया क्या है? यह देखें कि नाम देने अथवा रखने की सामान्य पद्धति क्या है? जो नाम दिया जाय वह मान्य हो, इसके लिए यह अनिवार्य है कि निःसंदेह रूप से मूलतः उसमें किसी न किसी रूप में कुछ सच्ची और आकर्षक विशेषता हो। नाम की यह विशेषता भी होनी चाहिए कि यह जिन लोगों के सामने पहले पहल रखा जाय उनके मन को अवश्य संतुष्ट कर सके। किंतु उसमें ये सब विशेषताएँ मात्र आरंभ में ही आवश्यक समझी जाती हैं :

For this name to be accepted it must no doubt originally possess some true and striking characteristic on one side or another, it must satisfy the minds of those to whom it is first

submitted. But this condition is imperative only at the outset.[1]

यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि नाम में ऐसे गुण हों कि वह कम से कम आरंभ में सबके द्वारा गृहीत हो सके, क्योंकि एक बार गृहीत होने पर वह अपने नैरुक्तिक अथवा व्युत्पत्तिक अर्थ को तेजी से त्याग देता है, अगर ऐसा न करे तो यह नैरुक्तिक अर्थ लोगों के लिए घबड़ाहट का विषय बन जाय :

Once accepted, it rids itself of its etymological signification, otherwise this signification might become an embarrasment.[1]

मतलब यह कि नाम के गृहीत हो जाने पर नामद्वारा व्यक्त प्रधानतः नैरुक्तिक अर्थ जनता भुला देती है। यदि न भुलाए तो उसके परिणाम की बात ऊपर कही गई है।

नाम देने की जिस प्रक्रिया की चर्चा की गई है कभी-कभी उसमें भूल-भ्रांति भी हो जाती है। बहुत-सी वस्तुओं को गलत नाम दे दिए जाते हैं। यह भूल-भ्रांति नाम देनेवाले मूल अथवा आरंभिक व्यक्ति की हो सकती, यह भी हो सकता है कि बीच में कोई ऐसा परिवर्तन अथवा व्यवधान आ गया हो जिसने वस्तुओं और उसके दिए गए नाम के बीच के सामंजस्य को नष्ट कर दिया हो :

Many objects are inaccurately named, whether though the ignorance of the original authors, or by some intervening change which disturbs the harmony between the sign and the thing signified.[1]

---

१. Michel Breal : Semantics, p. 172

यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न भी हो जाय तो किसी वस्तु को दिया गया नाम (शब्द) ऐसा लगता है कि उस (शब्द) में कोई दोष है ही नहीं। और, इस गलत नाम का प्रतिसंस्कार करने की कोई कल्पना भी नहीं करता है। बात यह है कि ऐसी स्थिति में इस प्रकार के नाम मानों अव्यक्त स्वीकृति द्वारा गृहीत हो जाते हैं और इस स्वीकृति का हमें ध्यान भी नहीं रहता है :

Neverthelesss words answer the same purpose as though they were of fautless accuracy. No one dreams of revising them. They are accepted by a tacit consent of which we are not even conscious.[1]

इस तथ्य के उदाहरण देखे जा सकते हैं। गाँव के लोगों ने एक बार 'मोटर' को 'हवा गाड़ी' नाम दे दिया, उसे हवा के वेग से जाने-वाली देख कर। यह नाम गाँवों में अब भी चलता है। ऐसे ही 'संग्रहालय' (Museum) को 'जादूघर' नाम दिया गया, जो अब भी प्रचलित है।

हमने ऊपर देखा है कि नाम देने में मूल-भ्रांति हो जाती है। विडंबना यह है कि कभी-कभी पढ़े-लिखे समझदार लोग ऐसा कर बैठते हैं। एक उदाहरण देखिए। कोलंबस (Columbus) ने 'नयी दुनिया' के निवासियों को 'इंडियंस' (Indians = भारतीय) नाम दे दिया।

§ १४६. अब हम यह विचार करना चाहते हैं कि वस्तुओं के नाम

---

१. वही।

किस प्रक्रिया द्वारा पड़ते हैं। इसकी विभिन्न प्रक्रियाएँ हो सकती हैं। किन्हीं प्रधान प्रक्रियाओं की चर्चा हम कर रहे हैं।

कभी-कभी जिस सामग्री से कोई वस्तु निर्मित होती है, उस सामग्री का नाम ही वस्तु का नाम हो जाता है :

...the material of which a thing is composed may become the special name of the article itself.[१]

'ग्लास' (Glass) नामक सामग्री से बने 'चश्मे' को, या 'पीने के एक प्रकार के बासन' को 'ग्लास' कहा जाता है।

किसी विशेष गुण, जिसके आधार पर कोई वस्तु नामग्रहण करती है वह गुण पीछे रह जाता है अथवा एकदम भुला दिया जाता है। और, इस नाम का शब्द किसी एक वर्ग को नाम देने के अलावा पूरी जाति का वाचक हो जाता है :

The particular characteristic after which an object has been named may therefore retire into the back-ground, may even be wholly forgotten. Instead of designating one category only, the word comes to designate the whole species.[२]

खूब अच्छी तरह हम जानते हैं कि 'लाल पगड़ी' से हम 'पुलिस' का अर्थ लेते हैं; 'सफेद पाघड़ी' को हम 'पारसियों का पुरोहित' कहते हैं।

किसी स्थान की कोई वस्तु प्रसिद्ध हो जाती है, तो उस स्थान का नाम ही उस वस्तु को दे दिया जाता है। लोग घीवाले की दूकान

१. J. B. Greenough, G. L. Kittredge : Words and their ways in English speech, P. 255.

२. Michel Breal : Semantics, p. 116.

पर जाकर 'बुटवल, चंदौसी' माँगते हैं। ये स्थानों के नाम हैं, जहाँ का घी प्रसिद्ध है।

आधार-आधेय संबंध के विपर्यय से भी वस्तुओं को नाम दिए जाते हैं। जैसे, जब हम कहते हैं कि 'उनको आँख है' तब आँख का अर्थ यहाँ होता है 'आँख की शक्ति, दृष्टि (Sight)'। इस प्रकार आधेय को आधार का नाम दिया गया है।

कभी-कभी कर्ता का नाम कृति को दे दिया जाता है। 'मैंने चंडीदास पढ़ा है' का अर्थ है 'मैंने चंडीदास की कृति पढ़ी है'।

लक्षणा-लक्ष्य के विपर्यय से भी नाम पड़ते हैं। रूसवालों का झंडा लाल (Red) है, अतः उन्हें 'रेड्स' (Reds = लाल) भी कहते हैं। इसी प्रकार कम्युनिस्टों को भी 'रेड्स' कहते हैं।

किसी एक भाषा की वस्तु का नाम जब दूसरी भाषा में जाता है तब कभी-कभी उसके नैरुक्तिक रूप और अर्थ को ठीक से न जानने के कारण, इस प्रकार उसे एक व्यक्तिवाचक नाम मान लेने के कारण, जिस भाषा में वह शब्द जाता है उस भाषा का उसी विदेशी शब्द का एकार्थी शब्द उसके साथ जोड़ दिया जाता है। एक उदाहरण से हमारी बात और स्पष्ट होगी। पुर्तगाली शब्द 'पाव' है, जिसका अर्थ है 'रोटी'। किंतु नव्य भारतीय आर्यभाषा में जब यह गृहीत हुआ तब रोटीवाचक इस शब्द में 'रोटी' शब्द भी जोड़ दिया गया। इस प्रकार इसका नाम पड़ गया 'पाव रोटी'।

इस प्रकार संक्षेप में हमने निवेदन किया कि वस्तुओं के नाम किस प्रकार पड़ते हैं। हम देखते हैं कि वस्तुओं को नाम देने में अर्थारोप का अत्यधिक हाथ है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि नाम देने में लक्षणा का प्रभूत महत्व है।

§ १५० स्थानों के नामकरण की प्रक्रिया अल्पाधिक रूप में वही है, जो वस्तुओं के नामकरण की प्रक्रिया है। हम देखते हैं कि स्थानों के नाम उन्हें (स्थानों को) बसानेवालों के नाम पर पड़े हैं। किसी की स्मृति में भी बहुत से स्थान बसाए गए हैं, जो जिनकी स्मृति में बसाए गए हैं उनके नाम से अभिहित हैं। उत्तर भारत में इस प्रकार दिए गए स्थान के नामों के बाद प्रायः 'पुर', 'गढ़', 'आबाद' शब्द लगाए जाते हैं। जैसे 'गोरखपुर', 'आजमगढ़', 'मुरादाबाद।' उत्तर भारत में कुछ स्थानों के नाम ऐसे हैं जो अँगरेजों के नाम के बाद 'गंज' लगाकर बने हैं। यथा, 'राबर्ट्सगंज'। यहाँ ध्यान में रखने की बात है कि ऐसे स्थानों के अनेक नाम हैं, जो निश्चय ही किसी के नाम पर बसे हैं, किंतु जिनके नाम पर ये बसे हैं उन व्यक्तियों के बारे में हम प्रायः कुछ नहीं जानते, न जानने की हमें चिंता ही रहती है। अर्थतात्त्विकों की दृष्टि इस जानकारी को प्राप्त करने की ओर जरूर जाती है।

नगरों के मुहल्लों के नाम भी 'पुर', 'पुरा', 'टोला', 'गंज', 'आबाद', 'बाजार', आदि वाले मिलते हैं। देवी, देवताओं के नाम पर भी बहुत से मुहल्लों के नाम पड़ते हैं। समान पेशे अथवा रोजगार-वालों के एक साथ निवास करने, या दूकान रहने से भी मुहल्लों के नाम पड़ते हैं। जैसे, 'गड़ेरिया टोला', 'ठठेरी बाजार', 'सराफा'। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानों के नाम विभिन्न रूपों में पड़ते हैं। हमने सामान्य रूप से इस संबंध में निवेदन किया है। नाम पड़ने के विभिन्न कारण भी हो सकते हैं। 'काशी' का एक नाम 'वाराणसी' इसलिए पड़ा कि यह वरुणा और असी के बीच बसा है। 'सारनाथ' का एक नाम 'मृगदाव' इसलिए है कि वहाँ के जंगल में मृग, आदि अधिक पाए जाते थे। स्थान के नाम पड़ने के इस प्रकार अनेक कारण हो सकते हैं।

वस्तुओं के नाम की विवेचना करते हुए विदेशी शब्द 'पाव' में 'रोटी' शब्द लगाकर पुनरुक्ति करने की चर्चा हमने की है। ऐसी पुनरुक्ति स्थान के नामों के साथ भी होती देखी जाती है। द्रविड़ भाषा में 'मलय' का अर्थ ही 'पर्वत' है। फिर भी हम लोग उसमें 'पर्वत'-वाची 'गिरी' लगाकर कहते हैं 'मलयगिरि'। 'नीलगिरि' में 'पर्वत-वाची' 'गिरी' शब्द पड़ा है, फिर भी अँगरेज लोग इसे 'नीलग्री हिल्स' (Nilgri Hills) कहते हैं।

स्थानों के नाम लोकनिरुक्ति द्वारा प्रायः परिवर्तित हो जाते हैं :

Place-names frequently suffer change through popular etymology.[1]

'हिंदू विश्वविद्यालय' के 'आर्ट्स कालेज' को इक्के-ताँगेवाले तथा उधर के सामान्य ग्रामीण जन 'आठ कालेज' कहते हैं। और, उसके बाद के दो साइंस के कालेजों को वे 'नौ कालेज' और 'दस कालेज' नाम देते हैं।

§ १५१ अब हम व्यक्तिवाचक नामों की मीमांसा भी देख लें। पहले कुछ भाषातात्विकों की धारणा थी कि व्यक्तिवाचक नामों का एक भिन्न वर्ग है और ये भाषा की सीमा के बाहर हैं :

It has been maintained that proper names, ...formed a species apart, and were beyond the pale of Language.[2]

ऐसी धारणावालों के पक्ष के प्रधानतः तीन तर्क हैं :

१. व्यक्तिवाचक नामों के नैरुक्तिक अर्थ का कोई भी मूल्य नहीं है।

---

१. Louis H. Gray : Foundations, of Language p. 273.

२. Michel Breal : Semantics, p. 170.

२. व्यक्तिवाचक नाम बिना अनूदित हुए एक भाषा से दूसरी भाषा में जाते हैं।

३. व्यक्तिवाचक नामों का ध्वनि परिवर्तन अत्यंत ही मंद गति से होता है :

And this opinion has some arguments in its favour. First of all, the etymological sense of proper names is of no value at all; again, the names pass from one language to another without being translated; finally, their phonetic transformation is far less rapid.[1]

इन तर्कों की विवेचना जातिवाचक नामों को संमुख रखकर की गई है। भाषातात्विकों का मत है कि व्यक्तिवाचक नामों तथा जातिवाचक नामों में केवल मात्रा का भेद है। व्यक्तिवाचक नाम, वस्तुतः मध्यम शक्तिवाले शब्द होते हैं। यदि उनके नैरुक्तिक अर्थ का कोई महत्व नहीं है तो यही बात सामान्य संज्ञाओं के संबंध में भी कही जा सकती है, जो संज्ञा अपने मूल को त्यागकर ही विकसित होती है। प्रथम तर्क की विवेचना इस प्रकार की गई है :

Nevertheless it may be said that between proper names and common names there is but a difference of degree. They are, so to speak, signs at a second power. If their etymological meaning counts for nothing, we have seen that the same observation applies to ordinary substantives, whose progress consists in leaving their starting point.[1]

---

१. वही।

द्वितीय तर्क के संबंध में कहा गया है कि यदि वे बिना अनूदित हुए एक भाषा से दूसरी भाषा में जाते हैं तो उनकी यह विशेषता अनेक पदों वा उपाधियों, कार्यों, व्यवहारों, आविष्कारों, पोशाकों, आदि के नाम की विशेषता के समान है :

If they pass from one language to another without being translated, they possess this peculiarity in common with many names of dignities, functions, uses, inventions, costumes, etc.[1]

यदि यह कहा जाय कि उनमें ध्वनिपरिवर्तन कम होता है तो इसका कारण यह है कि विशेष सावधानता से उनकी रक्षा की जाती है। और, इस विशेषता की दृष्टि से वे कुछ धार्मिक अथवा शासन-संबंधी शब्दों के समान हैं। यह तृतीय तर्क की विवेचना है :

If they share less in phonetic change, that is, due to the special care with which they are preserved, and they have this charactersitic in common with certain religious or administrative words.[2]

इस प्रकार व्यक्तिवाचक तथा जातिवाचक नामों की तुलनात्मक मीमांसा से व्यक्तिवाचक नामों के स्वरूप के संबंध में हमारी जानकारी अधिक स्पष्ट होती है।

§ १५२ अपने देश के व्यक्तिवाचक नामों पर जब दृष्टि जाती है तब हम देखते हैं कि उनमें बड़ा वैभिन्य अथवा वैचित्र्य है। इसे यों

१. वही।

२. वही, पृ० १७०–१।

कहा जाय कि अपने देश के व्यक्तियों का नामकरण विभिन्न प्रकार से किया जाता है। दूसरी बात यह है कि नामकरण में नाम देनेवाले की विभिन्न मनोवृत्तियाँ भी काम करती हैं।

नामकरण में जब अंधविश्वास काम करता है तब अजीब-अजीब नाम सामने आते हैं। जैसे, घुरहू, पनारू, नकछेदी, सतकौड़ी, आदि। ऐसे नामों के रखने में यह अंधविश्वास काम करता है कि खराब नाम रखने से संतान जीवित रहेगी। जब किसी के बच्चे शिशुकाल में ही मर-मर जाते हैं तब प्रायः इस अंधविश्वास के वशीभूत हो ऐसे अजीब औ गरीब नाम रख दिए जाते हैं।

शिशुकाल में बालक की कुछ मनोवृत्तियों को लक्ष्य कर नाम रख दिए जाते हैं और वे वयस्क होने पर भी बने रहते हैं। यथा, नटखट, खेलाड़ी, आदि।

शरीर की दृष्टि से भी नाम पड़ते हैं। बहुत लोगों के नाम कल्लू, कालू, गोरे, दुबरी, नाटे, मोटे, आदि होते हैं।

प्यार के कारण माँ-बाप शिशुकाल में किसी का जो नाम रख देते हैं वह उसके वयस्क होने पर भी बना रहता है। जैसे, मुन्नू, मुन्नी, हीरा, सोना, बच्चा, बच्ची, आदि।

संतान के क्रम के अनुसार भी नाम पड़ जाते हैं। किसी को, मान लीजिए, दो लड़के हैं, तो प्रथम का बड़कू और द्वितीय का छोटकू, नाम रख देते हैं, और वही नाम चल जाता है।

किसी देवी-देवता की आराधना करने, अथवा मन्नत मानने से प्राप्त संतान का नाम या तो उस देवी-देवता का नाम ही रख देते हैं अथवा आराधना या मन्नत के फलस्वरूप उसकी प्राप्ति के कारण उस देवता के नाम के बाद -प्रसाद अथवा प्रदानवाची कोई शब्द लगा

देते हैं। हनुमान, दुर्गा, शीतला, काली, विष्णुदत्त, कालीप्रसाद, रामदीन, हरिफल, सूर्यकुमार, आदि ऐसे ही नाम हैं। हम देखते हैं कि यदि आराधना अथवा मन्नत से प्राप्त संतान नहीं भी होती तो भी देवी-देवताओं के नाम पर बहुत से नाम रख दिए जाते हैं।

नामकरण में विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का भी काफी प्रभाव दिखाई पड़ता है। वैष्णवों के नाम विष्णुसंबंधी नामों, शाक्तों के नाम शक्ति-संबंधी नामों, शैवों के नाम शिवसंबंधी नामों से प्रायः संबंध रखते हैं। ऐसे नामों में देवी-देवताओं के नामों के बाद दत्त, प्रसाद, दीन, पद, चरण, सेवक, चंद्र, नाथ, आदि शब्द भी जोड़ देते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय नामों में धर्म, देवी, देवता, अध्यात्म, आदि की भावना अधिकतर मिलती है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि संप्रदाय पर दृष्टि रखकर रखे गए नामों द्वारा किसी संप्रदाय विशेष की छाप स्पष्टतः लक्षित होती है।

प्राचीन काल के भक्त कवियों के नामों के पश्चात् 'दास' शब्द लगता था, जिसका तात्पर्य था कि व्यक्ति अपने आराध्य, इष्टदेवता, भगवान् का 'दास, सेवक' है। भगवान् 'स्वामी' है और व्यक्ति (जो भक्त है) 'दास' है। ऐसे नाम समाज के सभी वर्गों के लोगों के होते थे, ब्राह्मणों तक के ऐसे नाम होते थे। कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, चंडीदास, आदि नामों से हम परिचित हैं। आधुनिक काल में 'दास' लगा कर नाम रखना लोग पसंद नहीं करते। इसे छोटेपन का 'दास, सेवक' का बोधक मानते हैं।

वैष्णवों के प्रभाव से बंग प्रदेश में 'मलिना' जैसे नाम मिलते हैं, जो 'मलिन' का स्त्रीबोधक रूप है। ऐसे नामों का तात्पर्य यही है कि 'मैं माया मलिन हूँ; भगवान्, हमारा उद्धार करो।'

संन्यासियों के नामों में आनंद और स्वामी शब्द लगाए जाते हैं।

जैसे, दयानंद, विवेकानंद, श्रद्धानंद, स्वामी शिवानंद, स्वामी प्रज्ञानंद, आदि। स्वामी शब्द प्रायः पहले लगाते हैं और आनंद शब्द बाद में ही रहता है।

प्राचीन महापुरुषों के नाम भी किसी को दिए जाते हैं। सीता, सावित्री, देवकी, प्रताप, पृथ्वीराज, आदि नाम ऐसे ही हैं। ऐसे नामों में नाम रखनेवालों की दृष्टि नाम के अनुसार बालक में गुण भरने की भावना रहती है। बालक के जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए ऐसे ही अनेक प्रकार के नाम रखे जाते हैं। जैसे, शुभमय, सुखमय, प्रकाश-कुमार, अशोकचंद्र, प्रफुल्ल, रुचिरा, श्रीमती, लक्ष्मी, आदि।

देश, समाज, आदि पर दृष्टि रख कर भी कुछ लोगों के नाम रखे जाते हैं। मैं जानता हूँ, एक व्यक्ति का नाम 'स्वराज्यप्रसाद' है। विश्व-बंधु, विश्वमित्र, देशमित्र, जैसे नाम भी होते हैं।

हिंदी और अरबी-फारसी शब्दों के मेल से भी नाम रखे जाते हैं। रामबख्श, रामइकबाल, गुरुबख्श, आदि ऐसे ही नाम हैं।

हम देखते हैं कि पुरुषों के नाम संक्षिप्त होने पर कभी-कभी स्त्रियों के नाम हो जाते हैं। सीताराम, सीता; राधेश्याम, राधे; शैलजारंजन, शैलजा; होते बराबर देखे जाते हैं। इस प्रकार भाषागत संक्षेप की प्रवृत्ति का प्रभाव यहाँ भी देखा जाता है।

आधुनिक काल में बंग प्रदेश के नामों के अनुकरण पर नाम रखने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। इस प्रदेश में किसी शब्द में ईश, कुमार, नाथ, चंद्र, इंद्र, आदि शब्द लगाकर नाम रखने की चाल विशेष है और इस चाल का प्रभाव अन्य प्रदेशों में भी देखा जा रहा है। बंग प्रदेश में सत्येश, सुरजितकुमार, रवींद्रनाथ, सुनीलचंद्र, समींद्र, आदि नाम खूब प्रचलित हैं, ऐसे नामों का प्रभाव अन्य प्रदेशों में दिखाई पड़ रहा है।

आजकल छोटे नामों के रखने की प्रवृत्ति भी चली है। जैसे, कोमल कुमार भट्टाचार्य से आजकल 'कुमार' निकाल कर मात्र कोमल भट्टाचार्य रखने की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। ऐसी स्थिति में कुमार, नाथ, चंद्र, आदि शब्द भी मूल नाम के साथ कम लगने लगे हैं। इसी प्रकार स्त्रियों के नामों से भी देवी, कुमारी, आदि शब्द हट रहे हैं।

§ १५२ नामों के पश्चात् आस्पद लिखने की प्रथा है। कई प्रदेशों में तो यह अनिवार्य है। इसीलिए सुकुमार सेन, रामप्रसाद त्रिपाठी, देवेंद्र सिंह, चंद्रप्रकाश गुप्त, आदि आस्पद सहित नाम मिलते हैं। सेन, त्रिपाठी, सिंह, गुप्त आस्पद हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग का सूचक शर्मा, वर्मा, गुप्त, आस्पद भी लोग लगाते हैं।

कुछ नाम ऐसे हैं जिनमें 'आस्पद' के स्थान पर जातिसूचक शब्द मिलते हैं। जैसे, देवकीनंदन खत्री।

आस्पद के स्थान पर पेशासूचक शब्द भी लोग रखते देखे जाते हैं। जमनालाल बजाज, संतकुमार जौहरी, प्रेमकुमार सर्राफ, आदि ऐसे ही नाम हैं।

ध्यान से देखने से ज्ञात होता है कि उत्तर प्रदेश तथा बिहार में प्रायः नाम के बाद आस्पद, जाति, पेशे के नाम, आदि कुछ नहीं रखते।

महाराष्ट्र तथा गुजरात में व्यक्ति का नाम, व्यक्ति के पिता का नाम तब आस्पद, इस क्रम से नाम रहता है। यथा, बाल गंगाधर तिलक। ये लोग आस्पद न लिखकर गाँव के नाम के बाद 'कर' लगाकर भी नाम लिखते हैं। विष्णु भास्कर केलकर ऐसा ही नाम है। पारसी लोग अपना, पिता का, प्रपिता का और तब गाँव का नाम लिखते हैं। आइ०जे०एस० तारापुरवाला नाम इसी प्रकार है। मद्रासी लोग स्थान

का नाम पहले, अपना नाम बीच में और आस्पद अंत में रखते हैं। जैसे, बेजवाड़ा गोपाल रेड्डी।

आस्पदों अथवा उपाधियों के नाम भी विचित्र-विचित्र होते हैं। ये अध्ययन के अलग विषय हैं। काश्मीरियों के कुछ आस्पद देखिए: नेहरू, कुंजरू, तकरू, काटजू, बांचू, आदि। ये नाम प्रायः स्थान में उकार लगा कर बनते हैं। राजस्थानियों के आस्पद के नाम भी प्रायः स्थान को लेकर होते हैं। ये भी कुछ विचित्र होते हैं। यथा, केडिया, बेरिया, चमरिया, झुनझुनवाला, बिड़ला, आदि। गुजरातियों के कुछ नाम, जो पेशे को लेकर होते हैं, सुनने में विचित्र लगते हैं। ऐसे नाम हैं: बालटीवाला, लेबलवाला, दारूवाला, चाँदीवाला, आदि। खत्रियों के आस्पदों के कुछ नाम देखिए: रायसुराना, कक्कड़, मेहरा, टंडन, मेहरोत्रा, मलहोत्रा, आदि। पंजाबियों के भी कुछ आस्पद ऐसे हैं। उनके आस्पद ढंद, पेंतल, आदि भी होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तियों के नाम, उनके आस्पद, आदि का अध्ययन बड़ा रोचक है। यह गवेषणा का एक स्वतंत्र विषय ही है।[1] मैंने संक्षेप में इस विषय की चर्चा करने का प्रयत्न किया है। यहाँ इस पर भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यदि व्यक्तिवाचक नामों का अध्ययन सुचारुरूप से किया जाय तो देश तथा समाज की सभ्यता-संस्कृति के संबंध में बहुविधि अभिज्ञता प्राप्त हो सकती है। हम सभ्यता-संस्कृति शब्दों का व्यवहार काफी व्यापक अर्थ में कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि व्यक्तिवाचक नामों के सम्यक् अध्ययन से देश तथा समाज के धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक, आदि प्रवृत्तियों का पूरा आभास मिल सकता है।

---

१. देखिए, विद्याभूषण 'विभु': अभिधान-अनुशीलन।

§ १५४ नामसंबंधी विवेचना के आरंभ में ही हमने निवेदन किया था कि यूनानी विचारकों की दृष्टि भी इस विषय की ओर गई है। सॉक्रेटीज़ (Socrates) तथा हर्मोजीनीज़ (Hermogenes) के बीच हुआ जो संलाप हमें प्राप्त है उसमें वस्तुओं के नाम देने की मीमांसा भी की गई। इस संलाप के दौरान में क्रेटीलस (Cratylus) के विचारों की ओर भी सॉक्रेटीज़ ने संकेत किया है। सॉक्रेटीज़ का कथन है कि नाम का औचित्य यही है कि वह किसी वस्तु के गुण की ओर संकेत करता है :

...the propriety of name is that which points out the quality of a thing.[1]

वस्तुओं के नामकरण के संबंध में यहाँ सॉक्रेटीज़ ने प्रथम मौलिक तथ्य की ओर संकेत किया है। और, इसे सभी अर्थतात्त्विक स्वीकार करते हैं।

वस्तु को नाम देने के संबंध में अब हम हर्मोजीनीज़ के मत का उल्लेख कर रहे हैं, जिसे सुनकर सॉक्रेटीज़ ने अपना मत प्रकट किया था। हर्मोजीनीज़ ने माना है कि नाम का औचित्य परंपरा तथा जनस्वीकृति के अतिरिक्त और कहीं से नहीं आता :

I cannot be persuaded that there is any other propriety of appellation, than through convention and common consent.[2]

हर्मोजीनीज़ नामकरण के संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए

---

१. George Burges : The works of Plato, Vol. III, p. 372.

२. वही, पृ० ३८४।

कहता है कि मेरे विचार से जब कोई किसी वस्तु को नाम देता है तब वह नाम उचित ही होता है :

......to me it appears, that the name, which any one assigns to a thing, is the proper one.[1]

हर्मोजीनीज का यह मत भी है कि नाम प्रकृतितः अथवा स्वभावतः किसी वस्तु में स्थित नहीं रहता। नाम नियम-कानून और रीति-रिवाज के अनुसार पड़ते हैं। और, इसी दृष्टि से लोग नाम देते हैं :

...to each thing there is no name naturally inherent but only through the law and custom of those who are wont so to call them.[2]

इतना कहकर हर्मोजीनीज ने सॉक्रेटीज से कहा है कि ,यह मेरा मत है। इसके अतिरिक्त कोई मत हो तो मैं सीखने-सुनने को तैयार हूँ। इतना कहकर हर्मोजीनीज ने यह भी कहा है कि मैं किसी वस्तु को एक नाम से पुकारूँ, जो मैं उसे दूँ, और तुम दूसरे नाम से पुकारो, जो तुम उसे दो। इस प्रकार प्रत्येक स्थिति में मैं देखता हूँ कि किसी वस्तु को नाम व्यक्ति देता है :

I should call a thing by one name, which I assign to it, and you by another, which you (assign) to it. And after this manner, I see that by each state, names are assigned individually.[3]

---

१. वही।

२. वही, पृ० २८५।

३. वही, पृ० २८६।

हर्मोजीनीज के विचारों को सुनकर सॉक्रेटीज अपना मत प्रकट करता है। वह कहता है, तब हम वस्तुओं को इस प्रकार तथा इस साधन से नाम दें, जिस रूप में वे (वस्तुएँ) प्रकृति में स्थित रहती हैं। अपनी इच्छा के अनुसार हम उन्हें नाम न दें :

we must then give names to things, in the way and by the instrument through which they exist in nature. (to name and be named), and not as we please.[1]

सॉक्रेटीज ने अपना ऐसा मत प्रकट करते हुए क्रैटीलस का अनुमोदन किया है।[2] इस प्रकार यही मत क्रैटीलस का भी है। सॉक्रेटीज तथा क्रैटीलस के इस मत का तात्पर्य क्या है ? इसका तात्पर्य स्पष्टतः यही जान पड़ता है कि प्रकृति में वस्तुओं का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है, प्रकृति में वस्तुओं का जो गुण स्पष्टरूप से व्यक्त होता है, उसी के अनुसार उनका नामकरण होता है। इस मत का प्रतिपादन हम दूसरे प्रकार से भी कर सकते हैं। वह इस प्रकार से कि किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की प्रकृति—स्वभाव में जो गुण स्पष्टतः देखा जाता है उसी के अनुसार उसका नामकरण किया जाता है। इस प्रकार इन विचारकों के मतानुसार किसी वस्तु-व्यक्ति के प्रधान—सर्वप्रधान गुण को पाने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण की भी आवश्यकता है, अन्यथा किसी वस्तु को सम्यक् नाम दिया भी कैसे जा सकता है। इसीलिए तो सॉक्रेटीज ने कहा है कि नाम देना न क्षणिक व्यापार है, न अचतुर व्यक्ति का काम है, और न नाम देनेवाले सर्वत्र पाए ही जाते हैं।[3]

---

१. वही, पृ० २१० और देखिए पृ० २०६।
२. वही, पृ० २११।

§ १५५ प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों ने भी वस्तुओं-व्यक्तियों के नामकरण के संबंध में विवेचना की है। और, इनका मत भी मूलतः यूनानी विचारकों के समान ही है। इन दोनों की विचारपद्धति में थोड़ा अंतर अवश्य लक्षित होता है। यूनानी विचारकों की दृष्टि इस क्षेत्र में मूलतः व्यावहारिक अथवा सामाजिक पक्ष पर है और प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों की दृष्टि सामाजिक तथा भाषाशास्त्रीय दोनों पक्षों पर है। यास्क का कथन है :

व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्याणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके। १-२[1]

यास्क के कहने का तात्पर्य यह है कि लोक में नित्य व्यवहार की दृष्टि से वस्तुओं के नामकरण के लिए शब्दों का प्रयोग होता है, शब्दों का व्यवहार इसलिए होता है कि उन शब्दों में व्यापकता तथा सूक्ष्मता है।

यहीं हम भर्तृहरि के मत का भी उल्लेख करना चाहते हैं, जो मानते हैं कि शब्द और अर्थ के बीच नित्य संबंध है। इतना ही नहीं, वे यह भी मानते हैं कि व्यक्तिवाचक नाम में भी, जिनमें अर्थ संकुचित अथवा विशेषरूप में निहित रहता है, शब्द तथा अर्थ का नित्य संबंध विद्यमान है :

व्यवहाराय नियमः संज्ञानां संज्ञिनि क्वचित्।
नित्य एव तु संबंधो डित्थादिषु गवादिवत् ॥२-३६६[2]

यास्क ने नामकरण की मीमांसा प्रश्नोत्तर की पद्धति से की है

---

१. लक्ष्मणस्वरूप : निरुक्त।
२. वाक्यपदीयम्।
अ० भू० १६ (१६००-६१)

और इसी के बीच वे एतत् संबंधी अपने मतों को व्यक्त करते हुए देखे जाते हैं। उनके विचार देखिए :

> अथ चेत् सर्वाण्याख्यातजानि नामानि स्युर्यः
> कश्चं तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथा
> चक्षीरन्। यः कश्चाध्वानमश्नुवीताश्वः स वचनीयः
> स्यात्। यत् किंचित्तृंद्यात् तृणं तत्। अथापि चेत्
> सर्वाण्याख्यातजानि नामानि स्युर्यावद्भिर्भावैः संप्रयुज्येत
> तावद्भ्यो नामधेय प्रतिलंभः स्यात्। तत्रैव स्थूणा
> दरशया वा संजनी च स्यात् ॥१-१२[1]

यास्क का कहना है कि यदि सभी नाम आख्यात—क्रिया—से व्युत्पन्न हों तो प्रत्येक व्यक्ति जो विशेष कार्य करे उसी (कार्य अथवा क्रिया) के अनुसार उसका नामकरण होना चाहिए। यथा, जो भी मार्ग पर दौड़े उसे 'दौड़नेवाला' (अश्व) नाम देना चाहिए, जो सुई, आदि की भाँति चुभे उसे 'चुभनेवाला' (तृण) नाम देना चाहिए। यदि सभी नाम आख्यात—क्रिया—से व्युत्पन्न हों तो एक संज्ञा नाम का जिस-जिस क्रिया से संबंध हो वे (क्रियासंबंधी) सभी नाम होने चाहिए। इस प्रकार एक 'स्थूणा' का नाम 'दरशया' और 'संजनी' भी होना चाहिए।

इस प्रश्न के संबंध में और विचार कर उन्होंने कहा :

> यथो एतद् यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथा चक्षीरन्निति
> पश्यामः समान कर्मणां नामधेय प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति। एतेनैवोत्तरः प्रत्युक्तः ॥ १-१४[1]

---

1. ब्रह्मण्यस्वरूप : निरुक्त।

यहाँ यास्क के कहने का तात्पर्य यह है कि जो कोई भी विशेष कार्य करे वह उसी (कार्य) के आधार पर नाम ग्रहण करे, इस संबंध में हम देखते हैं कि कुछ स्थितियों में कार्य का कर्ता जातिवाचक नाम ग्रहण करता है, और अन्य स्थितियों में वह जातिवाचक नाम नहीं ग्रहण करता। जैसे, तक्षा, परिव्राजक, जीवन, भूमिज। यहाँ तक्षा तथा परिव्राजक को हम जातिवाचक नामों का उदाहरण मानेंगे और जीवन (इक्षुरस) तथा भूमिज (मंगल) को व्यक्तिवाचक नामों का उदाहरण। यास्क के मत को हम इस प्रकार और स्पष्ट कर सकते हैं कि तक्षा तो बहुत से कार्य करता है, किंतु काठ को काटना अथवा छीलना उसका प्रधान अथवा विशेष कार्य है, जिससे वह (काठ) एक रूप धारण करता है। ऐसे ही भूमिज तो बहुत-सी वस्तुएँ हैं, जैसे—जीव, आदि भी। किंतु 'मंगल' को ही भूमिज कहते हैं। यहाँ इस तथ्य पर ध्यान रखने की आवश्यकता है कि किसी वस्तु और व्यक्ति-विशेष से किसी विशेष अर्थ का संयोग लोक में हो जाता है।

यास्क का मत है कि जो भी हो, परंतु इतना तो होना ही चाहिए कि संज्ञाओं (नामों) का नामकरण आख्यात (क्रिया) के व्यवस्थित और समुचित रूपों द्वारा होना चाहिए, जिससे उनके अर्थों में किसी प्रकार संदेह न रहे। जैसे, 'पुरुष' का रूप 'पुरिशय' (नगरनिवासी), 'अश्व' का रूप 'अष्टा' (दौड़नेवाला), 'तृण' का रूप 'तर्दन' (चुभने-वाला) होना चाहिए :

अथापि य एषां न्यायवान् कार्मनामिकः संस्कारो यथा चापि प्रतीतार्थानि स्युस्तथैनान्याचक्षीरन्। पुरुषं पुरिशय इत्याचक्षीरन्। अष्टेत्यश्वम्। तर्दनमिति तृणम्। १-१३[1]

इसी प्रसंग में यास्क कहते हैं कि प्रचलित अभिव्यक्ति—अभिव्यव-हार—में लोग भूल करते देखे जाते हैं। वे कहते हैं कि 'पृथिवी' नाम

---

१. वही।

इसलिए दिया गया कि वह फैलाई गई है (सं० प्रथ)। किंतु, इसको किसने फैलाया, इसका आधार क्या है ? इन प्रश्नों के संबंध में यास्क का मत है कि ये प्रश्न व्यर्थ हैं, किसने फैलाया और इसका आधार क्या है, इससे हमें क्या मतलब, हम तो देखते हैं कि वह फैली हुई है :

अथापि निष्पन्नेऽभिव्यवहारेऽभि विचारयन्ति। प्रथनात् पृथिवीत्याहुः। क एनामप्रथयिष्यत्। किमाधारश्चेति। १-१३[1]

× × ×

अथ वै दर्शनेन पृथुः। १-१४[1]

यास्क ने इस पर भी विचार किया है कि बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनके नाम का आधार उन (वस्तुओं) के द्वारा किए गए बाद के कार्य होते हैं। इस तथ्य का पूर्व पक्ष उन्होंने इस प्रकार उपस्थित किया है :

अथापि सत्त्वपूर्वो भाव इत्याहुः। अपरस्माद्भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यत इति। तदेतन्नोपपद्यते। १-१३[1]

अर्थात् सत्व पहले आता है, भाव बाद में रूप लेता है। ऐसी स्थिति में भाव का पहले होना और सत्व का बाद में आना अस्वीकार्य है। तात्पर्य यह कि आख्यात से नाम की व्युत्पत्ति अनुचित है। इसका उत्तर यास्क देते हैं कि किन्हीं अवस्थाओं में हम देखते हैं कि भाव के आधार पर सत्व नाम ग्रहण करते हैं। इस प्रकार आख्यात के आधार पर नाम का व्युत्पन्न होना, नाम का ग्रहण होना संभव है। इसे यों कहें कि बहुत-सी वस्तुओं के नाम उन (वस्तुओं) के कार्यों के आधार पर होते हैं। यहाँ आधार है कार्य (भाव), जिसके आधार पर वस्तुएँ (सत्व) नाम ग्रहण करती हैं। जैसे, लंबचूडक (कठफोड़वा) :

यथो एतदपरस्माद् भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यत इति पश्यामः पूर्वोत्पन्नानां सत्त्वानामपरस्माद्भावान्नामधेय

---

१. वही।

**प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा बिल्वादो लंबचूडक इति ।
बिल्व भरणाद्वा भेदनाद्वा । १-१५**[1]

इस प्रकार नामकरण के संबंध में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रियों का मत संक्षिप्तरूप से उपस्थित है। हमने प्रधानतः यास्क तथा भर्तृहरि के मतों का उल्लेख किया है; जो अपने क्षेत्र के दिग्गज हैं। हमने यथास्थान इस ओर भी संकेत किया है कि एतत्संबंधी भारतीय तथा विदेशी विचारकों के मतों में कहाँ तक साम्य है। विचार कर देखा जाय, तो दोनों प्रकार के विचारकों का मत मूलतः समान भूमि पर स्थित दिखाई पड़ेगा।

---

१. वही।

उद्धृत ग्रंथ

संस्कृत

१. अभिज्ञान शाकुंतलम् ।
२. अलंकारशेखर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, सन् १९२६ ई० ।
३. अष्टाध्यायी ।
४. ऋग्वेद ।
५. काव्यप्रकाश (रामभट्ट झलकीकरसंपादित), गवर्नमेंट सेंट्रल बुकडिपो, बंबई, सन् १९०१ ई० ।
६. काशिका, दि मेडिकल हाल प्रेस, बनारस, सन् १८९८ ई० ।
७. तर्कदीपिका ।
८. तर्कभाषा, डा० जगन्नाथप्रसाद, बनारस, सन् १९२२ ई० ।
९. तर्कसंग्रह, मास्टर खेलाड़ीलाल एंड संस, बनारस, सन् १९३७ ई० ।
१०. निरुक्त, आनंदाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२१ ई० ।
११. निरुक्त भाष्य टीका (लक्ष्मणस्वरूपसंपादित) पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, सन् १९२८ ई० ।
१२. न्यायमंजरी, ई० जे० लजरस एंड कंपनी, बनारस, सन् १८९५ ई० ।
१३. न्यायसूत्र, आनंदाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२२ ई० ।
१४. न्यायसूत्र, चौखंबा संस्कृत सिरीज आफिस, बनारस, सन् १९२५ ई० ।
१५. परमलघुमंजूषा „ „ „ „ सन् १९१७ ई० ।
१६. परिभाषेंदुशेखर, आनंदाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९१३ ई० ।
१७. महाभाष्य (देवीदत्त परायुलीसंपादित) ।

१८. महाभाष्य, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, सन् १९३५, '३७, '३८, '४२ ई० ।
१९. मीमांसादर्शन, जिल्द १, दि एशियाटिक सोसायटी ऑव् बेंगाल, कलकत्ता, सन् १८७३ ई० ।
२०. योगसूत्र, पाणिनि आफिस, इलाहाबाद, सन् १९२४ ई० ।
२१. रघुवंश ।
२२. वाक्यपदीय, त्रिवेंद्रम्, सन् १९३५ ई० ।
२३. वाक्यपदीय, ब्रजविलासदास एंड कंपनी, बनारस, सन् १८८७ ई० ।
२४. वेदांतपरिभाषा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, सन् १९३० ई० ।
२५. वैयाकरणभूषण, बेनारस संस्कृत सिरीज, बनारस, सन् १८९९ ई० ।
२६. वैयाकरणसिद्धांतमंजूषा, चौखंबा संस्कृत सिरीज, बनारस, सन् १८९९ ई० ।
२७. वैशेषिकदर्शन, दि एशियाटिक सोसायटी ऑव् बेंगाल, कलकत्ता, सन् १८६१ ई० ।
२८. शक्तिवाद, चौखंबा संस्कृत सिरीज आफिस, बनारस, सं० १९८६ वि० ।
२९. शब्दशक्तिप्रकाशिका, चौखंबा संस्कृत सिरीज आफिस, बनारस, सन् १९१४ ई० ।
३०. श्लोकवार्त्तिक, चौखंबा संस्कृत ग्रंथमाला, काशी, सन् १८९८ ई० ।
३१. साहित्यदर्पण (पी० वी० काणेसंपादित), बंबई, सन् १९२३ ई० ।
३२. सिद्धांतकौमुदी ।
३३. स्फोटचंद्रिका, चौखंबा संस्कृत सिरीज आफिस, बनारस, सं० १९८५ वि० ।

अँगरेजी

1. Sir Ausutosh Mookerjee Silver Jubilee

Volumes, Vol. III, Oriantalia, Part 2, Calcutta University, Calcutta, 1925.

2. Bloomfield, L., Language, George Allen & Unwin, Ltd., London, 1950.

3. Breal, Michel, Semantics, William Heinemann, London, 1900.

4. Burges, George, The Works of Plato, Vol. III, Henry G. Bohn, London, 1850.

5. Chakravarty, P. C., Linguistic Speculations of the Hindus, Journal of the Department of Letters, Vol. XII, University of Calcutta, Calcutta, 1925.

6. Chakravarty, P. C., The Philosophy of Sanskrit Grammar, University of Caloutta, Calcutta, 1930.

7. The Encyclopedia Americana, Americana Corporation, New York, 1954.

8. Gray, Louis H., Foundations of Language, Macmillan & Company, New York, 1950.

9. Greenough, J. B. & Kittredge, G. L., Words and their Ways in English Speech, Macmillan & Company, Ltd., London, 1914.

10. Jespersen, Otto, Language, George Allen and Unwin, Ltd., London, 1950.

11. Ogden, C. K., Richards, I. A., The Meaning

of Meaning, Routledge & Kegan Paul, Ltd., London, 1949.

12. Paul, Hermann, The Principles of the History of Language (German), English Translators, H. A. Strong, W. S. Logeman, B. I. Wheeler, London, 1897.
13. Pei, Mario, The Story of Language, J. B. Lippincott Company, Philadelphia & New York, 1949.
14. Schlauch, Margaret, The Gift of Tongues, George Allen and Unwin, Ltd., London, 1949.
15. Shakespeare, William, King Lear.
16. Sturtevant, E. H., Linguistic Change, G. E. Stechert and Co., New York, 1942.
17. Subrahmanya Sastri, P. S., Lectures on Patanjali's Mahabhasya. Vol. I, Annamalai University, Annamalainagar, 1944.
18. Taraporewala, I. J. S., Elements of the Science of Language, Calcutta University, Calcutta, 1951.
19. Tucker, F. G., Introduction to Natural History of Language, Blackie and Son, Ltd., London, 1908.
20. Urban, W. M., Language and Reality, George Allen and Unwin, London, 1951.

21. Webster, New International Dictionary of the English Language, G. & C. Marrian Company, U. S. A., 1955.

बँगला

१. गुरुपद हालदार, व्याकरण दर्शनेर इतिहास, कालीघाट, कलकत्ता, बंगाब्द १३५० ।

२. सुकुमार सेन, भाषार इतिवृत्त, वर्द्धमान साहित्य सभा, वर्द्धमान, सन् १९५० ई० ।

गुजराती

१. भोगीलाल ज० सांडेसरा, शब्द अने अर्थ, बंबई युनिवर्सिटी, बंबई, सन् १९५४ ई० ।

हिंदी

१. बाबूराम सक्सेना, अर्थविज्ञान, पटना युनिवर्सिटी, पटना, सन् १९५१ ई० ।

२. माताप्रसाद गुप्तसंपादित, रामचरितमानस, साहित्य कुटीर, प्रयाग, सन् १९४९ ई० ।

३. विद्याभूषण 'विभु', अभिधान-अनुशीलन, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५८ ई० ।

४. श्यामसुंदरदास, पद्मनारायण आचार्य, भाषा-रहस्य, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, सं० १९९२ वि० ।

५. श्यामसुंदरदास, भाषाविज्ञान, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, सं० १९९५ वि० ।

नामानुक्रमणी

ग्रंथकार

———

ग्रंथ